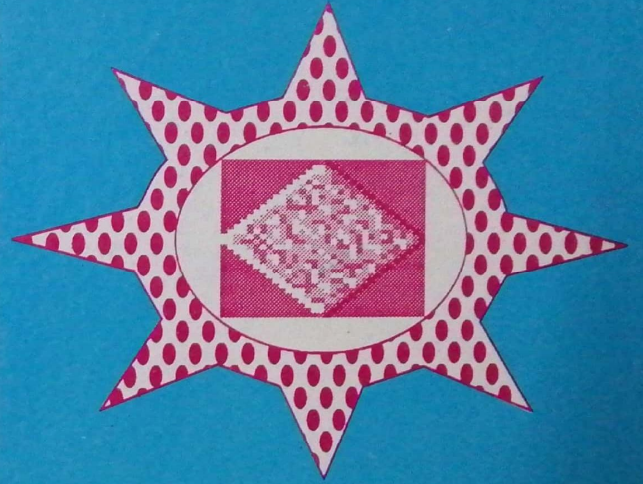


हिन्दी की परम्परागत शब्दावली

(भक्तिकालीन संदर्भ)



डॉ. रामाश्रय मिश्र

हिन्दी की परम्परागत शब्दावली □ डॉ. रामाश्रय मिश्र



भाषा में दो ही तत्त्वों की सर्वाधिक महत्ता होती है—प्रथम व्याकरण और द्वितीय शब्द। शब्द पर प्राचीन काल से चिन्तन-मनन होता रहा है। संस्कृत आचार्यों ने शब्द को ब्रह्म की संज्ञा दी है। शब्द से ही संसार की गतिशीलता का संदर्भ जोड़ा जाता है।

इस पुस्तक में शब्द के स्वरूप, वर्गीकरण पर नए और वैज्ञानिक ढंग से चिन्तन किया गया है। हिन्दी शब्दावली में परम्परागत शब्दों को महत्ता को प्रतियादित करने के लिए पुस्तक में हिन्दी साहित्य के स्वर्णकाल, भक्तिकाल को आधार बनाकर विशेष उपयोगी विश्लेषण किया गया है।

यह पुस्तक शब्द-चिन्तन, हिन्दी भाषा-चिन्तन और भाषा-शोध में विशेष उपयोगी सिद्ध होगी।



डॉ. रामाश्रय मिश्र

जन्म : 10 अप्रैल, 1935

स्थान : महमूदपुर, जनपद-सुलतानपुर (उ.प्र.)

शिक्षा : एम. ए. (दिल्ली विश्वविद्यालय), पी-एच.डी., सर्टिफिकेट कोर्स इन ट्रांसलेशन (पंजाब विश्वविद्यालय) पंजाबी प्रवेशिका (पंजाबी विश्वविद्यालय)

विशेष अध्ययन : भाषाविज्ञान, अनुवाद, मध्ययुगीन काव्य, कथा-साहित्य

पुरस्कार :

1. प्रथम पुरस्कार—अतः कालेज कविता प्रतियोगिता, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली—1956
2. प्रथम पुरस्कार—सद्यः वाद-विवाद प्रतियोगिता दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली—1961
3. प्रथम पुरस्कार—सद्यः वाद-भाषण प्रतियोगिता दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली—1961
4. अन्य कई कविता, शोध-आलेखों, वाद-विवाद आदि प्रतियोगिताओं में पुरस्कृत।

प्रकाशन :

1. गोदान : विविध सन्दर्भों में,
2. भाषा और भाषाविज्ञान, हिन्दी की परम्परागत शब्दावली

सम्प्रति : दयानन्द नगरी, ज्वालापुर (हरिद्वार)

हिन्दी की परम्परागत शब्दावली
(भक्तिकालीन संदर्भ)

हिन्दी की परम्परागत शब्दावली

(भक्तिकालीन संदर्भ)

डॉ. रामाश्रय मिश्र

पूर्व प्राध्यापक, हिन्दी-विभाग
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय (हरिद्वार)

भूमिका

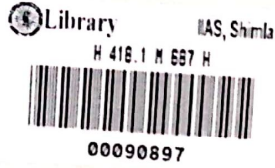
डॉ. नरेश मिश्र

प्रोफेसर एवं अध्यक्ष,
हिन्दी-विभाग
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)

१९९८

निर्मल पब्लिकेशन्स

दिल्ली-110094



© लेखकाधीन

- प्रकाशक : निर्मल पब्लिकेशन्स
ए-139, गली नं० 3, कबीर नगर,
शाहदरा, दिल्ली-110094
- दूरभाष : 011-2114193
- प्रथम संस्करण : 1998
- मूल्य : 250.00
- शब्दांकन : उमेश लेजर प्रिंटर्स, शाहदरा, दिल्ली-110032
- मुद्रक : त्रिवेणी ऑफसेट, शाहदरा, दिल्ली-110 032

प्राक्कथन

समाज के उद्भव का आधार भाषा है और इसके ही आधार पर समाज का सर्वतोन्मुखी रूप विकसित होता है। भाषा के जीवंत रूप में सतत परिवर्तन स्वाभाविक है। भाषा का परिवर्तनशील और विकसनशील रूप शब्द और शब्दावली के लगातार परिवर्तन पर आधारित है।

भाषा सतत प्रवहमान सरिता के समान है। कुछ विद्वान हिन्दी में मात्र तत्सम शब्दों के प्रयोग की वकालत करते हैं और अन्य वर्ग के शब्दों को निकाल फेंकना चाहते हैं। यह विचार न तर्कसंगत है, न व्यावहारिक। मानवीय मूल्यों के विकास और उन्नयन के लिए विभिन्न भाषा संदर्भों में आपसी सौमनस्य और सहानुभूति आवश्यक है। वैज्ञानिक युग के विभिन्न संचार एवं यातायात माध्यमों से भौतिक दूरी सिमटती जा रही है। गांव से गांव, नगर से गांव, प्रांत से प्रांत ही नहीं, देश से विदेश निकट आते जा रहे हैं। पूर्व की अकल्पनीय दूरी और अज्ञात स्थान भी अब निकट संबंधों में आ चुके हैं। ऐसे में विदेशी वस्तुओं और आविष्कारों और व्यक्तियों के साथ विभिन्न भाषा के शब्दों का आगमन हो रहा है।

आज हिन्दी शब्दावली में बहुआयामी विकास हो रहा है। हिन्दी की विविध बोलियों के शब्दों के आगम में अंचल विशेष की सौंधी महक उभर रही है। इससे अंचल विशेष की अभिव्यक्ति की शक्ति आई है। भारतीय भाषाओं के शब्दों के आगमन से भारतीयता और राष्ट्रीयता के भावों के विकास को सुदृढ़ आधार मिल रहा है। अनुकरणात्मक शब्दों के सृजन से हिन्दी शब्द-भण्डार में सुंदर अभिवृद्धि हो रही है और विशेष भावों की अभिव्यक्ति मिल रही है। विभिन्न स्रोतों के शब्दों के प्रयोग से संकर शब्दों की रचना में आकर्षक अभिवृद्धि हो रही है। इन शब्दों से हिन्दी की भाषायी उदारता और सच्ची सामासिकता का बोध होता है।

हिन्दी के विभिन्न शब्द-वर्गों का अपना महत्व है। समाज में शब्दों का

प्रचलन सहज रूप में होता है और ये शब्द भाषा में स्वाभाविक स्थान पा लेते हैं। संस्कृत से हिन्दी भाषा का जन्म हुआ। इसीलिए संस्कृत को हिन्दी की जननी के रूप में मान्यता प्राप्त है। अधिकांश भाषावैज्ञानिकों द्वारा संस्कृत से आए शब्दों को दो वर्गों में विभक्त किया जाता है—तत्सम और तद्भव। तत्सम वर्ग में हिन्दी में प्रयुक्त उन शब्दों को स्थान देते हैं, जो संस्कृत के समान होते हैं; यथा—सूर्य, यमुना, चूर्ण आदि। तद्भव शब्द वर्ग में संस्कृत के उन शब्दों को स्थान दिया जाता है जो हिन्दी में परिवर्तित रूप में प्रयुक्त होते हैं। उनका अर्थ पूर्ववत् रहता है, किन्तु रूप परिवर्तन हो जाता है; जैसे सूरज (सूर्य), जमुना (यमुना), चूरन (चूर्ण)। कुछ विद्वानों ने परंपरागत शब्दों को तत्सम और तद्भव के अतिरिक्त तत्समाभास वर्ग में भी विभक्त किया है। उनकी मान्यता है कि इन शब्दों को तद्भव वर्ग में नहीं रख सकते और तत्सम का आभास मात्र होने से इस वर्ग में भी स्थान नहीं दिया जा सकता है। अतः प्रण (पण), श्राप (शाप) आदि को तत्समाभास वर्ग में रखने का सुझाव देते हैं। यह विचार वैज्ञानिक नहीं है। इसे कोई तद्भवाभास नाम देकर विवाद खड़ा कर सकता है। इतना ही नहीं इसके बाद तद्भव और तत्सम के आभास को आधा, तिहाई, चौथाई रूपों में विभक्त करते हुए निरर्थक विभाजन की प्रतियोगिता संभव है।

मेरे विचार से तत्सम और तद्भव वर्ग को मात्र संस्कृत तक सीमित नहीं रखना चाहिए। भाषा-अध्ययन की प्राचीन पद्धति में तत्सम को तत् (संस्कृत) + सम (समान) और तद्भव को तत् (संस्कृत) + भव (विकसित/परिवर्तित) के रूप में मान्यता दी गई थी। इसका मुख्य कारण है कि उस समय शब्द-अध्ययन में मुख्यतः संस्कृत को चिंतन का आधार बनाया जाता रहा है। आज हिन्दी ही नहीं विविध भाषाओं का संबंध देश तथा विदेश की अनेकानेक भाषाओं से हो चुका है। विभिन्न भाषाओं के शब्दों के सहज और स्वाभाविक प्रयोग में ही भाषा की जीवंतता, विकसनशीलता और उदार वृत्ति प्रकट होती है। हां! ऐसे शब्दों में हिन्दी भाषा की प्रवृत्ति के अनुरूप करना विशेष उपयोगी होगा।

इस प्रकार हिन्दी में आने वाले विभिन्न हिन्दी-इतर भाषाओं के शब्दों को तत्सम और तद्भव—दो वर्गों में विभक्त करना चाहिए। इस दृष्टि से तत्सम का स्वरूप होगा—तत् (संस्कृत, अरबी, फारसी, अंग्रेजी आदि भाषा) + सम (समान) अर्थात् हिन्दी में अन्य भाषा से आने वाले शब्द जब अपने मूल रूप (मूल भाषा के समान रूप) में हों तो तत्सम होंगे; यथा—कृष्ण, बिलकुल, कार आदि। तद्भव का स्वरूप होगा तत् (संस्कृत, अरबी, फारसी, अंग्रेजी आदि भाषा) + भव (विकसित या परिवर्तित) अर्थात् हिन्दी में अन्य भाषा से आने वाले शब्द जब अपने मूल रूप में न प्रयुक्त होकर परिवर्तित रूप में प्रयुक्त हो, तो तद्भव होंगे; यथा—हाथ (हस्त), कर्ज (कर्ज), गिलास (ग्लास) आदि।

मेरे विचार से हिन्दी के तत्सम और तद्भव को तीन मुख्य वर्गों में विभक्त कर सकते हैं। प्रथम में संस्कृत से आगत, तत्सम-तद्भव को परंपरागत रूप में, द्वितीय वर्ग में भारतीय भाषाओं के तत्सम, तद्भव शब्दों को देशी भाषा गत वर्ग में, तृतीय वर्ग में विदेशी भाषा के शब्दों के तत्सम तद्भव शब्दों को विदेशी भाषागत वर्ग में स्थान दे सकते हैं। ध्यातव्य है कि हिन्दी में संस्कृत के आधार पर माने गए परंपरागत (तत्सम, तद्भव) शब्दों की बहुलता है, तो भारतीय भाषाओं में भी संस्कृत शब्दों की बहुलता है। जहां हिन्दी में परंपरागत शब्द, देशी भाषागत के स्वरूप में समानता दिखाई दे वहां भारतीय भाषाओं की आपसी निकटता का सहज स्वरूप प्रकट होगा। हिन्दी शब्द-समूह के ऐसे अध्ययन से एक ओर राजभाषा हिन्दी को भारतीय भाषाओं के साथ विकास का अवसर मिलेगा, वहीं राष्ट्रीय एकता, सौहार्द और सौमनस्य का सुदृढ़ आधार प्राप्त होगा।

डॉ. मिश्र भाषाविज्ञान के अधिकारी विद्वान हैं। आपने भाषाविज्ञान के अधिकारी विद्वान डॉ. भोलानाथ के निर्देशन में भाषाविज्ञान पर शोधग्रंथ प्रस्तुत किया। 'भाषा और भाषाविज्ञान' इतनी चर्चित कृति है। भाषा के साथ साहित्य में भी आपका चिन्तन एवं लेखनक्रम चलता रहा है। 'गोदान : विविध संदर्भों में' इनकी उपयोगी रचना है।

डॉ. मिश्र ने हिन्दी साहित्य के स्वर्णयुग भक्तिकाल की परंपरागत शब्दावली पर सुंदर विश्लेषण कर इसके क्षेत्र-विस्तार, इसकी अभिव्यक्ति, शक्ति और महत्ता को प्रतिपादित किया है। इस कृति के प्रारम्भ में शब्द पर विस्तार से चिंतन किया गया है। शब्द पर आदिकाल से चिंतन होता रहा है। भाषाशास्त्र में शब्द-शक्ति को उन्नत बताकर इसे 'ब्रह्म' की संज्ञा दी गई है। विभिन्न विद्वानों ने शब्द के संदर्भ में अनेकशः चर्चा की है। इस पुस्तक में शब्द की परिभाषा उसके स्वरूप को सरल, आकर्षक और नए ढंग से प्रस्तुत करने का सराहनीय प्रयास किया गया है। आज तक शब्दों को स्रोत, संरचना, प्रयोग, अर्थ आदि अनेक आधारों पर विभाजन करने के प्रयास होते रहे हैं। भाषाविज्ञान में स्रोत आधार पर किया जाने वाला वर्गीकरण सर्वाधिक उपयोगी होते हुए विवादास्पद रहा है। हिन्दी के महान् वैयाकरण आचार्य किशोरीदास बाजपेयी के वर्गीकरण विश्लेषण में और चर्चित भाषावैज्ञानिक डॉ. भोलानाथ तिवारी के प्रस्तावित वर्गीकरण में यह तथ्य स्पष्ट रूप से प्रकट होता है। डा. मिश्र ने इस वर्गीकरण को व्यवस्थित रूप देने का सुंदर प्रयास किया है।

डॉ. मिश्र की मान्यता है कि परिवर्तनशील संस्कार की परिवर्तनशील भाषा में परंपरागत शब्दों का विशेष महत्त्व है। हिन्दी शब्दावली में परंपरागत शब्द वर्ग का अप्रतिम स्वरूप और विशेष महत्त्व है। इसे दृष्टिगत कर पुस्तक में भक्तिकालीन शब्दों के परंपरागत तत्सम और तद्भव वर्गों का विस्तृत विश्लेषण किया है। डॉ.

मिश्र ने स्पष्ट किया है कि भाषा के परंपरागत शब्दों में समाज का सहज रंग, अनुपम भ्ररक सांस्कृतिक स्वरूप, गतिज ऊर्जा, मूल से मौलिक, सरलीकृत, नवीन रूप प्रस्तुत होता है।

मेरा विश्वास है कि यह कृति शब्द-चिंतन, हिंदी-भाषा-अध्ययन और शोध संदर्भों के लिए विशेष उपयोगी सिद्ध होगी। मैं इस रचना और इसके रचनाकार का हृदय से स्वागत करता हूँ।

—प्रो. नरेश मिश्र

भूमिका

भाषा भावाभिव्यक्ति का आधार है। भाषा और समाज का अभिन्न संबंध है। भाषा में दो तथ्यों की ही प्रधानता होती है—प्रथम शब्द और द्वितीय व्याकरण। शब्द की बहुआयामी शक्ति को दृष्टिगत कर इसे 'शब्द-ब्रह्म' की संज्ञा दी गई है। शब्द-व्यापार से ही सामाजिकता का वास्तविक रूप सामने आता है। शब्द के अभाव में संसार का गतिशील रूप असंभव है। विभिन्न साहित्यकारों ने शब्द को कई अर्थों में ग्रहण किया है। कबीरदास ने शब्द को पथ-प्रदर्शक भाव के रूप में प्रयोग करते हुए कहा है—

“सतगुरु साँचा सूरिवाँ सबद जु बाह्या एक।”

यही शब्द अन्यत्र पर्याप्त विस्तृत अर्थ में लिया गया है। परमात्मा की खोज में भटकती आत्मा अपने प्रियतम का पूरा और अनुकूल संदेश चाहती है—

‘एक सबद कहि पीव का कबेर मिलैगे आइ।’ जब हिन्दी में तार संप्रेषण प्रक्रिया होती है, तो शब्द की सीमा पद के समान विस्तार पा लेती है; यथा—‘तिवारी वार्ता के लिए पहुँच रहे हैं।’ इस वाक्य में तीन पद हैं। इन्हें शब्द के रूप में गणना की जाती है।

भाषा-संरचनात्मक अध्ययन में ध्वनि, वर्ण, अक्षर, शब्द, पद, वाक्य और वक्रोक्ति से भाषा की शारीरिक संरचना का और अर्थ से आत्मा रूप का ज्ञान होता है। इन इकाइयों में शब्द का महत्व सर्वोपरि है। इस इकाई की महत्ता के प्रभाव और इस दिशा के कार्य को दृष्टिगत कर शब्द-विज्ञान एक शाखा विशेष विकसित कर दी गई है।

जीवंत भाषा में सतत् परिवर्तन चलता रहता है। साहित्यकार अपने भाषायी परिवेश से प्रभावित रहता है। इस प्रकार भाषा में शब्दों का आगम और लोप साथ-साथ चलता रहता है। शब्द भी मनुष्य की तरह यात्रा करते हैं। यही कारण है कि अन्य भाषा के शब्दों को भी भाषा में स्थान मिलना स्वाभाविक है।

हिंदी का उद्भव संस्कृत भाषा से हुआ है। इसी भाषायी परंपरा को दृष्टिगत कर संस्कृत को हिंदी की जननी का सम्माननीय पद प्राप्त है। भाषा तत्वों के विभिन्न संदर्भों से हिंदी को संस्कृत की सुदृढ़ आधारभूमि प्राप्त हुई है। हिंदी शब्द समूह पर विचार करने से यह तथ्य निर्विवाद रूप में सामने आता है कि परंपरागत (तत्सम-तद्भव)

शब्दावली का महत्व सर्वोपरि है।

प्रस्तुत शोध-कार्य में भक्तिकालीन साहित्य को आधार रूप में ग्रहण कर उसकी परंपरागत शब्दावली पर विश्लेषण किया गया है। इसमें शब्द की व्युत्पत्ति, अर्थ के साथ विभिन्न पर्यायों पर विचार कर इसके निकट रूपों का विवेचन किया है। शब्द की परिभाषा और वर्गीकरण को नया और सरल स्वरूप देने का प्रयत्न किया गया है। भक्तिकालीन परंपरागत (तत्सम-वद्भव) शब्दों का विस्तार से विश्लेषण कर इस वर्ग की महत्ता का प्रतिपादन किया गया है।

गुरुवर्य डॉ. भोलानाथ तिवारी के प्राप्त आशीर्वाद के प्रति हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ। उनकी प्रेरणा मेरे जीवन पथ के लिए पाथेय सिद्ध हुई है। इस कार्य में जिन नुची विद्वानों की कृतियों का सहयोग लिया गया है उनके प्रति आभार ज्ञापित करता हूँ। मैं पुस्तक प्रकाशन पर निर्मल पब्लिकेशन्स के श्री सुरेशपाल चौधरी के प्रति विशेष आभार हूँ।

—रामाश्रय मिश्र

अनुक्रम

1. शब्द

15-26

- 1.1. शब्द-व्युत्पत्ति
- 1.2. शब्द-अर्थ
- 1.3. शब्द-पर्याय

2. शब्द-परिभाषा

27-37

- 2.1. संस्कृत साहित्य
- 2.2. हिन्दी साहित्य
- 2.3. भाषाविज्ञान
- 2.4. विदेशी (परराष्ट्रीय) भाषाविद्

3. शब्द : वर्गीकरण

38-78

- 3.1. भारतीय
 - 3.1.1. प्राचीन आचार्य
 - 3.1.2. आधुनिक भाषाविद्
- 3.2. भारतीय या विदेशी
- 3.3. शब्द : वर्गीकरण : समीक्षा
 - 3.3.1. भारतीय प्राचीन आचार्य
 - 3.3.2. आधुनिक भाषाविद्
 - 3.3.3. अ भारतीय या विदेशी
- 3.4. सम्यक् समीक्षा
 - 3.4.1. तत्सम
 - 3.4.2. वद्भव
 - 3.4.3. तत्समाभास

- 3.4.4. तद्भवभास
- 3.4.5. अर्धतत्सम
- 3.4.6. संकर
- 3.4.7. प्रतिध्वनित
- 3.4.8. अनुवाद-युग्म
- 3.4.9. पुनरुक्त
- 3.4.10. अनुकरणात्मक
- 3.4.11. देशज
- 3.4.12. देशी
- 3.4.13. विदेशी
- 3.4.14. नवनिर्मित
- 3.5. प्रतावित वर्गीकरण

4. शब्द-समूह

79-91

- 4.1. शब्द-समूह प्रकार
 - 4.1.1. सक्रिय
 - 4.1.2. निष्क्रिय
- 4.2. हिन्दी शब्द-समूह अध्ययन का इतिहास

5. तत्सम शब्द

92-118

- 5.1. परिभाषा
- 5.2. विषयानुसार वर्गीकरण
 - 5.2.1. प्रकृति संबंधी शब्दावली
 - 5.2.2. शरीरांग संबंध शब्दावली
 - 5.2.3. खाद्य-पेय पदार्थ संबंधी शब्दावली
 - 5.2.4. धर्म-संबंधी शब्दावली
 - 5.2.5. पशु-पक्षी संबंधी शब्दावली
 - 5.2.6. मानव-संबंध घोटक शब्दावली
 - 5.2.7. रहन-सहन एवं श्रृंगार संबंधी शब्दावली
 - 5.2.8. शासन एवं व्यवस्था संबंधी शब्दावली
 - 5.2.9. जीवनोपयोगी वस्तुओं संबंधी शब्दावली
 - 5.2.10. अध्यात्म-चिंतन संबंधी शब्दावली
 - 5.2.11. अन्य वर्ग

5.3. तत्सम शब्द की तत्समता

- 5.3.1. अर्थ-परिवर्तन
- 5.3.2. ध्वनि-परिवर्तन

5.4. संरचनात्मक वर्गीकरण

- 5.4.1. मूल शब्द
- 5.4.2. यौगिक शब्द
- 5.4.3. योगरूढ़ शब्द
- 5.4.4. सामासिक शब्द

5.5. वैयाकरणिक वर्गीकरण

- 5.5.1. संज्ञा
 - 1. अकारान्त, 2. आकारान्त, 3. इकारान्त, 4. ईकारान्त, 5. उकारान्त, 6. ऊकारान्त, 7. ऋकारान्त
- 5.5.2. सर्वनाम
- 5.5.3. विशेषण
- 5.5.4. क्रिया
- 5.5.5. अव्यय

5.6. तत्सम शब्दों के आगमन के कारण

- 5.6.1. पर्याय संपन्नता
- 5.6.2. सांस्कृतिक अभिव्यक्ति
- 5.6.3. परराष्ट्रीय शब्दावली के बोझ से हिंदी को मुक्त करने का प्रयत्न
- 5.6.4. शैलीय आवश्यकता
- 5.6.5. विशेष संकल्पना

6. तद्भव शब्द

119-159

6.1. परिभाषा

- 6.1.1. पं. कामता प्रसाद गुरु
- 6.1.2. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा
- 6.1.3. डॉ. भोलानाथ तिवारी

6.2. शब्द-प्रयोग

6.3. विषयानुसार वर्गीकरण

- 6.3.1. खान-पान संबंधी
- 6.3.2. शरीरांग संबंधी
- 6.3.3. पशु-पक्षी संबंधी
- 6.3.4. वनस्पति संबंधी

- 6.3.5. स्वास्थ्य एवं चिकित्सा संबंधी
- 6.3.6. वस्त्र संबंधी
- 6.3.7. शृंगार संबंधी
- 6.3.8. प्रकृति संबंधी
- 6.3.9. मानव संबंध सूचक
- 6.3.10. आवास संबंधी
- 6.3.11. समय और संख्या सूचक
- 6.3.12. साहित्य शिक्षा संबंधी
- 6.3.13. सेना एवं शासन संबंधी
- 6.4.14. वाणिज्य संबंधी
- 6.4.15. स्थान सूचक
- 6.4.16. वस्तुसूचक
- 6.4.17. नाम सूचक
- 6.3.18. कर्म संबंधी
- 6.3.19. अलौकिक, परमात्मा एवं देव संबंधी
- 6.4. संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया तथा अव्यय रूप में वर्गीकरण
 - 6.4.1. संज्ञा
 - 6.4.2. सर्वनाम
 - 6.4.3. विशेषण
 - 6.4.4. क्रिया
 - 6.4.5. अव्यय

1 शब्द

भाषा में शब्द सर्वाधिक महत्वपूर्ण इकाई है। शब्द से ही सामाजिक व्यवहार चलता है। हिंदी शब्द-समूह पर अब तक बहुत कम कार्य हुआ है। इस पर विधानुसार अर्थात् निबंध, कहानी, उपन्यास और नाटक पर कार्य करना उपयोगी होगा अथवा काल अनुसार—वीरगाथा काल, भक्तिकाल, रीति काल और आधुनिक काल पर समग्र रूप से कार्य करना उपयोगी होगा। काल विशेष पर कार्य करने से विशिष्ट प्रवृत्तियों का स्पष्ट ज्ञान सरल हो जाएगा। भक्तिकाल ही भक्तिप्रधान रचनाओं की शब्दावली की विशेषताएं सामने आ जाएंगी। इस काल में मुख्यतः भक्ति-आधारित रचनाएं ही रची गई हैं, अतः इस काल की शब्दावली पर अध्ययन करने से तत्संबंधित सांस्कृतिक, आर्थिक, सामाजिक, व्यावहारिक आदि विशेषताओं के साथ देश-विदेश के संबंधों का भी सहज ज्ञान प्राप्त हो जाएगा।

भक्ति-काल की शब्दावली पर भाषा वैज्ञानिक कार्य करने से जहां भक्त कवियों की अभिरुचि, निज भाषा प्रेम, देश प्रेम का ज्ञान होता है, वहीं विदेशी (परराष्ट्रीय) भाषाओं के प्रति उनकी उदार दृष्टि का ज्ञान होता है। वास्तव में भाषा वैज्ञानिक सहृदय व्यक्ति अर्थात् साहित्यकार सभी भाषाओं के प्रति सहज और उदार दृष्टि रखते हैं। भक्तिकाल के साहित्यकारों की भाषाई दृष्टि कितनी सहज और उदार है, यह तथ्य भी स्पष्ट हो जाएगा। इस कार्य से विभिन्न साहित्यकारों के शब्दों पर स्वतंत्र रूप से कार्य करते हुए साहित्यकार विशेष पर शब्दकोश निर्माण की दिशा मिलेगी। कुछ पुस्तकों की महत्ता को देखते हुए उन पर आधारित 'पुस्तक-कोश' (जो पुस्तक विशेष के शब्दों पर आधारित हो) बनाने की प्रेरणा मिलेगी। प्रस्तुत कार्य से भाषा अध्ययन के शब्द-विज्ञान को भी सुदृढ़ आधार मिल जाएगा।

1. 1. शब्द : व्युत्पत्ति

'शब्द' की व्युत्पत्ति के विषय में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। 'शब्द' मूलतः संस्कृत शब्द है जिसका रूप मानक हिंदी कोश (1966, पृ. 144) के अनुसार सं. शब्द + घञ् प्रत्यय

से निर्मित हुआ है। डॉ. भोलानाथ तिवारी ने इस विकास को स्वीकार किया है साथ ही उन्होंने (1969, पृ. 9) कहा है, “इसकी व्युत्पत्ति के संबंध में पर्याप्त मतभेद है। ‘शप्’, ‘शब्द’ आदि एक से अधिक धातुओं से इसका संबंध जोड़ा जाता है।” डॉ. तिवारी के इस कथन से मैं सहमत नहीं हूँ क्योंकि ‘शप्’ धातु का वह अर्थ नहीं होता है जो कि शब्द धातु का होता है। मेरे मत को इससे और अधिक बल मिल जाता है कि डॉ. तिवारी ने उल्लेख तो किया है कि ‘शप्’ धातु से भी शब्द का विकास होता है किंतु विकास नहीं दिया है। ‘शब्द’ धातु एवं ‘शब्द’ का अर्थ तो हम बाद में देंगे किंतु ‘शप्’ धातु का अर्थ हम यहां दे देना श्रेयस्कर समझते हैं। स्वर्गीय चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा तथा पं. तारिणीश झा, (संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभम्—1957, पृ. 1091) के अनुसार ‘शप्’ धातु भवादिविणीय, दिवादिगणीय उभयपदी सकर्मक रूप में प्रयुक्त होती है जिसका अर्थ शाप देना, शपथ खाना, डांटना, धिक्कारना आदि होता है; यथा—शपति—ते, (दि.) शप्यति—ते, शप्यति—ते, अशाप्सीत्—अशप्त। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि ‘शब्द’ का निर्माण शब्द + घञ् प्रत्यय से ही हुआ है। डॉ. भोलानाथ तिवारी ने यह भी लिखा है, “यों कुछ लोग ‘शब्द’ की ‘शब्द’ से बनी नामधातु भी मानते हैं।” किंतु यह नहीं लिखा कि ऐसा किसका मत है? उल्लेखमात्र कर दिया है। इसका विवेचन नहीं किया है जो कि मत की गौणता का परिचायक है।

निष्कर्षतः कह सकते हैं कि ‘शब्द’ की व्युत्पत्ति सं. शब्द + घञ् प्रत्यय से हुई है।

1.2 शब्द : अर्थ

‘शब्द’ का अर्थ ‘आवाज’ है। डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार, “इसका मूल अर्थ ‘ध्वनि’ है। किंतु अब इसका प्रयोग “सार्थक ध्वनि या ध्वनि समूह” के लिए होता है।” इन्हीं के अनुसार इसका अर्थ है ‘शब्द करना’, ‘ध्वनि करना’ या ‘बोलना’ आदि। स्वर्गीय चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा तथा पं. तारिणीश झा, (संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभम्—1957, पृ. 1092) के अनुसार ‘शब्द’ चुरादिगणीय, उभयपदी, अकर्मक, सकर्मक धातु है जिसका अर्थ शब्द करना, और करना, बोलना। बुलाना। पुकारना। नाम लेना, नाम लेकर पुकारना आदि होता है। यथा—शब्दयति—ते, शब्दयिष्यति—ते, अशब्दत—ते। इन्हीं के अनुसार शब्द का अर्थ आवाज, ध्वनि। पक्षियों का कलरव। बाजे की आवाज। अर्थयुक्त शब्द। संज्ञा। उपाधि, पदवी। नाम। भौतिक प्रमाण आदि होता है।

रामचंद्र वर्मा (मानक हिंदी कोश—1966, पृ. 144) के अनुसार शब्द का अर्थ—(1) किसी प्रकार के आघात के फलस्वरूप वायु में होने वाला ऐसा कंप जो कानों में पहुंचकर सुनाई पड़ता हो। आवाज, ध्वनि। (साउण्ड) (2) अक्षरों, वर्णों आदि से बना और मुंह से उच्चरित होने या लिखा जाने वाला वह संकेत जो किसी कार्य, बात या भाव का बोधक हो। सार्थक ध्वनि। लफड़। (वर्ड) (3) परमात्मा का

मुख्य नाम ओ३म्। (4) साधु-संतों के ऐसे पद जिनमें निराकार का गुण कथन होता है।

कालिकाप्रसाद एवं मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव आदि बृहत् हिन्दी कोश (1952, पृ. 1274) के अनुसार शब्द के आकाश में किसी भी प्रकार से उत्पन्न शोभ जो वायु तरंग द्वारा कानों तक जाकर सुनाई पड़े अथवा पड़ सके। शब्द दो प्रकार के हैं—वर्णात्मक और ध्वन्यात्मक। वाग्यंत्र से उत्पन्न शब्द वर्णात्मक हैं और ताल, मृदंगादि से उत्पन्न शब्द ध्वन्यात्मक। वर्णात्मक शब्द भी दो प्रकार के हैं—व्यक्त (सार्थक) अव्यक्त (निरर्थक); निर्विभक्तिक नाम जो वर्ण समूह द्वारा निर्मित और सार्थक हों; ध्वनि, आवाज; आप्त वचन, आप्त पुरुष द्वारा व्यक्त ज्ञान, शिक्षा आदि की बातें।

मुहम्मद मुस्तफ़ा खां (भद्राह), (उर्दू हिंदी कोश—1972, पृ. 591) के अनुसार अरबी पुल्लिग शब्द ‘लफज़’ के शब्द, बोल; बात, वचन अर्थ दिए गए हैं।

प्रो. आर. सी. पाठक (भार्गवाज्ञ स्टैंडर्ड एलस्ट्रेटेड डिक्शनरी ऑफ दि इंग्लिश लैंग्वेज—1968, पृ. 1018) के अनुसार शब्द के अंग्रेजी साउंड, वाइस्, टोन, न्वाइज, ए वर्ड आदि अर्थ दिए गए हैं। इन्होंने ‘भार्गवाज्ञ स्टैंडर्ड एलस्ट्रेटेड डिक्शनरी ऑफ दि इंग्लिश लैंग्वेज’ (1966, पृ. 844) में ‘साउंड’ के शब्द, ध्वनि, कोलाहल, सार्थक; ‘वाइस्’ (भार्गवाज्ञ स्टैंडर्ड एलस्ट्रेटेड डिक्शनरी ऑफ इंग्लिश लैंग्वेज, 1966, पृ. 1051) के वाणी, स्वर, वचन, कंठध्वनि, सम्मति, आज्ञा, अभिप्राय, मत; ‘टोन’ के संगीत का स्वर, ध्वनि, शब्द, चेष्टा, स्वास्थ्य, प्रचलित भावनाएं, चित्र में प्रकाश तथा अंधकार का दिखाव; ‘नवाइज’ के ध्वनि, शब्द, ख, शोरगुल : ‘वर्ड’ के शब्द, पद, वचन, वार्ता, प्रतिज्ञा, संदेश, कहावत, छोट्टा वाक्य आदि अर्थ दिए हैं।

वामन शिवराम आपटे, (संस्कृत हिंदी कोश—1963, पृ. 546-47) ने शब्दः के (1) साउंड (दि आबजक्ट ऑफ दि सेन्स ऑफ हियरिंग; एंड प्रापर्टी ऑफ आकाश); आर. 13.1 (2) साउंड नोट (ऑफ वर्ड्स; मैन एंड सी), नाइज इन जनरल, विश्वासोपगमादभिनमतयः शब्दं संहते मृगाः एस. 1.14; बी. जी. 1.13; एस. 3.1 एम. एस. 4.113, केयू. 1.45 (3) दि साउंड ऑफ ए म्यूज़िकल इंस्ट्रुमेंट; वाष शब्द पी. टी. 2.24, केयू. 1.45, (4) ए वर्ड साउंड, सिगनीफिकेंट वर्ड (फार डैफ. एंड सी. सी. एम. बी. एच. इंट्रोडक्शन; एक : शब्द सम्यगधीतः सम्यक् प्रयुक्तः स्वर्ग लोके काम घुग्भवति; सो शब्दार्थी (5) ए डेवलीनेबिल वर्ड, ए नाउन, सबस्टेण्टिव, (6) ए टाइटिल, ऐन एपीथेट; यस्यार्थयुक्तं गिरिराज शब्दं कुर्वति बाल व्यंजनैश्चमयः; केयू. 1.13; एस. 2.14; नृपेण चक्रे युवराजशब्दमाक आर. 3.35, 2.53, 64, 3.49, 5.22; 18.41; वी. 1.1, (7) दि नेम, मिथर नेम; ऐज इन शब्दयति केयू. वी., (8) वर्वल एथारिटी (रिगाईड बाई दि न्याधिक्य ऐज ए प्रमाण आदि अर्थ दिए हैं।

आपटे (संस्कृत हिंदी कोश—1963, पृ. 546) के ही अनुसार शब्द (शब्दयति-ते, शब्दित), (1) साउंड, मेक ए नाइजे, (2) टू स्वीक, काल-आउट, काल आउट टू; वितत

मृदुकरावः शब्दयस्या वयोमिः परिपतति दिवोड के हेलवा बाल सूर्यः एस आई. 11.47. (3) दू नेम, काल अतएव सागरिकेति शब्दते रत्न, (4) विद अमि दू नेम, दू एक्सप्लेन, सं.—दू काल आउट दू, अर्थ हैं जबकि इन्होंने (संस्कृत हिंदी कोश—1963, पृ. 546) 'शप्' के (शपति-ते, शप्यति-ते, शप) 1. दू कर्स, एक्जेक्रेट; अशपद्भाव मानुवीति ता आर. 8.80; सोडमुत्तरासुरथ भूमिपति शशाप—वृद्धः 9.78, 1; 77। 2. दू स्वीर, टेक ऐन ओथ, प्रामिज बाई ओथ, से आन बोथ, (युजुवली विद च. विभक्ति ऑफ दि परसन के हूम ए प्रामिज एंड सी. इज मेड एंड इस्ट. ऑफ दि आबजक्ट बाई ह्विज इट इज मेड); भरतेनात्मना चाह शपे ते मनुजाधिप। यथा नान्येन तुष्यैयमुते रामनिवासनात् राम; ह्वेर यूज्ड विदाउट ऐन आबजक्ट इट जनरली गर्वनस दि ईस्ट. ऑफ दि थिंग एंड डाट. ऑफ दि परसन बाई ह्विज आर हूम दि ओथ इज टेकेन; सत्यं शपामि ते पादपंकजस्पर्शन के.; घाट. 22; अशप्त निहानो सो सीतये स्मर मोहितः के. 8.74.33; सम टाइम्स शप गर्वनस ए कागनेट अव्यूजेटिव; सहस्र शोडसो शपथानशप्यत बीके. 3.32.3. दू ब्लैम, स्कौल्ड, रिवाइल, एव्यूज (विद ह्याट आर बाई इटसैल्फ); द्विषयश्चा शवंस्तथा बीके. 17.4; प्रतिवाचमदत केशवः शपमानाय न चेदि भूभुजे एस. आर. 4.24.—क्राज (शापयति ते) टु बाईड बाई ऐन ओथ, कनज्योर, शापितो सि गोब्राह्मण कायथा एम. के. 3, भाल 8।

इसी प्रकार वामन शिवराम आपटे, (संस्कृत हिंदी कोश—1963, पृ. 546) ने 'शपः' के (1) ए कर्स, इम्पेकेशन, (2) ऐन ओथ आदि अर्थ दिए हैं तथा 'शपथः' आदि शब्दों को इसी से विकसित माना है। इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि 'शप्' धातु के विभिन्न अर्थों को देखते हुए इससे शब्द की व्युत्पत्ति प्रतिपादित करना तर्कसंगत नहीं है।

सार रूप में कहा जा सकता है कि 'शब्द' के आवाज, ध्वनि, सार्थक, ध्वनि, समूह, शब्द करना, ध्वनि करना, बोलना, और करना, बुलाना, पुकारना, नाम लेना, नाम लेकर पुकारना, पक्षियों का कलरव, बाजे की आवाज, अर्थयुक्त शब्द, संज्ञा, उपाधि, पदवी, नाम, मौखिक प्रमाण-पत्र, किसी प्रकार के आघात के फलस्वरूप वायु में होने वाला ऐसा कंप जो कानों में पहुँचकर सुनाई पड़ता हो (साउण्ड), अक्षरों, वर्णों आदि से बना और मुँह से उच्चरित होने या लिखा जाने वाला यह संकेत जो किसी कार्य, बात या भाव का बोधक हो (लफ़्ज़/वर्ड), परमात्मा का मुख्य नाम ओ३म्, साधु-संतों के ऐसे पद जिनमें निराकार का गुण कथन होता है, आकाश में किसी भी प्रकार से उत्पन्न क्षोभ जो वायु तरंग द्वारा कानों तक जाकर सुनाई पड़े अथवा पड़ सके, निर्विभक्तिक नाम जो वर्ण समूह द्वारा निर्मित और सार्थक हों, आप्त वचन, आप्त पुरुष द्वारा व्यक्त ज्ञान, शिक्षा आदि की बातें, बोल, बात, वचन; साउंड, वाइस, टोन, वाइज, ए वर्ड; कोलाहल; वाणी, स्वर, कंठध्वनि, सम्मति, आशा, अभिप्राय, मत; संगीत का स्वर, चेष्टा, स्वास्थ्य, प्रचलित भावनाएँ, चित्र में प्रकाश तथा अंधकार का दिखाव; ख, वार्ता प्रतिज्ञा, संदेश, कहावत, छोटा वाक्य; वाद्य ध्वनि, साउंड नोट, ए वर्ड साउंड, ए डेवलीनेबिल वर्ड, ऐन एपीथेट, मियरनेम, वर्बल ए

थारिटी, प्रमाण आदि अनेक अर्थ विभिन्न विद्वानों ने प्रस्तुत किए हैं। प्रायः इन सभी अर्थों में ध्वनि किसी-न-किसी रूप में अवश्य विद्यमान है। इसको दृष्टिगत रखते हुए यदि 'शब्द' का एक ही अर्थ देना हो तो वह 'ध्वनि' ही होगा।

शब्द का सामान्य अर्थ या गुण ध्वनि को ही स्वीकारना श्रेयस्कर होगा। इसलिए 'शब्द' विचार से पूर्व ध्वनि का सामान्य विवेचन आवश्यक है। क्योंकि ध्वनि या ध्वनियों के समूह को ही शब्द कहते हैं। ध्वनि की वैज्ञानिक परिभाषा हम इस प्रकार दे सकते हैं, कि जब कोई कंपित वस्तु अपने चारों ओर के माध्यम में जो प्रभाव उत्पन्न करती है उसी को ध्वनि की संज्ञा दी जाती है। ध्वनि का अध्ययन जिस विज्ञान में किया जाता है उसे फ़ोनेटिक्स या फ़ोनालाजी के नाम से पुकारा जाता है। इन दोनों शब्दों का संबंध 'फोन' से है जिसका अर्थ 'ध्वनि' होता है। यद्यपि ध्वनि का अध्ययन मुख्यतः भौतिक शास्त्र का विषय है, किन्तु आजकल भाषावैज्ञानिक इसके अध्ययन को अपनी सीमा में आबद्ध कर रहे हैं तथा इसके अंतर्गत ध्वनियों की परिभाषा, भाषा ध्वनि, उच्चारणोपयोगी अवयव, वर्गीकरण एवं उनका स्वरूप, उनकी लहरों का किसी के मुँह से चलकर किसी के कान तक जाना तथा सुना जाना एवं उनमें विकास आदि बातों का अध्ययन किया जाता है। इसके अतिरिक्त भाषा विशेष की ध्वनियाँ, उनका उच्चारण, भाषा विशेष की ध्वनियों के प्रयोग, वितरण, इतिहास तथा परिवर्तन आदि भी इसी के अन्तर्गत आते हैं।

सामान्य रूप से किसी पदार्थ पर आघात करके उसमें गति उत्पन्न करने के बाद उसमें शब्द (ध्वनि) का अनुभव किया जा सकता है। किसी पदार्थ पर कोई पदार्थ या वस्तु गिरने या आघात करके गति उत्पन्न करने पर वायु में एक प्रकार का कंपन होता है। यह कंपन वायु में चारों ओर बहुत दूर तक फैल जाता है। जब ये लहरें श्रवणेन्द्रिय तक पहुँचती हैं तो बाह्य कर्ण की भीतरी झिल्ली (कान के पर्दे) पर कंपन उत्पन्न करती हैं। इस कंपन का प्रभाव मध्यवर्ती कर्ण की अस्थियों द्वारा भीतरी कर्ण के द्रव पदार्थ पर पड़ता है और उसमें लहरें उठती हैं जिसकी सूचना श्रावणी शिरा के तंतुओं द्वारा मस्तिष्क में जाती है और हम सुन लेते हैं। इस प्रकार ध्वनित शब्दों का ज्ञान हो जाता है।

विचारणीय है कि यदि कंपित वस्तु के कंपनों की संख्या 20 से 20,000 कंपन प्रति सेकंड है तभी हम उससे उत्पन्न होने वाले शब्द को सुन सकेंगे। यदि कंपन 20 कंपन प्रति सेकंड से कम अथवा 20,000 कंपन प्रति सेकंड से अधिक होगी तो हमारी श्रवणेन्द्रिय उसे सामान्य रूप से ग्रहण करने में समर्थ नहीं होगी।

शब्द ध्वनि का संचरण निर्वात में संभव नहीं होता है तथा इसके लिए किसी माध्यम का उपस्थित होना नितांत आवश्यक है। शब्द का प्रमुख वाहक वायु है। वायु के अतिरिक्त अन्य अनेक वाहक हैं जिनके द्वारा शब्द (ध्वनि) एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँच जाते हैं। यदि शब्द-वाहक का घनत्व अधिक होगा तब शब्द तेज सुनाई पड़ेगा। इसके विपरीत होने पर कम। स्थान की दूरी भी शब्द को हल्का कर देती है

अन्यथा किसी भी दूरी पर स्थित व्यक्ति से सामान्यतः वार्तालाप किया जा सकता। प्रकाश की भांति शब्द-ध्वनि का भी परावर्तन होता है। कुएं में झुककर बोलने पर प्रतिध्वनि सुनाई पड़ती है यह परावर्तन का ही परिणाम है। ऐसी ही स्थिति विशाल जंगल, विस्तृत सागर या पर्वत घाटी में उच्चरित शब्द की होती है। जबकि किसी गुंबज के नीचे आवाज करने पर शब्द ध्वनि गुंजने लगती है क्योंकि शब्द ध्वनि एक ओर टकराकर परावर्तित हो जाने के परिणामस्वरूप विपरीत दिशा में बढ़ती है उस दिशा में भी दीवार से टकराकर परावर्तित हो जाती है। इस प्रकार विपरीत दिशाओं में टकराती हुई शब्द ध्वनि बाहर न निकल सकने के परिणामस्वरूप अंदर ही गुंजती है। यदि वातावरण का तापमान 62 सेंटीग्रेड हो तब शब्द की गति 19 किलोमीटर प्रति मिनट होती है।

प्रारंभिक व्यक्ति अपनी भावाभिव्यक्ति कुछ सीमित संकेतों के प्रयोग द्वारा ही करता रहा होगा। भाषा-विकास के साथ लिपि का प्रादुर्भाव हुआ। लिपि के अभाव में भाषा में स्थायित्व नहीं था। कोई भी व्यक्ति कुछ सीमित ध्वनियों का उच्चारण करके समीपस्थ व्यक्ति तक अपने भावों को पहुंचा सकता था। लिपि के विकास ने भावाभिव्यक्ति हेतु स्थान एवं समय की दूरी पर विजय प्राप्त कर ली।

प्राचीन समय के लिपि चिह्न आधुनिक लिपि चिह्नों से बिलकुल भिन्न थे। प्राचीन लिपि चिह्न भावों या विचारों के द्योतक होते हुए भी उच्चारण क्षमता से विहीन थे। प्रारंभिक लिपि चिह्न निर्धारण के समय उसका क्या उच्चारण रहा होगा एतदविषयक कोई भी जानकारी उपलब्ध नहीं होती है। संभवतः भावों की प्रबलता पर कुछ चिह्न निर्धारित कर दिए गए हों, किंतु बाद में वे भी उसका बिलकुल अथवा उपयुक्त उच्चारण न कर पाए हों।

चीनी भाषा में आज भी अनेक ऐसे चिह्न हैं जिनको देखकर उनके भावों को हृदयंगम तो किया जा सकता है, किंतु उनके उच्चरित रूप का ज्ञान प्राप्त कर सकना असंभव नहीं तो कष्टसाध्य अवश्य है। चीनी भाषा की यही विशेषता उसे विश्व की जटिलतम लिपि बनाए हुए है। लिपि-विकास के प्रारंभिक काल में शब्द के भाषावैज्ञानिक रूप का कोई अस्तित्व रहा होगा ऐसा कहना औचित्यपूर्ण न होगा।

किन्हीं भी दो या दो से अधिक वस्तुओं अथवा अंगों के टकराने या स्पर्श से जो आवाज सुनाई पड़ती है सामान्यतः उसी को ध्वनि की संज्ञा दी जाती है। डॉ. भोलानाथ तिवारी ने ध्वनि की अनेक परिभाषाएं दी हैं—

“किसी भी वस्तु से किसी भी तरह का कुछ ऐसा हो जो सुना जा सके, उसे सामान्यतया ‘ध्वनि’ कहते हैं।”

“वैज्ञानिक दृष्टि से ध्वनि वायुमंडलीय दबाव में परिवर्तन या उतार-चढ़ाव का नाम है। यह परिवर्तन वायु कणों के दबाव तथा स्थिरकें के कारण होता है।”

“‘भाषा ध्वनि’ भाषा में प्रयुक्त ध्वनि की वह लघुतम इकाई है, जिसका उच्चारण

और श्रोतव्यता की दृष्टि से स्वतंत्र व्यक्तित्व हो।”

डॉ. डेनियल जोन्स तथा डॉ. सुनीतिकुमार चटर्जी आदि ने इसे संध्वनि के अर्थ में प्रयुक्त किया है। अर्थात् उनके अनुसार इसका निश्चित और अपरिवर्तनीय व्यक्तित्व होता है। जबकि केनियन आदि अन्य विद्वान् इसे ध्वनिग्राम का समानार्थी मानते हैं। आर्मफील्ड ने इसे एक स्थान पर प्रथम अर्थ में प्रयुक्त किया है, दूसरे स्थान पर दूसरे अर्थ में।

“‘भाषा ध्वनि’ वह सीमित ध्वनि है जिसका प्रयोग मात्र भाषा में होता है।”

ध्वनि की संक्षिप्त विवेचना से यह स्पष्ट हो जाता है कि ध्वनि का क्या अस्तित्व है। शब्द का मूल अर्थ ध्वनि ही है। क्योंकि शब्द के मूल में ध्वनि या ध्वनियों का समूह ही होता है।

भर्तृहरि शब्द की विवेचना करते हुए लिखते हैं कि विश्व का ऐसा कोई भी ज्ञान नहीं है जो शब्द ज्ञान के बिना संभव हो। समस्त विश्व ज्ञान शब्द के ही साथ संसृष्ट सा अनुभव होता है—

“न सोऽस्ति प्रत्ययों लोके यः शब्दानुगमादृते।

अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं शब्देन भासते ॥”

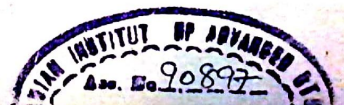
इस मत को पुष्ट करते हुए भर्तृहरि अन्यत्र लिखते हैं कि विश्व का समस्त ज्ञान शब्द-मूलक है। समस्त विधाएं, समस्त कलाएं तथा शिल्प शास्त्र शब्द-शक्ति से संबंधित हैं। शब्द ही एक ऐसा माध्यम है जिससे समस्त वस्तुओं का विवेचन एवं विभाजन किया जा सकता है—

“सा सर्वविधाशिल्पानां कलानां चौपबंधनी।

तद्वशादमिनिष्पन्नं सर्वं वस्तु विभज्यते ॥”

शब्द की चैतन्यता को स्वीकारते हुए आचार्यों ने स्वमत का प्रतिपादन किया है कि शब्द-शक्ति ही विश्व के समस्त प्राणियों में चैतन्य रूप में विद्यमान है। इसका प्रभाव बाह्य एवं अर्धतर दोनों में है। शब्द-शक्ति जहां बाह्य-जगत् के व्यवहार का साधन है वहीं आंतरिक हर्ष एवं विषादादि का ज्ञान रूप है। विश्व का कोई ऐसा प्राणी नहीं होगा जिसमें शब्द शक्ति रूपी चैतन्यता की विद्यमानता न हो। गूंगा यद्यपि शब्दों के उच्चारण की क्षमता नहीं रखता है तथापि उसके अंतःस्थल में उठने वाले विभिन्न भावों में अनेक शब्द एक साथ पंक्तिबद्ध होकर उसे चेतना-शक्ति प्रदान करते रहते हैं अन्यथा गूंगा किसी भी माध्यम से अपनी भावाभिव्यक्ति करने में समर्थ न होता। कौन कहेगा कि गूंगों की भाषा नहीं होती? इस तथ्य को कौन अस्वीकारेगा कि शब्द के अभाव में भाषा अपना अस्तित्व बनाए रख सकती है। शब्द की इस सर्वव्यापकता को दृष्टिगत रखते हुए ही भाषाविदों ने शब्द को ‘शब्द ब्रह्म’ की संज्ञा दी है।

प्रश्न यह उठता है कि शब्द क्या है? क्या इसका अस्तित्व ब्रह्म के समान ही है? ब्रह्म तो अक्षर, अजन्मा एवं अदृश्य है जबकि शब्द पैदा होते हैं, बढ़ते हैं, वृद्ध



होते हैं, इनका विनाश होता है तथा ये दृश्यमान जगत में दृष्टिगोचर भी होते हैं अन्यथा लिपिबद्ध ज्ञान का पढ़ा जा सकना संभव न होता। इसका एक मात्र उत्तर यही है कि जिस प्रकार ब्रह्म सगुण होकर भी निर्गुण है उसी प्रकार शब्द भी सर्वगुण संपन्न होते हुए भी अपने निर्गुणत्व के परिणामस्वरूप ब्रह्मस्वरूपा हैं तथा इसका अस्तित्व ब्रह्म के समान है, जो दृश्य एवं अदृश्य दोनों है। गूंगे या अंधे में अदृश्य रूप में शब्द विद्यमान होता है अन्यता अंधे-गूंगों की अभिव्यक्ति के माध्यम के अभाव में घुटन से मृत्यु हो जाती है।

पुनः प्रश्न उठता है कि शब्द में अर्थ कहां से आता है जिसका उपयोग सामाजिक प्राणी अपनी भाषा में शब्दों के माध्यम से करता है? राम कहने से व्यक्ति विशेष, दशरथसुत अथवा ब्रह्म की प्रतीति प्रसंगानुकूल होती है। कुछ और अर्थ हम क्यों नहीं समझ जाते हैं? इस प्रश्न का उत्तर हम अन्य उदाहरण से स्पष्ट करेंगे। यदि हम 'गृह' शब्द का उदाहरण ले तो यह अधिक स्पष्ट हो जाएगा। गृह शब्द एवं उसके अर्थ में अभेद संबंध का ज्ञान होता है। अर्थात् शब्द के साथ अर्थ का अभेद संबंध है। शब्द और अर्थ के अभिन्न संबंध को दर्शाते हुए कवि कुल गुरु महाकवि कालिदास (कुमार संभव—सं. 2018, पृ. 2) शिव-पार्वती के संबंध की अभेदता का प्रतिपादन किया है—

“वागार्थाविव संपृक्तौ वागर्थ प्रति पतये।

जगतः पितरो वन्दे पार्वती परमेश्वरौ॥”

“यह मेरा गृह है।” “गृह में अनेक कक्ष हैं।” ऐसा कहने से गृह स्थान विशेष एवं गृह शब्द को पृथक् रूप में नहीं समझते हैं। कभी-कभी तो यह भेद करना कठिन हो जाता है कि हम केवल शब्दों पर विचार कर रह हैं अथवा शब्दों के द्वारा किसी विशिष्ट वस्तु की चर्चा कर रहे हैं। एक अन्य प्रश्न उपस्थित है कि शब्द और वस्तु में कुछ भेद है या दोनों एक हैं? यद्यपि शब्द के द्वारा निर्दिष्ट वस्तु का ज्ञान होता है किंतु शब्द वस्तु आदि से भिन्न है। उपर्युक्त उदाहरण को लेकर ही इस पर विचार किया जा सकता है कि विभिन्न कक्षों वाला, साज-सज्जा से सुसज्जित गृह ही वह 'गृह' शब्द है? उक्त निर्दिष्ट गृह स्थान है जो विभिन्न कक्षों वाला है तथा साज-सज्जा से सुसज्जित है। स्थान का बोधक शब्द गृह है जिसमें कर्ता के होने तथा सुसज्जित होने का गुण विद्यमान नहीं है। इसके लिए अन्य शब्दों का प्रयोग किया गया है। शब्द से पूर्ण भिन्न उस स्थान (गृह) का गुण है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि शब्द स्थान, वस्तु या द्रव्य तथा उसके गुण आदि से पृथक् अस्तित्व रखता है।

पृथक् अस्तित्व के साथ शब्द के उच्चारण मात्र से उस स्थान विशेष का पूर्ण ज्ञान हो जाता है।

शब्द के सूक्ष्म चिंतन से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि शब्द के द्वारा पहले उसका निजी स्वरूप स्पष्ट होता है तदनंतर ही उसके अर्थ-बोध का। इस प्रक्रिया में समय का अंतराल अति सूक्ष्म होता है जो प्रायः न के बराबर होता है। शब्द और अर्थ के संबंध में

भेदकता की सूक्ष्म विवेचना इस तथ्य का द्योतन करती है कि शब्द-अर्थ संबंध अभिन्न है।

शब्द-अर्थ संबंध की विवेचना करते हुए भर्तृहरि ने शब्द की उपमा दीपक से दी है। उनका कहना है कि दीपक जिस प्रकार तेल, बत्ती एवं अग्नि आदि के संघटन से पहले अपने आपको प्रकाशित करता है उसके पश्चात् ही अपनी निकटस्थ वस्तुओं को प्रकाशित करने की क्षमता प्राप्त करता है। एक अन्य उदाहरण से यह बात और स्पष्ट हो जाएगी। हम सुई का उदाहरण लेते हैं जो सिलाई के काम आती है। सुई और धागे से सिलाई की जाती है किंतु जब तक इनका संघटन नहीं होगा तब तक धागा विहीन सुई कपड़े में छिद्र भाग करती चली जाएगी सिलाई नहीं कर सकती है। अर्थात् सुई को पहले अपने को धागायुक्त करना होगा तभी वह कपड़े को धागामय कर सकती है। उसी प्रकार शब्द ध्वनि या ध्वनियों का संघटन करके अपने में अर्थमयता भर लेता है। तात्पर्य यह है कि शब्द अर्थमय होता है। उसमें यह अर्थमयता ध्वनि-संघटन ही भरता है। इसीलिए उच्चरित होते ही वह स्थान, वस्तु अथवा द्रव्य आदि का अर्थ-बोध कराने में सक्षम होता है। भाषा विचारों के आदान-प्रदान का माध्यम है। शब्द भाषा का अंग है। इसीलिए उसमें भी आंशिक या पूर्ण भावाभिव्यक्ति की क्षमता विद्यमान रहती है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि भाषिक शब्द सार्थक ही होते हैं निरर्थक नहीं। भाषाविज्ञान में निरर्थक शब्दों को कोई स्थान प्राप्त नहीं है।

1.3 शब्द : पर्याय

'पर्याय' से पर्यायवाची शब्द बना है जिसका अर्थ, अधिकांश विद्वान् विभिन्न शब्दों के एक अर्थ लेते हैं किंतु किन्हीं भी दो या दो से अधिक शब्दों का एक अर्थ कभी नहीं हो सकता है उसमें कुछ-न-कुछ अंतर अवश्य विद्यमान रहता है जिस प्रकार विश्व के अनेक प्राणियों में से किन्हीं भी दो को लिया जाय उनमें गुण, रूप, आकार, वर्ण, जाति आदि के अनुसार भेद अवश्य होगा। हां, यह कहा जा सकता है कि समानता पाई जाती है। ज्योमित के तीनों समान लंबी भुजाओं वाले अथवा तीनों कोणों वाले दो या अधिक त्रिभुजों में तदरूपता के कारण जो समानता होती है विभिन्न शब्दों के अर्थों में समानता होते हुए भी सभी गुणों की तदरूपता नहीं पाई जाती है। इसलिए पर्याय शब्द का अर्थ एक अर्थ न लेकर समान अर्थ लिया जा सकता है।

'शब्द' के समानार्थी अनेक शब्द हैं। उन्हीं को हम शब्द का पर्याय कह सकते हैं जो हिंदी एवं अन्य भाषाओं में विद्यमान हैं।

'शब्द' के सर्वाधिक पर्याय संस्कृत भाषा में हैं। श्रीमदमर सिंह (अमरकोश, 1957, पृ.) ने संस्कृत में शब्द के 17 पर्याय दिए हैं—

“शब्देनिनादनिनद ध्वनि ध्यान रव स्वना।
स्वानिषोष निर्नाद नाद निस्वाननिस्वना।

आरवारावसंराधविरावा ।”

अर्थात् शब्द के पर्याय—शब्द; निनाद; निन; ध्वनि; ध्यान; रव; स्वन; स्थान; निघोष; निहर्वाद; नाद; निस्वान; निस्वन; आरव; आराव; संराव; तथा विराव: ‘शब्द’ के 17 नाम हैं ।

त्रिकांडकोशकार (त्रिकांडकोश—) में शब्द के 8 पर्याय उद्धृत किए हैं—

“शब्दामिलषो त्वभिधा भिधानं वाचको ध्वनिः ।

हासः कुहारितश्च ।”

अर्थात् शब्द, अभिलाष, अभिधा, अभिधान, वाचक, ध्वनि, हास तथा कुहारित पर्याय मिलते हैं ।

हेमचन्द्र, (अभिधान चिन्तामणि—) ने सत्ताईस पर्याय दिए हैं—

“शब्दो निनादो निघोषः स्वानो ध्यानः स्वरो ध्वनिः ।

निर्हादो निनदो ह्रादो निस्वनो निस्वनः स्वनः ।

रवो नादः स्वनिघोषः संख्याहम्योः रावः आरवः ।

क्वणनं, निक्वणं क्वाणो निक्वाणाश्च क्वाणोरणः ।”

अर्थात् शब्द, निनाद, निघोष, स्वान, ध्यान, स्वर, ध्वनि, निर्हाद, निनद, ह्राद, निस्वन, निस्वन, स्वन, रव, नाद, स्वनि, घोष संख, आह्वयः, राव, आरव, क्वणन, निक्वण, क्वाण, निक्वाण, क्वाण तथा रण ।

संस्कृत में उपलब्ध शब्द पर्यायों की संख्या पचास से भी अधिक है जिनमें शब्द, निनाद, निनद, ध्वनि, ध्यान, रव, स्वन, स्वान, निघोष, निर्हाद, नाद, निस्वान, आरव, आराव, संराव, विराव, संख, राव, घोष, अभिलाषा, अभिधा, अभिधान, वाचक, हास, कुहारित, स्वर, ह्राद, निस्वान, निस्वन, स्वनि, क्वणन, निक्वण, क्वाण, निक्वाण, क्वण, रव, ब्राह्मी, भारती, भाषा, गी, वाक्, वाणी, सरस्वती, व्यावहार, उक्ति, अपित, भाषित, वचन, वच तथा पद आदि मुख्य हैं ।

हिन्दीतर भारतीय भाषाओं में भी हिंदी के समान अर्थ में ही ‘शब्द’ का प्रयोग होता है । अनेक भाषाओं में ध्वनि एवं उच्चारण साम्य भी है; यथा—

बंगला—शब्द; पंजाबी—शब्द; गुजराती—शब्द; मराठी—शब्द; असमी—शब्द; उड़िया—शब्द; कन्नड़—शब्द; पदम् एवं नुहि तथा तेलुगू—शब्दम्, पदम् एवं भाट ।

उपर्युक्त तुलनात्मक विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि बंगला, पंजाबी, गुजराती, मराठी, असमी एवं उड़िया भाषाओं में ‘शब्द’ का अन्य पर्याय न प्रयुक्त करके ‘शब्द’ शब्द का ही प्रयोग किया जाता है । जबकि कन्नड़ एवं तेलगु भाषाओं में ‘शब्द’ के लिए ‘शब्द’ का प्रयोग तो किया ही जाता है उसके अतिरिक्त कन्नड़ में पदम् एवं नुडि तथा तेलगु में पदम् एवं भाट शब्द पर्यायों का भी प्रयोग होता है । अंतर इतना है कि तेलगु में अंत्याक्षरागम ‘मु’ सहित ‘शब्दमु’ का प्रयोग किया जाता है । कन्नड़ में पदम् व्यंजनान्त शब्द है तो तेलगु में अन्त्य स्वरागम हो जाने से ‘पदम्’ शब्द का प्रयोग

किया जाता है । इसके अतिरिक्त कन्नड़ में यदि ‘नुडि’ पर्याय का प्रयोग किया जाता है तो तेलगु में ‘भाट’ का ।

विदेशी (परराष्ट्रीय) भाषाओं में मुस्लिम भाषा तथा यूरोपीयादि भाषाओं में भी शब्द के अनेक पर्याय मिलते हैं ।

मुस्लिम भाषाओं में अरबी में ‘शब्द’ के लिए ‘लफज़’ का प्रयोग किया जाता है । इसका मूल अर्थ ‘मुंह से फेंका हुआ’, ‘ध्वनि किया हुआ’ या ‘बोला हुआ’ है । डॉ. भोलानाथ तिवारी ने भी ‘लफज़’ को इसी अर्थ में प्रयुक्त किया है । इस दृष्टि से ‘लफज़’ संस्कृत पर्याय ‘ध्वनि’ के अधिक निकट है । ध्वनि या ध्वनि समूह ही शब्द रूप धारण करता है ।

यूरोपीय भाषाओं में शब्द के लिए प्रयुक्त होने वाले शब्द निम्नलिखित हैं—

अंग्रेजी—वर्ड (Word),

डच—वर्ड (Word),

जर्मन—वर्ट (Wort),

स्वीडिश—ओर्ड (Ord),

डेनिश—ओर्ड (Ord),

नार्वेजीयन—ओर्ड (Ord),

गोथिक—वर्ड (Word),

आइसलैंडिक—ओर्थ (Orth),

फ्रेंच—माट (Mo’),

स्पेनिश—पेलाफ्रे (Palafre),

पुर्तगाली—पेलाव्रा (Palavra),

पोलिश—स्लोवो (Slovo),

रूसी—स्लावो (Slavo),

जेव—स्लावो (Slovo),

फिनिस—सना (Sana)

हंगेरियन—ज़ो (Szo),

तुर्की—केलाइम (Kalime),

इंडोनेशियन—काटा (Kata),

यूनानी—लेक्सिस (Lxis),

हिब्रू—मिलह (Milah),

स्वाहिती—नेनो (Nemo),

जापानी—कोटाफा (Kotafa),

इटैलियन—पेरोला (Parola) ।

उपर्युक्त तुलनात्मक विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि हिंदी एवं हिंदीतर

भारतीय, विदेशी (परराष्ट्रीय) प्रायः सभी भाषाओं में 'शब्द' के जो पर्याय मिलते हैं उनमें अधिक अंतर नहीं है। अनेक भाषाओं में एक ही पर्याय पाया जाता है; यथा अंग्रेजी, हालैंडी, स्विडिश, डेनिश, नावेंजीयन एवं गोथिक में 'वर्ड' पर्याय मिलता है तो आइसलैंडिक में 'उ' का स्थान 'य' ने ले लिया है तथा जर्मन, इडिश एवं स्पेरेन्तो में 'ट' को 'ड' का स्थानापन्न रूप बन जाने से 'वर्ट' या 'वर्टो' पर्याय मिलते हैं। तेलगु तथा फ्रेंच में शब्द के लिए एक पर्याय 'माट' प्रयुक्त होता है। इसी प्रकार पोलिश, रूसी एवं जेव भाषाओं में 'शब्द' के लिए 'स्लावो' या 'स्लोवो' पर्याय मिलते हैं। 'शब्द' के लिए प्रयुक्त इन विभिन्न शब्दों में मूलतः एक-दूसरे से अधिक भिन्नता नहीं है।

शब्द : परिभाषा

सामान्य रूप से ध्वनि या ध्वनियों के समूह को शब्द की संज्ञा दी जाती है। इसके देखने या सुनने से शब्द की परिभाषा देना अतीव सरल प्रतीत होता है जबकि सरल ही नहीं व्यापक दृष्टि से शब्द की परिभाषा देना न केवल कठिन अपितु असंभव भी है। विश्व की समस्त भाषाओं को दृष्टिगत रखते हुए शब्द की कोई ऐसी परिभाषा देना जो सर्वांगीण हो, सभी दृष्टियों से परिपूर्ण हो, प्रायः असंभव सा ही प्रतीत होता है। इस असमर्थता को न केवल भारतीय भाषाविदों अपितु विदेशी भाषा-वैज्ञानिकों ने भी स्वीकारा है जिनमें वैन्दरये, येस्पर्सन, डेनियल जोन्स तथा उल्डन आदि विद्वान् प्रमुख हैं जिन्होंने शब्द पर विचार करते हुए एक निश्चित परिभाषा देने में अपने को असमर्थ पाया है। किंतु यह तथ्य अक्षरशः सत्य नहीं है कि शब्द की परिभाषा नहीं दी जा सकती है। 'असंभव' शब्द ही विद्वानों के कोश में नहीं होता है। अन्यथा प्राचीन काल से लेकर अब तक शब्द की अनेक परिभाषाएं समय-समय पर विभिन्न विद्वानों द्वारा न दी जातीं जिनमें संस्कृत, हिंदी तथा विदेशी (परराष्ट्रीय) सभी भाषाविद् हैं।

2.1. संस्कृत साहित्य

संस्कृत साहित्य से ही भाषा का अध्ययन प्रारंभ हुआ तथा इसका पूर्ण विकास हुआ। यहां का साहित्य काल के अकाल गाल में समाने लगा। विदेशियों ने उसके पश्चात् भाषाविषयक अध्ययन प्रारंभ किया। इसी हेतु भाषाविज्ञान के अध्ययन को लेकर दो महत्वपूर्ण तथ्य उभरे हैं। (1) भाषाविज्ञान भारत की देन है। (2) भाषाविज्ञान पश्चिम की देन है।

भारत की देन का यही अभिप्राय है कि संस्कृत साहित्य में भाषा-विषयक ज्ञान भरा पड़ा है जिसमें शब्द की विभिन्न विद्वानों द्वारा अनेक परिभाषाएं दी गई हैं। कुछ प्रमुख परिभाषाएं उद्धृत हैं—

पतंजलि ने शब्द विवेचन करते हुए कहा है—“श्रोतोपलब्धिबुद्धिनिग्राहः प्रयोगेनाभिज्वलितः आकाशदेशः शब्दः।” अर्थात् शब्द कान से प्राप्य, बुद्धि से ग्राह्य, प्रयोगेनाभिज्वलितः आकाशदेशः शब्दः।

प्रयोग से प्रस्फुटित होने वाली आकाश व्यापी ध्वनि है। इतना ही नहीं पतंजलि ने शब्द की अति विस्तृत विवेचना की है जिसमें उन्होंने शब्द की चार विशेषताओं का उल्लेख किया है—उच्चरित, श्रव्य, बुद्धिग्राह्य तथा अर्थबोधक। उच्चारण शब्द की अपरिहार्य विशेषता है कि क्योंकि बिना उच्चारण के ध्वनि उत्पन्न ही नहीं हो सकती है। इसे दृष्टिगत रखते हुए शब्द की सामान्य परिभाषा—ध्वनि या ध्वनि समूह—दी गई। उच्चारण के साथ श्रव्यता का गुण विद्यमान होना आवश्यक है अन्यथा ध्वनि उत्पन्न करके भी विचारों का आदान-प्रदान नहीं किया जा सकता है। विचारों का आदान-प्रदान भाषा की प्रमुख विशेषता है। इसलिए ध्वनि का उच्चारण ऐसा होना चाहिए जिसको सुगमता से सुना जा सके। श्रवण के पश्चात् ही उच्चरित ध्वनि बुद्धिग्राह्य होती है। इन दोनों प्रक्रियाओं में समय का अंतराल बिल्कुल नगण्य होता है। भावाभिव्यक्ति किसी अर्थ की प्रतीति कराने के लिए ही की जाती है। यदि अर्थबोध न हो तो उस अवस्था में भी उच्चरित ध्वनि या शब्द भाषा की परिभाषा के अंतर्गत नहीं आएगा। अर्थमयता को दृष्टिगत रखते हुए यह कहा गया है कि भाषिक शब्द सार्थक ही होते हैं। अर्थात् उनका निश्चित ही कुछ अर्थ होता है।

पतंजलि (महाभाष्य) में ध्वनि को शब्द का गुण बतलाते हुए स्फोट को ही शब्द कहा है—

“स्फोट शब्दः। ध्वनि शब्द गुणः।”

डॉ. कपिलदेव (अर्थविज्ञान और व्याकरण दर्शन—1951, पृ. 16) में ‘स्फोट’ को शब्द की ऐसी सत्ता के रूप में स्वीकार किया है जिससे उसका अर्थबोध होता है।

श्रीगौरीनाथ शास्त्री महर्षि पतंजलि के महाभाष्य में लिखित शब्द की एक और परिभाषा प्रस्तुत करते हैं—

“जिसका कुछ अर्थ हो वह शब्द है।”

इस परिभाषा में अतिव्यापकता है। आचार्य कुमारिल ने इसमें अभिव्यक्ति दोष का संकेत करते हुए इसे अवैज्ञानिक बतलाया है। यहां मैं आचार्य कुमारिल से सहमत हूँ क्योंकि सभी जिसका कुछ अर्थ हो शब्द नहीं है। वस्तु या शब्द का गुण अर्थ ही है। सभी वस्तुओं के अर्थ हैं किंतु वस्तु को शब्द की संज्ञा नहीं दी जा सकती है। व्यक्ति, वस्तु, स्थान एवं भाव सभी में कुछ-न-कुछ अर्थ होता है, किंतु उसे शब्द नहीं कहा जा सकता है। शब्द के लिए उच्चरित होना अत्यावश्यक है। इस दृष्टि से हम कह सकते हैं जो उच्चरित हो तथा जिसका कुछ अर्थ हो वह शब्द है किंतु उच्चरित होने पर अर्थमयता स्वयं ही आ जाती है इसलिए ऐसा कहना भी उचित नहीं है। क्योंकि भावाभिव्यक्ति किसी अर्थ की प्रतीति कराने के लिए ही की जाती है। इसलिए जो उच्चरित होगा वह अर्थमय ही होगा। अन्यथा उसका अर्थ ग्रहण कैसे किया जाएगा। उच्चरित होने पर ही ग्राह्य होता है।

भोज (भृंगार प्रकाश) ने शब्द की परिभाषा इन्हीं आधारों पर दी है—

“येनोच्चरितेन अर्थः प्रतीयते स शब्दः।”

अर्थात् जिसके उच्चारण (बोलने) से अर्थ की प्रतीति हो उसे शब्द कहते हैं।

आचार्य कुमारिल ने शब्द की परिभाषा करते हुए कुछ ऐसा ही लिखा है—

“जो कर्णेन्द्रियों के द्वारा ग्रहण किया जाता है वह शब्द है।”

पतंजलि (महाभाष्य) ने भी शब्द की ऐसी ही परिभाषा दी है—

“प्रतीत पदार्थको लोके ध्वनिः शब्दः।”

अर्थात् वह ध्वनि जिससे लोक में पद के अर्थ की प्रतीति या पता हो शब्द कहते हैं।

उपर्युक्त परिभाषाओं में कम या अधिक सभी में ‘अर्थ-प्रतीति’ पर विशेष बल दिया गया है। बात भी ठीक है अर्थ के बिना शब्द की सत्ता ही नहीं होती है, किंतु अर्थमयता ही शब्द नहीं है। इस दृष्टि से इन परिभाषाओं को वैज्ञानिकता की कसौटी पर पूर्णरूपेण खरी नहीं कहा जा सकता है।

2.2. हिंदी-साहित्य

शब्द की अनेक परिभाषाएं हिंदी साहित्य में कई स्थानों पर दी गई हैं जिनमें कोश, व्याकरण तथा विभिन्न प्रकार के साहित्य हैं। सुविधानुसार इनको दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है—(1) कोश एवं व्याकरण, (2) भाषाविज्ञान।

कोश एवं व्याकरण

हिंदी के प्रायः सभी कोशकारों ने शब्द का अर्थ बतलाने के प्रयास में उसकी परिभाषाएं भी दी हैं। यही स्थिति वैयाकरणों की भी रही है।

रामचन्द्र वर्मा (मानक हिंदी कोश—1966, पृ. 144) ने शब्द का अर्थ बतलाते हुए इसकी दो परिभाषाएं दी हैं जिसके अनुसार ‘कंप’ या ‘संकेत’ को ही शब्द कहा है; यथा—

“किसी प्रकार के आघात के फलस्वरूप वायु में होने वाला ऐसा कंप जो कानों में पहुंचकर सुनाई पड़ता हो, शब्द कहलाता है।

अक्षरों, वर्णों आदि से बना और मुंह से उच्चरित होने या लिखा जाने वाला वह संकेत जो किसी कार्य, बात, या भाव का बोधक हो, शब्द कहलाता है।

कालिकाप्रसाद (वृहत् हिंदी कोश—सं. 2009, 1274) ने ‘क्षोभ’ को ही शब्द की संज्ञा दी है—

“आकाश में किसी भी प्रकार से उत्पन्न क्षोभ जो वायुतरंग द्वारा कानों तक जाकर सुनाई पड़े अथवा पड़ सके, शब्द कहलाता है।

विश्वेश्वर नारायण श्रीवास्तव (हिंदी राष्ट्रभाषा कोश) ने शब्द की निम्न परिभाषा दी है—

“वह सार्थक ध्वनि जिससे किसी पदार्थ या भाव आदि का बोध हो उसे शब्द कहते हैं।”

प्रस्तुत परिभाषा शब्द की स्वतंत्र सत्ता तथा उसके क्षेत्र विस्तार की परिचायक नहीं है जिसके परिणामस्वरूप इस परिभाषा के अंतर्गत पद तथा वाक्य भी शब्द की कोटि में आ जाते हैं। इस दृष्टि से इस परिभाषा को भाषावैज्ञानिक परिभाषा की संज्ञा नहीं दी जा सकती है।

डॉ. रमाशंकर शुक्ल ‘रसाल’ (भाषा शब्दकोश) ने शब्द की परिभाषा देते हुए लिखा है—

“किसी पदार्थ या भावादिवोधक सार्थक ध्वनि को शब्द कहते हैं।” इस परिभाषा में भी स्वतंत्र सत्ता तथा क्षेत्र-विस्तार एवं सीमा का संकेत न होने से भाषावैज्ञानिकता नहीं है।

श्री हरिशंकर शर्मा (अभिनव हिंदी कोश) ने शब्द की परिभाषा देते हुए लिखा है—

“किसी पदार्थ या भावादिवोधक सार्थक ध्वनि को शब्द कहते हैं।” यह परिभाषा भी श्रीवास्तव एवं डॉ. रामशंकर शुक्ल ‘रसाल’ जैसी होने के परिणामस्वरूप भाषावैज्ञानिक परिभाषा की कोटि में नहीं आती है।

श्री रामचन्द्र वर्मा (मानक हिंदी कोश—1966, पृ. 144) ने ‘हिंदी कोश’ में शब्द की निम्न परिभाषा दी है—

“अक्षरों या वर्णों आदि से बना हुआ और मुँह से उच्चरित अथवा लिखा जाने वाला संकेत जो भाव, कार्य या बात का बोधक हो उसे शब्द कहते हैं।”

इस परिभाषा में विस्तार अधिक है जबकि शब्द की स्वतंत्र सत्ता तथा क्षेत्र विस्तार एवं सीमा आदि का ज्ञान यह परिभाषा नहीं कराती है फिर वैज्ञानिकता के क्षेत्र में कैसे आ सकती है।

आचार्य श्यामसुंदर दास (हिंदी शब्द सागर) शब्द की लंबी परिभाषा देते हुए लिखा है—

“वायु में होने वाला यह कंप जो किसी पदार्थ पर आघात के कारण अथवा स्वयं वायु पर आघात पड़ने के कारण उत्पन्न होकर कान या श्रवणेन्द्रिय तक पहुँचता है और उसमें एक विशेष प्रकार का क्षोभ उत्पन्न करता है उसे शब्द कहते हैं।”

रामचन्द्र वर्मा ने ‘कंप’ या ‘संकेत’ को ही शब्द की संज्ञा दी है जबकि कालिका प्रसाद ने ‘क्षोभ’ दोनों का सहारा लेकर एकीकरण स्थापित किया गया है। बात वैज्ञानिक भी है—वायु में होने वाला कंप ही श्रवणेन्द्रिय में क्षोभ उत्पन्न करता है तभी उसका अर्थ ग्रहण किया जाता है।

आचार्य श्यामसुंदर दास (हिंदी शब्द सागर) ने शब्द की एक परिभाषा और दी है—

“वह स्वतंत्र, व्यक्त और सार्थक ध्वनि जो एक या अधिक वर्णों के संयोग से कंठ और तालु आदि के द्वारा उत्पन्न हो और जिससे सुनने वाले को किसी पदार्थ, कार्य, या भाव आदि का बोध हो उसे शब्द कहते हैं।”

दास की प्रथम परिभाषा में आंशिक वैज्ञानिकता आई थी तो दूसरी परिभाषा में पूर्ण वैज्ञानिकता का समावेश हो गया है। प्रथम परिभाषा में ‘कंप’ एवं ‘क्षोभ’ के द्वारा केवल उच्चरित एवं श्रवण ग्राह्य की ओर संकेत किया गया है तो दूसरी परिभाषा में शब्द की स्वतंत्र सत्ता, व्यक्तता, सार्थकता; उसकी संरचना (एक या अधिक वर्णों का संयोग होना); उच्चारण स्थान (कंठ और तालु आदि), श्रवणेन्द्रिय ग्राह्यता एवं अर्थग्राह्यता आदि सभी विशेषताओं का उल्लेख कर दिया गया है। यद्यपि यह परिभाषा कुछ लंबी अवश्य हो गई है, किंतु शब्द की यह पूर्ण वैज्ञानिक परिभाषा है। अन्य कोशकारों की अपेक्षा दास की यह परिभाषा वैज्ञानिकता की कसौटी पर खरी उतरती है।

स्व. पं. कामताप्रसाद गुरु (हिंदी व्याकरण—सं. 2017, पृ. 53) ने शब्द विचार के अंतर्गत शब्द की निम्न परिभाषा दी है—

“एक या अधिक अक्षरों से बनी हुई स्वतंत्र सार्थक ध्वनि को शब्द कहते हैं।”

उपर्युक्त परिभाषा में शब्द को सार्थक एवं स्वतंत्र तो स्वीकार किया गया है, किंतु ध्वनि को शब्द की संज्ञा दी गई है। जबकि पहले यह भी कहा गया है कि एक या अधिक अक्षरों से बनी हुई ध्वनि। अक्षर को यदि पद अर्थ में लें तो ध्वनि या ध्वनि समूह से अक्षर या पद की संरचना होती है न कि अक्षर या अक्षरों से ध्वनि की। लगता है कि गुरु का अभिप्राय ‘अक्षर’ से ‘ध्वनि’ का ‘ध्वनि’ से ‘ध्वनि समूह’ या ‘ध्वनि’ का था। इस दृष्टि से शब्द की परिभाषा कुछ इस प्रकार होगी—

एक या अधिक ध्वनियों से बनी हुई स्वतंत्र सार्थक ध्वनि या ध्वनि समूह को शब्द कहते हैं।

2.3. भाषाविज्ञान

हिंदी साहित्य के अंतर्गत विभिन्न भाषा-विदों ने शब्द की अनेक परिभाषाएं दी हैं जिनमें प्रमुख परिभाषाएं निम्नलिखित हैं—

डॉ. मंगलदेव शास्त्री (भाषा-विज्ञान—1962, पृ. 37, 38) ने शब्द की परिभाषा देते हुए विभिन्न तथ्यों को दृष्टिगत रखा है जिनमें शब्द का शाब्दिक या श्रोतव्य रूप, शब्द-वाक्य-संबंध तथा शब्द-अर्थ-संबंध प्रमुख हैं। इन्हीं को आधार बनाकर डॉ. शास्त्री ने शब्द की तीन परिभाषाएं दी हैं—

शाब्दिक या श्रोतव्य रूप—“शब्द के शाब्दिक या श्रोतव्य रूप को यदि दृष्टि में रखा जाए तो अक्षरों या वर्णों के समुदाय विशेष को शब्द कहा जा सकता है।”

शब्द-अर्थ-संबंध—“शब्द और अर्थ के परस्पर संबंध को दृष्टि में रखकर यदि हम लक्षण करना चाहें तो कह सकते हैं कि हमारे विचारों के प्रतीक-रूप उच्चरित (या

लिखित) संकेतों को शब्द कहते हैं।”

डॉ. मंगलदेव शास्त्री की उपर्युक्त तीनों परिभाषाओं को देखकर यह स्पष्ट हो जाता है कि शब्द की परिभाषा देने की जटिलता उनके सम्मुख भी थी अन्यथा विभिन्न दृष्टियों से अनेक परिभाषा न देकर एक ही परिभाषा देते किंचित उसमें वैज्ञानिकता अधिक होती। प्रथम परिभाषा में अक्षरों एवं वर्णों को ध्वनि का पर्यायवाची माना है जो उचित नहीं है। दूसरी बात यह कि न केवल ध्वनि समूह अपितु ध्वनि को भी शब्द की संज्ञा दी जाती है यदि उसकी स्वतंत्र सत्ता हो तथा सार्थक हो यथा—‘ख’ एवं ‘ग’। ख = खाली या आकाश, ग = गमन करने वाला, लग = पक्षी। यहां ख, ग भी खग की भांति स्वतंत्र शब्द इकाइयां हैं। दूसरी परिभाषा में वाक्य के चरमावयव अर्थात् इकाई की स्वतंत्र सत्ता को स्वीकारा गया है, किंतु उसके उच्चरित एवं सार्थक लक्षणों को दृष्टि से ओझल कर दिया गया है। तीसरी परिभाषा में शब्द की अर्थमयता अर्थात् सार्थकता पर ही बल दिया गया है अन्य विशेषताओं को छोड़ दिया गया है। यदि डॉ. शास्त्री तीनों दृष्टियों से एक परिभाषा देना चाहते हैं तो निश्चित दे सकते थे, किंतु क्यों नहीं दिया कुछ नहीं कहा जा सकता। अन्यथा परिभाषा कुछ इस प्रकार की होती—

हमारे विचारों के प्रतीक-रूप उच्चरित संकेतों अथवा अक्षरों या वर्णों से निर्मित स्वतंत्र इकाई को शब्द कहते हैं। विचार-संकेत में सार्थकता की विशेषता भी आ जाती है।

आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा ने शब्द की निम्न परिभाषा दी है—

“उच्चारण की दृष्टि से भाषा की लघुतम इकाई ध्वनि है और सार्थकता की दृष्टि से शब्द।”

आचार्य शर्मा ने इतनी छोटी परिभाषा के अंतर्गत ध्वनि एवं शब्द दोनों की परिभाषाएं दे दी एवं दोनों परिभाषाओं की सूत्र रूप में तुलना भी प्रस्तुत कर दी। इस प्रकार यह परिभाषा छोटी होते हुए भी पूर्ण एवं वैज्ञानिक है।

डॉ. द्वारिकाप्रसाद सक्सेना ने शब्द का स्वरूप निश्चित करते हुए उसकी निम्न परिभाषा दी है—

“प्रायः उस ध्वनि-समूह को ‘शब्द’ कहते हैं, जिसमें भावबोधन अथवा अर्थ-वहन करने की क्षमता होती है।” इससे स्पष्ट हो जाता है कि शब्द में सार्थकता का होना अनिवार्य तत्त्व है अन्यथा भावबोधन न हो सके।

पतंजलि (महाभाष्य, आह्निक-1) ने भी शब्द का स्वरूप इसी प्रकार से निरूपित किया है—

“येनोच्चारितेन सास्नालाङ्गलककुदखुरविषाणिनां संप्रत्ययो भवति स शब्दः।”

अर्थात् जिसके उच्चारण से सास्ना, लांगूल, ककुद, खुर, विषाण आदि से युक्त वस्तु का बोध हो उसे ‘शब्द’ कहते हैं। भर्तृहरि (वाक्य पदीय-1/119) ने भी लिखा है—

“षड्जादिभेद शब्देन व्याख्यातो खप्यते यतः।

तस्मदर्थविधाः सर्वाः शब्द मात्राषु निश्चिताः॥”

अर्थात् असमाख्येय षड्ज, ऋषभ, गांधार, पंचम, धैवत और निषाद स्वरों का यथार्थ विवेचन किया जाता है और समाख्येय गौ आदि अर्थों का भी ‘शब्द’ द्वारा ही बोध होता है। अतः संपूर्ण भावों की जानकारी एवं अर्थों के बोध का साधन ‘शब्द’ ही होता है।

डॉ. सक्सेना ने अपनी परिभाषा में ‘प्रायः’ शब्द का प्रयोग किया है जो कि किसी भी वैज्ञानिक परिभाषा में क्षम्य नहीं होता। अर्थ वहन करने वाले ध्वनि समूह को शब्द की संज्ञा से अभिहित करना औचित्यपूर्ण नहीं है क्योंकि ध्वनि समूह के अंतर्गत पद तथा वाक्य भी आ जाते हैं जो अर्थवहन करने में सक्षम होते हैं। इस परिभाषा के अंतर्गत पद एवं वाक्य का भी समावेश हो जाता है। यह अतिव्याप्ति दोष है। इसलिए इस परिभाषा को भी वैज्ञानिक नहीं कहा जा सकता है।

डॉ. भोलानाथ तिवारी (शब्दों का अध्ययन, 1969, पृ. 9-11) ने विश्व की समस्त भाषाओं के परिप्रेक्ष्य में शब्द की सभी दृष्टियों से पूर्ण परिभाषा देना प्रायः असंभव-सा माना है। अनेक विद्वानों की परिभाषा देने के पश्चात् जो परिभाषा दी है वह इस प्रकार है—

“शब्द अर्थ के स्तर पर लघुतम इकाई है।”

इस परिभाषा में शब्द के दो गुणों की विवेचना समाहित है—(1) सार्थकता, (2) अर्थ की दृष्टि से लघुतम इकाई। किंतु इस परिभाषा में ‘योगिक’ या ‘योगरूढ़’ शब्दों का समावेश नहीं हो पाता है जबकि शब्द समूह के अंतर्गत उनका अपना स्वतंत्र अस्तित्व है। ध्वनि के स्वर पर लघुतम इकाई के अंतर्गत उपसर्ग तथा प्रत्यय आ जाते हैं, किंतु इनको शब्द की संज्ञा नहीं दी जा सकती है क्योंकि इनका अपना स्वतंत्र अर्थ या अस्तित्व नहीं होता है। किसी शब्द के साथ लगकर ये अपना अर्थ उसमें भर पाते हैं। इसी प्रकार एक ध्वनि का सर्वत्र अर्थ नहीं होता है।

डॉ. भोलानाथ तिवारी (भाषाविज्ञान—1971, पृ. 403) ने शब्द की निम्न परिभाषा दी है—

“शब्द अर्थ के स्तर पर भाषा की लघुतम स्वतंत्र इकाई है।”

इस परिभाषा को भी डॉ. तिवारी ने ‘शब्द’ की काम चलाऊ परिभाषा की संज्ञा दी है। यद्यपि यह परिभाषा न केवल सूक्ष्म अपितु पूर्ण एवं वैज्ञानिक भी है। क्योंकि इसमें सार्थकता एवं लघुतम स्वतंत्र इकाई की विशेषता विद्यमान है।

डॉ. भोलानाथ तिवारी (शब्दों का अध्ययन—1969, पृ. 11) ने शब्द की व्यापक परिभाषा देते हुए लिखा है—

“व्यापकतम रूप में उपसर्ग, प्रत्यय, रूढ़ शब्द, यौगिक शब्द, सार्थक शब्द, निरर्थक शब्द सभी ‘शब्द’ माने जा सकते हैं।”

इस दृष्टि से शब्द की व्यापक परिभाषा देना चाहें तो हम कह सकते हैं—
“भाषिक ध्वनि या ध्वनि-समूहों को शब्द कहते हैं।”

भाषिक शब्द लगा देने से सार्थकता की विशेषता भी आ जाती है। क्योंकि भाषाविज्ञान के अंतर्गत सभी शब्द सार्थक होते हैं। सार्थकता के अभाव में भावाभिव्यक्ति संभव नहीं हो सकती है।

डॉ. भोलानाथ तिवारी (शब्दों का अध्ययन—1969, पृ. 11) ने परिभाषा में चार तथ्यों—(1) अर्थवान होना, (2) एक या अधिक ध्वनियों का होना, (3) स्वतंत्र इकाई होना, (4) वाक्य-रचना के स्तर पर एकाधिक इकाइयों का न होना—के आधार पर शब्द की निम्न परिभाषा दी है—

“अर्थ और ध्वनि के योग की वह स्वतंत्र इकाई जो भाषा में वाक्य रचना के स्तर पर एकाधिक इकाइयों की न हो, शब्द है।”

इस परिभाषा में ‘अर्थ और ध्वनि के योग’ वाक्यांश औचित्यपूर्ण नहीं प्रतीत होता है। क्योंकि ध्वनि या वाणी से अर्थ को अलग नहीं किया जा सकता है। महाकवि गोस्वामी तुलसीदास (रामचरित मानस—सं. 2046, पृ. 25) सटीक रूप में कहा है—

“गिरा अर्थ जलबीच सम,
कहिअत भिन्न न भिन्न।”

अर्थात् वाणी और अर्थ को भिन्न नहीं किया जा सकता है। महाकवि कालिदास (कुमारसंभव—सं. 2018, पृ. 2) ने भी ‘वागर्थ’ कहकर वाक् एवं अर्थ की अभिन्नता का प्रतिपादन किया है।

“वाक्य रचना के स्तर पर एकाधिक इकाइयों की न हो।”

यह वाक्यांश भी परिभाषा के औचित्य को संदिग्ध बना देता है। इसके लिए ‘लघुतम इकाई’ का प्रयोग औचित्य का निर्वाह करने में सक्षम है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो गया है कि डॉ. तिवारी की परिभाषा—

“शब्द अर्थ के स्तर पर भाषा की लघुतम स्वतंत्र इकाई है।”—वैज्ञानिक ही नहीं पूर्ण भी है।

2.4. विदेशी (परराष्ट्रीय) भाषाविद्

भारतीयों के अतिरिक्त पाश्चात्यों में भी शब्द की परिभाषाएं देने में अपने को पीछे नहीं रखा है। जैसा कि हम पहले कह आए हैं शब्द की परिभाषा देना उन्होंने भी कष्टसाध्य कार्य माना है फिर भी अनेक भाषावैज्ञानिकों ने समय-समय पर शब्द की निम्न परिभाषाएं दी हैं—

“The smallest speech unit capable of functioning as complete utterance.”

—Palmer

अर्थात् भाषा की एक ऐसी लघुतम इकाई जो महत्वपूर्ण उच्चारण के रूप में काम कर सके उसे शब्द कहते हैं।

—पालमर

“The smallest significant unit of language.”

—Ullman

अर्थात् भाषा की लघुतम महत्वपूर्ण इकाई शब्द है।

—उल्मैन

“A word is an autonomous unit of thought and sense. It results from the association of a given meaning with a given grammatical employment or is meaning fixed and accepted by convention or is the smallest thought using vocally expressible.”

—Entwistle

अर्थात् शब्द विचार तथा अर्थ की स्वतंत्र इकाई है। यह प्रदत्त अर्थ एवं प्रदत्त व्याकरणात्मक प्रयोग के परिणामस्वरूप होता है। अथवा यह एक ध्वनि-तंतुजाल है जो स्वयमेव सुनिश्चित एवं परंपरागत अर्थ रखता है, अथवा विचार की यह लघुतम इकाई है जिसकी ध्वन्यात्मक अभिव्यक्ति हो सकती है।

—एन्ट्विस्टल

“A word is the result of the association of a given meaning with a given combination of sounds, capable of given grammatical use.”

—Maillet

अर्थात् शब्द अर्थ और ध्वनि-समूह का ऐसा योग है जिसका व्याकरणिक प्रयोग हो सकता है।

—मैलेट

“A word is the smallest independent unit of language.”

—Bloomfield

अर्थात् शब्द भाषा का लघुतम मुक्त रूप है।

—ब्लूमफील्ड

“The smallest independent unit with in the sentence.”

—Robertson & Cassidy

अर्थात् वाक्य में लघुतम स्वतंत्र इकाई शब्द है।

—रॉबर्टसन एवं कैसिडी

“An ultimate sense unit.”

—Sweet

अर्थात् लघुतम सार्थक इकाई शब्द है।

—स्वैट

पाश्चात्य भाषाविदों की उपर्युक्त परिभाषाओं के अवलोकन से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय भाषाविदों की भांति पाश्चात्यों में भी 'शब्द' की परिभाषा में मतैक्य नहीं है। इतना ही नहीं डॉ. मंगलदेव शास्त्री ने श्रोतव्य रूप, शब्द-वाक्य संबंध एवं शब्द-अर्थ संबंध को दृष्टिगत रखते हुए शब्द की तीन परिभाषाएं दी हैं। ठीक उसी प्रकार एन. हिसल ने भी 'शब्द' की तीन परिभाषाएं दी हैं।

इन सभी परिभाषाओं में प्रायः सार्थक, लघुतम, स्वतंत्र इकाई शब्द समाविष्ट किया गया है। वैज्ञानिकता की कसौटी पर प्रायः कोई भी परिभाषा पूर्ण खरी नहीं उतरती है किंतु उनकी किसी-न-किसी पक्ष की वैज्ञानिकता को नकारा नहीं जा सकता है। भारतीय एवं पाश्चात्य सभी परिभाषाओं में डॉ. भोलानाथ तिवारी की परिभाषा सर्वाधिक वैज्ञानिक प्रतीत होती है। यद्यपि उसे भी पूर्ण निर्दोष नहीं कहा जा सकता है जैसा कि हम पहले आलोच्य दृष्टि से परख आए हैं।

विवादास्पद स्थिति को समाप्त करने के लिए 'शब्द' की निश्चित परिभाषा देना परमावश्यक है, किंतु इससे पहले कि कोई परिभाषा दें शब्द के विभिन्न पक्षों का अवलोकन अत्यावश्यक है। शब्द की निम्न विशेषताएं होती हैं—

1. उच्चरित।
2. ध्वनि या ध्वनि-समूह।
3. सार्थक।
4. स्वतंत्र इकाई।
5. एकाधिक इकाई का न होना।

इन सभी विशेषताओं को दृष्टिगत रखते हुए शब्द की परिभाषा निम्न प्रकार दी जा सकती है—

“स्फोट-ध्वनिगुण से युक्त भाषा की लघुतम स्वतंत्र इकाई को शब्द कहते हैं।”

स्फोट-ध्वनि गुण कहने से उच्चारण, ध्वनि या ध्वनि-समूह तथा सार्थकता आदि की सभी विशेषताएं आ जाती हैं किन्तु परिभाषा अनावश्यक रूप से बढ़ जाती है। 'ध्वनि' शब्द को हटाकर निम्न परिभाषा दी जा सकती है—

“स्फोट गुण से युक्त भाषा की लघुतम इकाई शब्द है।”

अर्थ की दृष्टि से देखा जाय तो भाषा की लघुतम इकाई शब्द ही है। इस लघुतम इकाई को खंडित करने में उसका अर्थ भी खंडित हो जाता है अर्थात् शब्द सार्थक नहीं रह जाता है अर्थहीन हो जाता है। व्यावहारिक दृष्टि से मूल शब्द के अतिरिक्त यौगिक या योग रूढ़ शब्द एक ही श्रेणी में रखे जाते हैं तथा योग की दृष्टि से शब्द के दो भेद किए जाते हैं—(1) अयौगिक या मूल शब्द, (2) यौगिक या योग रूढ़ शब्द। किंतु वैज्ञानिक दृष्टि से यौगिक शब्द को 'शब्द' की संज्ञा नहीं दी जानी चाहिए क्योंकि वह

लघुतम इकाई नहीं होती है। उदाहरणार्थ—'संपूर्ण' एक यौगिक शब्द है जिसका मूल शब्द 'पूर्ण' है, 'सम्' उपसर्ग है। 'पूर्ण' स्वतंत्र सार्थक इकाई है जबकि 'सम्' न तो स्वतंत्र इकाई है न ही इसका अपना स्वतंत्र अर्थ है। 'पूर्ण' के साथ योग हो जाने से अर्थवान् हो जाता है। यहां स्वतंत्र शब्द का यह अर्थ है कि अर्थ एवं प्रयोग की दृष्टि से शब्द अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखता है। वह पराश्रित नहीं होता है।

अंततोगत्वा शब्द की सभी विशेषताओं को दृष्टिगत रखते हुए हम शब्द की निम्न परिभाषा दे सकते हैं—

“भाषिक लघुतम स्वतंत्र इकाई शब्द है।”

अर्थात् भाषा की लघुतम सार्थक स्वतंत्र इकाई शब्द कहलाती है।

इस परिभाषा द्वारा आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा की परिभाषा—“उच्चारण की दृष्टि से भाषा की लघुतम इकाई ध्वनि है और सार्थकता की दृष्टि से शब्द।”—तथा डॉ. भोलानाथ तिवारी की परिभाषा—“अर्थ के स्तर पर भाषा की लघुतम स्वतंत्र इकाई शब्द है।”—का परिष्कार हो जाता है।

शब्द : वर्गीकरण

शब्द को ब्रह्म की भाँति अनंत, अक्षर, अजन्मा एवं असीम आदि माना गया है। इसी दृष्टि से शब्द को ब्रह्म की संज्ञा दी जाती है अर्थात् शब्द ब्रह्म कहा जाता है। जिस प्रकार ब्रह्म को 'अनेक रूप रूपाय' कहकर विविध रूप माना जाता है, उसी प्रकार शब्द के भी अनेक रूप स्वीकार किए जाते हैं। उन रूपों को विद्वानों ने कतिपय भेदों में विभाजित करके उनको समझने एवं जानने हेतु सुगम बना दिया है। क्रमबद्ध एवं सुसंगठित अध्ययन हेतु विषय का वर्गीकृत होना अत्यावश्यक है। वर्गीकरण के अभाव में सूक्ष्म एवं वैज्ञानिक अध्ययन कठिन ही नहीं असंभव है। वैज्ञानिक अध्ययन हेतु वर्गीकरण का भी वैज्ञानिक होना नितांत आवश्यक है।

वर्गीकरण से पूर्व यह भी जान लेना परम आवश्यक है कि वर्गीकरण क्या है? उसके उत्तर हेतु विद्वानों द्वारा प्रदत्त मंतव्यों का अवलोकन अपेक्षित है।

पं. कामताप्रसाद गुरु (हिंदी व्याकरण—सं. 2017, पृ. 56) ने लिखा है—

“शब्दों की भिन्न-भिन्न जातियाँ बताना उनका वर्गीकरण कहलाता है।”

तथा “प्रयोग के अनुसार शब्दों की भिन्न-भिन्न जातियों को शब्द भेद कहते हैं।”

डॉ. भोलानाथ तिवारी (हिंदी-भाषा, 1972, पृ. भूमिका) ने एवं डॉ. पूर्णसिंह डवास (हिंदी में देशज शब्द—1972, पृ. क) में लिखा है—

“किसी भी भाषा के शब्दों को इतिहास, रचना, प्रयोग, रूपरचना एवं ध्वनि प्रभाव आदि की दृष्टियों से अलग-अलग रखना वर्गीकरण कहलाता है।”

उपर्युक्त दोनों परिभाषाओं को दृष्टिगत रखते हुए हम कह सकते हैं—

“भाषावैज्ञानिक ढंग से किन्हीं विशिष्ट आधारों को दृष्टिगत रखते हुए शब्दों को श्रेणीबद्ध करना ही शब्दों का वर्गीकरण कहलाता है।”

शब्दाध्ययन हेतु वर्गीकरण का अपूर्व महत्व है। भारत ही नहीं विदेशों में भी प्राचीन काल से शब्दों का अध्ययन होता रहा है।

प्राचीन आचार्यों, आधुनिक भारतीय भाषावैज्ञानिकों तथा पाश्चात्य भाषाविदों ने विभिन्न आधारों पर शब्दों का वर्गीकरण किया है। इनका समवेत विवेचन न करके हम

अलग-अलग इनकी विवेचना प्रस्तुत करेंगे। मुख्य रूप से इन वर्गीकरणों को भारतीय और अभारतीय या पाश्चात्य दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है।

3.1. भारतीय

भारतीय विद्वान् जिन्होंने शब्दों का वर्गीकरण किया है उन्हें प्राचीन आचार्य एवं आधुनिक भाषाविद् दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है।

3.1.1. प्राचीन आचार्य

प्राचीन आचार्यों में यास्क, कात्यायन, पाणिनि, भरत, पतंजलि, दंडी एवं वाग्भट आदि प्रमुख हैं जिन्होंने शब्दों का वर्गीकरण किया है—

यास्क—भारतवर्ष में शब्द का प्राचीनतम वैज्ञानिक वर्गीकरण यास्क मुनि का माना जाता है। यह वर्गीकरण उनके निरुक्त में मिलता है। यद्यपि इससे पूर्व भी शुभ-अशुभ एवं साधु-असाधु आदि रूपों में शब्दों को वर्गीकृत किया गया था किंतु उस वर्गीकरण को वैज्ञानिक नहीं कहा जा सकता है। जबकि आधुनिक भाषावैज्ञानिक भी शब्द के इन रूपों का उल्लेख किए बिना नहीं रहते हैं। 8वीं सदी ई. पूर्व यास्क (निरुक्त—1963, पृ. 3) ने शब्द के चार प्रकार गिनाए हैं—

“चत्वारि पदजातानि नामाख्याते चोपसर्ग निपातश्च।”

अर्थात् नाम, आख्यात, उपसर्ग एवं निपात शब्द के चार प्रकार हैं। निपात के उपार्थक, कर्मापसंग्रहार्थक एवं पादपूरक तीन उपभेद किए हैं। यह वर्गीकरण मुख्य रूप से व्याकरणिक है अर्थात् शब्दों के वाक्य में प्रयोग पर आधारित है। आज तक के वर्गीकरणों में इस वर्गीकरण का न केवल महत्वपूर्ण स्थान है अपितु कुछ दृष्टियों से यह सर्वाधिक वैज्ञानिक वर्गीकरण है।

कात्यायन मुनि—पाणिनि से भी प्राचीनतर, शुक्लयजुर्वेद प्रातिसाख्य के रचयिता कात्यायन मुनि ने (वाजसनेयि-प्रातिसाख्य) में शब्द के चार प्रकार माने हैं—तिङ्, कृत, तद्धित एवं समास। कुछ अन्य प्राति साख्यों में भी इस प्रकार शब्दों के वर्गीकरण के संकेत मिलते हैं।

पाणिनि—पाणिनि (अष्टाध्यायी) ई. पू. 5वीं सदी में शब्द को सुबन्त एवं तिङन्त दो वर्गों में विभक्त किया। यास्क द्वारा वर्गीकरण शब्दों के विभिन्न वर्गों में से आख्यात के अंतर्गत ही क्रिया शब्द आते हैं जिसे पाणिनि ने तिङन्त के रूप में स्वीकार किया है तथा यास्क द्वारा वर्गीकृत अन्य तीनों—नाम, उपसर्ग तथा निपात को पाणिनि सुबन्त के अंतर्गत मानते हैं।

कात्यायन, यास्क एवं पाणिनि के अतिरिक्त शब्द-समूह का वर्गीकरण करने वाले आचार्यों में भरत, पतंजलि, चंड, दंडी, तथा वाग्भट आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इसी श्रेणी में प्राकृत के आचार्य हेमचंद्र का नाम आता है।

भरत—उपर्युक्त आचार्यों के वर्गीकरण में आचार्य भरत के शब्दों का वर्गीकरण प्राचीनतम माना जाता है। इन्होंने (नाट्य शास्त्र—1943, पृ. 269) शब्द-समूह को तीन वर्गों में विभक्त किया है—

“त्रिविध तच्च विज्ञेयं नाट्ययोग समासतः।

समान शब्द विभ्रष्ट देशीमतमपि वा ॥”

अर्थात् शब्द तीन प्रकार के होते हैं—(1) समान, (2) विभ्रष्ट, (3) देशीमत।

आज भी यह वर्गीकरण मान्य है तथा इसे प्रमुख स्थान दिया जाता है। नाम में कुछ परिवर्तन कर लिया गया है। तत्सम, तद्भव एवं देशज (अज्ञात व्युत्पत्तिक) इसी के परिवर्तित रूप हैं।

पतंजलि—भारतीय आचार्य पतंजलि ने शब्दों को लौकिक तथा वैदिक नामक दो वर्गों में विभाजित है।

चंड—छठी शताब्दी के आचार्य चंड ने (प्राकृतभाषाओं का व्याकरण—पृ. 12) शब्द समूह का विभाजन करते समय किंचित् शब्द-भेद से आचार्य भरत के उक्त तीन शब्द वर्गों की ओर ही संकेत किया है। उन्होंने तीन शब्द वर्गों का उल्लेख किया है—

(1) संस्कृतम्, (2) संस्कृत योनि, (3) देशी प्रसिद्ध।

दंडी—‘काव्यादर्श’ के लेखक आचार्य दंडी (काव्यादर्श—पृ. 1-33) ने लिखा है—

“संस्कृत नाम देवी वागन्वाख्याता महर्षिभिः।

तद्भवस्तत्समो देशीत्यनेकः प्राकृतक्रमः ॥”

—काव्यादर्श 1-33

अर्थात् शब्द तद्भव, तत्सम एवं शैली देशी तीन प्रकार के होते हैं।

वाग्भट—आचार्य वाग्भट (वाग्भटालंकार—2-2, सं. 1962, पृ. 23) ने शब्द-समूह का वर्गीकरण करते हुए लिखा है—

“संस्कृत स्वर्णिगां भाषा शब्दशास्त्रेषु निश्चिता।

प्राकृत तज्ज ततुल्यं देश्यादिकम नकथा ॥”

—वाग्भटालंकार 2-2

अर्थात् ततुल्य, तज्ज एवं देश्या शब्द के तीन भेद किए हैं। आचार्य वाग्भट ने भी उपरि आचार्यों के तीन भेदों की ओर संकेत किया है। ततुल्य अर्थात् तत्सम, तज्ज > तत् ज अर्थात् तद्भव; एवं देश्या अर्थात् देशी शब्द का ही प्रयोग किया है। इनका वर्गीकरण कुछ भिन्न है तो केवल इस अर्थ में कि इन्होंने ‘समान’ अर्थात् ‘तत्सम’ के लिए ‘ततुल्य’ संज्ञा का प्रयोग किया है तथा ‘विभ्रष्ट’ अर्थात् तद्भव को ‘तज्ज’ का नाम दिया है। ‘देशी’ के आधार पर ‘विदेशी’ एक अलग भेद मानकर आज भी ऐतिहासिक आधार पर शब्द के चार भेद किए जाते हैं।

हेमचंद्र—आचार्य हेमचंद्र ने भी संस्कृत आचार्यों की भांति शब्द-समूह का वर्गीकरण किया है। प्राकृत एवं अपभ्रंश के वैयाकरण एवं कोशकार भी वर्गीकरण की उक्त परंपरा के अपवाद नहीं हैं। संस्कृत के आचार्यों का अनुकरण करते हुए इन्होंने भी प्राकृत की शब्द सम्पत्ति को उक्त तीन वर्गों में ही विभाजित किया है। हां, देशज नामक शब्द वर्ग पर अपेक्षाकृत अधिक विस्तार एवं गंभीरता से विचार किया है तथा उसके अध्ययन को नवीन दिशा प्रदान की है।

भारतीय प्राचीन आचार्यों के शब्द-समूह के वर्गीकरण विषयक मत के उपर्युक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि प्रायः सभी आचार्यों ने शब्द को तीन वर्गों में विभक्त किया है। वस्तुतः आचार्य भरत द्वारा किए गए वर्गीकरण को ही थोड़ा बहुत शब्दांतर से सभी ने स्वीकार कर लिया है। ऐतिहासिक अथवा उद्गम स्रोतीय दृष्टि से किया गया शब्द समूह का उक्त वर्गीकरण भारतीय आर्य भाषाओं में थोड़े परिवर्तन-परिवर्द्धन को लिए हुए आज भी प्रचलित है।

3.1.2. आधुनिक भाषाविद्

प्राचीन काल में आचार्यों ने शब्द-समूह को तत्सम, तद्भव एवं देशज तीन वर्गों में विभक्त किया था। आधुनिक युग में भाषाविदों ने इस वर्गीकरण में एक नया भेद और जोड़ दिया। इस प्रकार शब्द-तत्सम, तद्भव, देशज, देशी (स्वराष्ट्रीय) तथा विदेशी (परराष्ट्रीय) पांच प्रकार के हो गए। ‘विदेशी’ (परराष्ट्रीय) वर्ग को शब्द-समूह में लाने का श्रेय आधुनिक भाषाविदों को है। वैसे यदि देखा जाय तो प्राचीन संस्कृत में भी विदेशी शब्द न्यूनाधिक रूप में अवश्य मिलेगा, किंतु उस समय विद्वानों का ध्यान विदेशी वर्ग ने आकर्षित नहीं किया था। ज्यों-ज्यों विदेशियों से हमारा संबंध बढ़ता गया त्यों-त्यों शब्द-समूह में विदेशी (परराष्ट्रीय) वर्ग की ओर आधुनिक भाषाविदों का ध्यान अधिकाधिक आकृष्ट होता गया।

तत्सम, तद्भव, देशज एवं विदेशी के शब्द वर्गीकरण को प्रायः सभी आधुनिक भाषाविज्ञानिकों ने स्वीकार कर लिया है, किंतु आंशिक रूप से असहमति रखने वालों की संख्या को दृष्टि से ओझल नहीं किया जा सकता है। शब्द-समूह के वर्गीकरण संबंधी सूक्ष्म अंतरों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए सहमति एवं असहमति दोनों का विवेचन अत्यावश्यक है। इसी दृष्टि से प्रमुख आधुनिक भाषाविदों की शब्द-समूह वर्गीकरण विषयक मान्यताएं प्रस्तुत हैं—

पं. कामताप्रसाद गुरु—हिंदी के प्रसिद्ध एवं अधिकारी वैयाकरण पं. कामताप्रसाद गुरु (हिंदी व्याकरण—सं. 2017, पृ. 55) ने शब्दों का वर्गीकरण नामक अध्याय में लिखा है—

“किसी वस्तु के विषय में मनुष्य की भावनाएं जिनसे प्रकाश की होती हैं उन्हें सूचित करने के लिए शब्दों के उतने ही भेद होते हैं और उनके उतने ही रूपांतर भी होते हैं।”

पं. गुरु (हिंदी व्याकरण—सं. 2017, पृ. 56) ने शब्द के संज्ञा, क्रिया, विशेषण एवं क्रियाविशेषण चार भेद बतलाने के पश्चात् वर्गीकरण की परिभाषा दी है तथा शब्द भेद की स्पष्ट परिभाषा दी है—

“प्रयोग के अनुसार शब्दों की भिन्न-भिन्न जातियों को शब्द-भेद कहते हैं। शब्दों की भिन्न-भिन्न जातियाँ बताना उनका वर्गीकरण कहलाता है।”

आगे चलकर उन्होंने बतलाया कि वचन एवं काल का बोध कराने के लिए शब्दों में रूपांतर किया जाता है। इतना ही नहीं पं. गुरु (हिंदी व्याकरण—सं. 2017, पृ. 57) ने रूपांतर की परिभाषा देते हुए लिखा है

“शब्द के अर्थ में हेरफेर करने के लिए उस (शब्द) के रूप में जो हेरफेर होता है उसे रूपांतर कहते हैं।”

पं. कामताप्रसाद गुरु ने (हिंदी व्याकरण—सं. 2017, पृ. 57) व्युत्पत्ति की परिभाषा देते हुए लिखा है—

“एक शब्द से दूसरा नया शब्द बनाने की प्रक्रिया को व्युत्पत्ति कहते हैं।”

1. गुरु (हिंदी व्याकरण—सं. 2017, पृ. 57) ने वाक्य में प्रयोग के अनुसार, शब्दों के आठ भेद किए हैं—

- (1) वस्तुओं के नाम बताने वाले शब्द—संज्ञा।
- (2) वस्तुओं के विषय में विधान करने वाले शब्द—क्रिया।
- (3) वस्तुओं की विशेषता बताने वाले शब्द—विशेषण।
- (4) विधान करने वाले शब्दों की विशेषता बताने वाले—क्रियाविशेषण।
- (5) संज्ञा के बदले आने वाले शब्द—सर्वनाम।
- (6) क्रिया से नामार्थक शब्दों का संबंध सूचित करने वाले शब्द—संबंधसूचक।
- (7) दो शब्दों वा वाक्यों को मिलाने वाले शब्द—समुच्चयबोधक।
- (8) केवल मनोविकार सूचित करने वाले—विस्मयादिबोधक।

2. गुरु (हिंदी व्याकरण—2017, पृ. 58) ने रूपांतर के अनुसार शब्दों के दो भेद किए हैं तथा उनकी परिभाषाएं दी हैं—

(1) विकारी—जिस शब्द के रूप में कोई विकार होता है उसे विकारी शब्द कहते हैं। जैसे—लड़का-लड़कों, लड़की इत्यादि। देख-देखना, देखा, देखूँ, देखकर इत्यादि।

(2) अविकारी—जिस शब्द के रूप में कोई विकार नहीं होता उसे अविकारी शब्द वा अव्यय कहते हैं; जैसे—परंतु, अचानक, बिना, बहुधा इत्यादि।

उपर्युक्त आठ वर्गों को इन्हीं दो भेदों में समाहित कर दिया है। संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण और क्रिया को विकारी शब्द कहा है; तथा क्रियाविशेषण, संबंधसूचक, समुच्चयबोधक और विस्मयादिबोधक को अविकारी या अव्यय की संज्ञा दी है। इसके साथ ही टिप्पणी में यह भी दिया है कि “हिंदी के अनेक व्याकरणों में संस्कृत की चाल

पर शब्दों के तीन भेद माने गए हैं—(1) संज्ञा, (2) क्रिया, (3) अव्यय। संस्कृत में प्रातिपदिक, धातु और अव्यय के नाम से शब्दों के तीन भेद माने गए हैं और ये भेद शब्दों के रूपांतर के आधार पर किए गए हैं।”

पं. गुरु (हिंदी व्याकरण—सं. 2017, पृ. 59-60) ने अंग्रेजी में शब्द भेद का उल्लेख करते हुए लिखा है—

“... में भी (जिसके अनुसार हिंदी में आठ शब्द-भेद मानने की चाल पड़ी है) इनके विषय में वैयाकरण एकमत नहीं हैं। उन लोगों में किसी ने दो, किसी ने चार, किसी ने आठ और किसी ने नौ तक भेद माने हैं। इस मतभेद का कारण यह है कि ये वर्गीकरण पूर्णतया वैज्ञानिक आधार पर नहीं किए गए। कुछ विद्वानों ने इन शब्द-भेदों को तर्कसंगत आधार देने की चेष्टा की है, जिसका एक उदाहरण नीचे दिया जाता है—

1. भावनात्मक शब्द
 - (1) वाक्य उद्देश्य होने वाले शब्द—संज्ञा।
 - (2) विधेय होने वाले शब्द—क्रिया।
 - (3) संज्ञा का धर्म बताने वाले शब्द—विशेषण।
 - (4) क्रिया का धर्म बताने वाले शब्द—क्रिया विशेषण।

2. संबंधात्मक शब्द

- (1) संज्ञा का संबंध वाक्य से बताने वाले—संबंध सूचक।
- (2) वाक्य का संबंध वाक्य से बताने वाले शब्द—समुच्चयबोधक।
- (3) अप्रधान (परंतु उपयोगी) शब्द भेद—सर्वनाम।
- (4) अव्याकरणीय उद्धार—विस्मयादिबोधक।”

यह वर्गीकरण पूर्णरूपेण पं. कामताप्रसाद गुरु के शब्द-वर्गीकरण पर आधारित है जबकि गुरु ने आंग्ल भाषा के वैयाकरणों के वर्गीकरण को आधार माना है तथा इसके विषय में तर्क उपस्थित करते हुए गुरु (हिंदी व्याकरण—सं. 2017, पृ. 60-61) ने लिखा है—

“किसी-किसी का मत है कि हिंदी में अंग्रेजी व्याकरण की ‘छूत’ ने घुसनी चाहिए। ऐसे लोगों को सोचना चाहिए कि जिस प्रकार हिंदी से संस्कृत का संबंध नहीं टूट सकता उसी प्रकार अंग्रेजी से उसका वर्तमान संबंध टूटना, इष्ट होने पर भी शक्य नहीं। अंग्रेज लोगों ने अपने सूक्ष्म विचार और दीर्घ उद्योग से ज्ञान की प्रत्येक शाखा में जो समुन्नति की है उसे हम लोग सहज ही में नहीं भुला सकते। यदि संस्कृत में शब्दों के आठ भेद नहीं माने गए हैं तो हिंदी में उन्हें उपयोगिता की दृष्टि से मानने में कोई हानि नहीं, किंतु लाभ ही है।”

उपर्युक्त तर्क की दृष्टि से यह वर्गीकरण चाहे महत्वपूर्ण हो, किंतु वैज्ञानिक नहीं है। इसकी वैज्ञानिकता को स्पष्ट करते हुए स्वयं पं. कामताप्रसाद गुरु (हिंदी व्याकरण—सं. 2017, पृ. 60) ने लिखा है—

“यद्यपि इन भेदों में तर्कसंगत वर्गीकरण के नियमों का पूरा पालन नहीं हो सकता और उनके लक्षण पूर्णतया निर्दोष नहीं हो सकते, तथापि व्याकरण के ज्ञान के लिए इन्हें बनाने की आवश्यकता होती है। व्याकरण के द्वारा विदेशी (परराष्ट्रीय) भाषा सीखने में इन भेदों के ज्ञान से बड़ी सहायता मिलती है। वर्गीकरण का उद्देश्य यही है कि किसी भी विषय की बातें जानने में स्मरण-शक्ति की सहायता मिले।”

3. व्युत्पत्ति के अनुसार पं. कामताप्रसाद गुरु (हिंदी व्याकरण—सं. 2017, पृ. 61) ने शब्द दो प्रकार के माने हैं—

“(1) रूढ़—उन शब्दों को कहते हैं जो दूसरे शब्दों के योग से नहीं बने, से—नाक, कान, पीला, झट, पर इत्यादि।

(2) यौगिक—जो शब्द दूसरे शब्दों के योग से बनते हैं उन्हें यौगिक शब्द कहते हैं; जैसे—कतर-नी, पीला-पन, दूध-वाला, झट-पट, घुड़साल इत्यादि।”

4. अर्थ के अनुसार पं. गुरु (हिंदी व्याकरण—सं. 2017, पृ. 61) ने यौगिक शब्द का एक उपभेद योगरूढ़ माना है—

“अर्थ के अनुसार यौगिक शब्दों का एक भेद योगरूढ़ कहलाता है जिससे कोई विशेष अर्थ पाया जाता है; जैसे—लंबोदर, गिरिधारी, जलद, पंकज इत्यादि।” क्योंकि इन शब्दों के सामान्य अर्थ लंबे पेट वाला, पर्वत को धारण करने वाला, पानी देने वाला, कीचड़ से उत्पन्न आदि न लेकर क्रमशः गणेश, कृष्ण, बादल, कमल आदि ही लिया जाता है।

इस वर्गीकरण में गुरु सामाजिक शब्दों को भी यौगिक शब्दों के वर्ग में रखते हैं जो कि वैज्ञानिक नहीं हैं।

डॉ. सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या—डॉ. चाटुर्ज्या (भारतीय आर्यभाषा और हिंदी—1993, पृ. 199) ने बंगला भाषा का विशेष अध्ययन करते हुए यह निष्कर्ष निकाला है कि किसी भी आधुनिक आर्य भाषा का शब्द-समूह चार प्रकार का हो सकता है : तत्सम, तद्भव, देशी तथा विदेशी। इतना ही नहीं उसी पुस्तक में आगे चलकर इन्होंने ‘अर्द्ध तत्सम’ की सविस्तर विवेचना की है।

डॉ. श्यामसुंदर दास—डॉ. दास ने हिंदी भाषा में शब्द-समूह को निम्नलिखित सात वर्गों में विभाजित किया है—

1. संस्कृत तथा प्राकृत भाषाओं से आगत शब्द।
2. देशज शब्द।
3. अनुकरणात्मक शब्द।
4. तत्समाभास।
5. अर्द्धतद्भव या तद्भवाभास।
6. द्विज-शब्द।
7. प्रतिध्वनित-शब्द।

उद्गमस्रोतीय या ऐतिहासिक दृष्टि से किया गया यह वर्गीकरण वैज्ञानिक नहीं रह गया है क्योंकि ऐतिहासिक दृष्टि से सर्वथा महत्वहीन शब्द-वर्गों को भी इसके अंतर्गत समाहित कर लिया गया है।

डॉ. धीरेन्द्र वर्मा—डॉ. वर्मा (हिंदी भाषा का इतिहास—1953, पृ. 69) ने हिंदी शब्द-समूह की विवेचना करते हुए लिखा है, “शब्द-समूह की दृष्टि से प्रत्येक भाषा एक प्रकार से खिचड़ी होती है।” अर्थात् किसी भी भाषा में विभिन्न स्रोतों से अनेक शब्द उस भाषा के शब्द-समूह में समय-समय पर आकर मिलते रहते हैं। डॉ. वर्मा ने उद्गम-स्रोत की दृष्टि से हिंदी शब्द समूह में अन्य समस्त भाषाओं की भांति अनेक जीवित एवं मृत भाषाओं के संग्रह की उपस्थिति को स्वीकार किया है तथा लिखा है, “साधारणतया हिंदी शब्द-समूह तीन श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है—

1. भारतीय आर्य भाषाओं का शब्द-समूह। (तत्सम-तद्भव)।
2. भारतीय अनार्य भाषाओं से आए हुए शब्द। (देशज)
3. विदेशी (परराष्ट्रीय) भाषाओं के शब्द। (परराष्ट्रीय)

प्रथम वर्ग के अंतर्गत डॉ. वर्मा ने ‘तत्सम’ एवं ‘तद्भव’ नामक शब्द वर्गों का समावेश किया है तथा दूसरे वर्ग के अंतर्गत ‘देशज’ शब्दों की विवेचना की है एवं तीसरे वर्ग ‘विदेशी’ को (1) मुसलमानी प्रभाव तथा (2) यूरोपीय प्रभाव नामक दो उपवर्गों में विभक्त कर दिया है।

डॉ. वर्मा ने बंगला, मराठी तथा पंजाबी आदि आधुनिक आर्य भाषाओं से आए हुए शब्दों की संख्या को अति न्यून बतलाते हुए उन्हें अपने वर्गीकरण में स्थान ही नहीं दिया। जबकि इन भाषाओं के शब्दों की भक्तिकालीन साहित्य में विशेषकर पंजाबी की बहुतायत है। इसके विपरीत तमिल, तेलगु, द्रविड़ तथा मुंडा-कोल आदि भारतीय अनार्य भाषाओं को द्वितीय वर्ग के अंतर्गत स्थान दिया है जबकि उनकी संख्या नगण्य है। तृतीय वर्ग ‘विदेशी’ (परराष्ट्रीय) को विदेशियों के प्रभाव को दृष्टिगत रखते हुए प्रथम उपवर्ग के अंतर्गत फारसी, अरबी, तुर्की आदि भाषाओं के शब्दों को लिया है तथा यह स्वीकार किया है कि ये शब्द मुसलमानी प्रभाव के कारण 1000 ई. से लगभग 600 वर्षों में हिंदी शब्द-समूह में समाविष्ट हुए हैं। जबकि द्वितीय उपवर्ग के अंग्रेजी, पुर्तगाली, फ्रांसीसी, डच, स्पेनिश आदि भाषाओं के शब्द लगभग 1500 ई. से यूरोपीय लोगों के भारत आगमन के साथ हिंदी शब्द-समूह में आने लगे किंतु लगभग तीन सौ वर्ष तक हिंदी भाषी इनके संपर्क में नहीं आए। केवल समुद्र तटवर्ती प्रदेशों तक ही इनका प्रभाव सीमित रहा। 1800 ई. के लगभग भारत पर इनका आधिपत्य हुआ। तब से हिंदी शब्द-समूह पर अंग्रेजी भाषा का पर्याप्त प्रभाव पड़ा। इस विषय के विस्तृत अध्ययन हेतु डॉ. कैलाशचंद्र भाटिया का शोध-प्रबंध हिंदी में अंग्रेजी के आगत शब्दों का भाषा तात्त्विक अध्ययन अवलोकनीय है।

डॉ. बाबुराम सक्सेना—शब्दों का वर्गीकरण करते हुए डॉ. सक्सेना कहते हैं, “किसी भी भाषा के शब्द-समूह में स्वतः उसके उसकी प्राचीन भाषाओं के तथा उसके संपर्क में आई हुई अन्य भाषाओं के संबंध से पांच भाग होते हैं—तत्सम, तद्भव, देशी, विदेशी तथा देशज।” डॉ. सक्सेना क इस वर्गीकरण की मुख्य विशेषता यह है कि “उन्होंने ‘देवी’ तथा ‘देशज’ नाम से दो भिन्न वर्गों को स्वीकारा है जो वास्तव में वैज्ञानिक प्रतीत होता है। क्योंकि विदेशी भाषाओं के समान ही अनेक देशी भाषाओं के शब्द भी किसी भाषा के शब्द-समूह में विद्यमान रहते हैं जिनको देशी (स्वराष्ट्रीय) नाम से अभिहित किया जाना श्रेयस्कर है। जबकि ‘देशज’ किसी भाषा के वे शब्द होते हैं जिनकी व्युत्पत्ति के विषय में ज्ञात नहीं होता है। इसी दृष्टि से इन्हें ‘अज्ञात व्युत्पत्तिक’ शब्द भी कहा गया है। ‘देशी’ शब्दों के संबंध में डॉ. सक्सेना का कहना है कि “देश की अन्य भाषाओं से लिए हुए—जैसे टिकाऊ, चालू, गल्प, छैला, पिल्ला, गंडा आदि शब्द देशी हैं।” इसके विपरीत देशज की परिभाषा देते हुए डॉ. सक्सेना का मत है, “उन शब्दों को हम देशज कहते हैं जो आधुनिक समय की बोलचाल में स्वतः विकसित हो गए हैं जैसे पेड़, गड़बड़ तथा ठंडाई आदि।”

डॉ. उदयनारायण तिवारी—डॉ. उदयनारायण तिवारी (हिंदी भाषा का उद्गम और विकास, 1969, पृ. 207-208) ने ‘हिंदी के विभिन्न तत्व’ शीर्षक के अंतर्गत हिंदी शब्द समूह के निम्न वर्ग स्वीकारे हैं—(1) तद्भव, (2) तत्सम, (3) अर्द्धतत्सम, (4) देशी, (5) विदेशी।

डॉ. तिवारी का देशी से अभिप्राय देशज शब्दों से है। इन वर्गों की विवेचना के पश्चात् देशी भाषाओं से लिए गए शब्दों का एक अलग वर्ग स्वीकार किया है। यद्यपि उसका नामकरण नहीं किया है तथापि उसे अन्य प्रादेशिक भाषाओं से आगत शब्द कहा है। जिसमें पंजाबी, गुजराती, मराठी, बंगला आदि भाषाओं के शब्दों को समाहित किया है। वास्तव में इन सबको देशी (स्वराष्ट्रीय) के अंतर्गत रखा जा सकता है जो देशज से भिन्न हैं।

डॉ. गुणानंद जुयाल—डॉ. जुयाल (हिंदी भाषा का उद्भव और विकास—1966, पृ. 139) मुख्य रूप से भारतीय एवं विदेशी दो वर्गों में शब्द-समूह को विभक्त करते हैं। पुनः इनके उपवर्ग करते हैं—

(अ) भारतीय शब्द

(क) तत्सम, तद्भव, अर्द्ध तत्सम शब्द।

(ख) देशज-अनुकरणात्मक शब्द।

(ग) अन्य भारतीय भाषाओं के शब्द—

(1) मराठी, (2) बंगला, (3) गुजराती।

(घ) अनार्य भाषाओं के शब्द—

(1) मुण्डा, (2) द्रविड़।

(आ) विदेशी शब्द

(क) एशिया की भाषाओं के शब्द

(1) अरबी, (2) फारसी, (3) पश्तो, (4) तुर्की, (5) चीनी, (6) तिब्बती,

(7) मलय।

(ख) यूरोपीय भाषाओं के शब्द

(1) अंग्रेजी, (2) डच, (3) फ्रांसीसी, (4) पुर्तगाली।

डॉ. हरदेव बाहरी—डॉ. बाहरी (हिंदी : उद्भव, विकास और रूप—1970, पृ. 130-143) ने शब्द-समूह को निम्नलिखित चार वर्गों में विभाजित किया है—

(1) तत्सम, (2) तद्भव, (3) विदेशी, (4) देशी।

डॉ. बाहरी ने तत्सम के अंतर्गत ही पारिभाषिक शब्दों को भी रखा है। तद्भव एवं विदेशी अन्य भाषाविदों के वर्गों के समान हैं जबकि देशी के अंतर्गत एक और बंगला, मराठी एवं पंजाबी आदि आधुनिक आर्य भाषाओं के शब्दों को स्थान दिया गया है, दूसरी ओर तमिल, तेलगु तथा द्रविड़ आदि भारतीय अनार्य भाषाओं के शब्द भी समाहित किए गए हैं। इनके अतिरिक्त अनुकरणात्मक एवं संकर शब्दों की भी विवेचना की गई है। डॉ. बाहरी (हिंदी उद्भव, विकास और रूप—1970, पृ. 143) संकर को ‘दोगले शब्द’ कहना श्रेयस्कर समझते हैं।

डॉ. भोलानाथ तिवारी—डॉ. तिवारी (शब्दों का अध्ययन—1969, पृ. 13-27) ने शब्द-समूह का वर्गीकरण निम्नलिखित चार आधारों पर किया है—

(1) इतिहास, (2) रचना, (3) प्रयोग, (4) अर्थ।

1. इतिहास—डॉ. तिवारी (हिंदी-भाषा—1972, पृ. 645-661) ऐतिहासिक आधार पर वर्गीकृत तत्सम, तद्भव, देशज एवं विदेशी—परंपरागत वर्गों को स्वीकार नहीं किया है। अपनी असहमति ही नहीं व्यक्त की है अपितु उन्होंने अपने स्वमत का प्रतिपादन भी किया है, “मेरे विचार में किसी भी भाषा के शब्द-समूह में शब्द मूलतः दो प्रकार के होते हैं—

(क) परंपरागत

(ख) नवीन

(1) नवनिर्मित, (2) देशज, (3) गृहीत अथवा आगत।

गृहीत के पुनः दो उपवर्गों—‘देश से’, ‘विदेश से’—में विभक्त किया है। ‘देशज’ को ‘अज्ञात व्युत्पत्तिक’ कहा है तथा गृहीत को देशीगत, विदेशीगत अथवा देशगृहीत, विदेश गृहीत, गृहीत तथा आगत के अनुसार विभिन्न नामों से अभिहित किया है। तत्पश्चात् परंपरागत नाम (1) तत्सम, (2) अर्द्धतत्सम, (3) तद्भव, (4) विदेशी, एवं (5) देशज शीर्षकों के अंतर्गत शब्द समूहों की विवेचना की है। ‘कुछ अन्य भेद’ उपशीर्षक के अंतर्गत (1) पुनरुक्त, (2) अनुकरणात्मक, (3) अनूदित, (4) अनुवादयुग्म, (5) प्रतिध्वनित, तथा (6) संकर आदि शब्दों की विवेचना की है।

विदेशी के अंतर्गत परतो, तुर्की, फारसी, अरबी, पुर्तगाली, अंग्रेजी, फ्रांसीसी, रूसी, स्कैंडिनेवियन, जर्मन इटैलियन, केल्टिक, जापानी, अफ्रीकी आदि भाषाओं के शब्दों की विवेचना की है।

अंग्रेजी तक विदेशी कहा है। उसके पश्चात् 'अन्य यूरोपीय' कहकर फ्रांसीसी से अफ्रीकी तक को स्वीकार किया है।

तत्पश्चात् भारतीय के अंतर्गत द्रविड़, मराठी, गुजराती, बंगाल, उड़िया, पंजाबी तथा आस्ट्रिक आदि भाषाओं के शब्दों की विवेचना की है।

2. रचना—डॉ. तिवारी (शब्दों का अध्ययन—1969, पृ. 24) ने शब्द की बनावट या रचना को दृष्टि में रखते हुए लिखा है, "बनावट या रचना के आधार पर शब्द तीन प्रकार के माने गए हैं—रूढ़, योगिक तथा योगरूढ़।

"जो शब्द सार्थक शब्दों या शब्दांशों के योग से न बना हो, या जिसके संबद्ध अर्थ में सार्थक टुकड़े न किए जा सकें, उसे रूढ़ कहा जाता है। इसे मौलिक शब्द या अयोगिक शब्द भी कहते हैं। जैसे घोड़ा, हाथ, कपड़ा, आग आदि।"

"रूढ़ शब्दों के साथ उपसर्ग या प्रत्यय या कोई और शब्द जोड़कर योगिक शब्द बनते हैं। योगिक का अर्थ ही है जोड़ा हुआ या जोड़कर बनाया हुआ। योगिक शब्दों के टुकड़े करने पर सार्थक शब्द या शब्दांश मिलते हैं; उदाहरणार्थ कटुवा, अनपढ़, रसोईघर आदि।"

"योग रूढ़ या योगिक शब्द यदि अर्थ की दृष्टि से संकुचित होकर केवल किसी एक वस्तु का बोध कराए तो योगरूढ़ कहे जाते हैं।"

डॉ. तिवारी (शब्दों का अध्ययन—1969, पृ. 25) तत्पश्चात् बनावट या रचना के आधार पर दो (रूढ़ और योगिक) भेद मानना ही अधिक संगत स्वीकार करते हैं।

बनावट के आधार पर शब्दों के कुछ अन्य भेदों का होना भी स्वीकारा है—(1) समस्त शब्द, (2) पुनरुक्त शब्द, (3) अनुवाद युग्म शब्द।

3. प्रयोग—डॉ. तिवारी (शब्दों का अध्ययन—1969, पृ. 26) ने प्रयोग के आधार पर शब्द अनेक प्रकार के माने हैं—

(1) सामान्य, अर्धपारिभाषिक, पारिभाषिक।

(2) साहित्यिक, बोलचाल।

(3) श्लील, अल्पश्लील, अश्लील।

(4) प्रयुक्त, अल्पप्रयुक्त, अप्रयुक्त।

(5) सर्वश्रेणीय, प्रांतीय।

4. अर्थ—अर्थ की दृष्टि से डॉ. तिवारी (शब्दों का अध्ययन—1969, पृ. 27) ने यह माना है कि इस आधार पर भी एकाधिक प्रकार का वर्गीकरण किया जा सकता है, जैसे—

(1) सरल, अल्पक्लिष्ट, क्लिष्ट।

(2) स्थूल, सूक्ष्म, मूर्त, अमूर्त।

(3) वाचक, लक्षक, व्यंजक।

डॉ. तिवारी (हिंदी में देशज शब्द—डॉ. पूर्णसिंह उबास—भूमिका—1972, पृ. ख-ग) ने शब्दों के वर्गीकरण पर प्रकाश डालते हुए लिखा है—

"वस्तुतः शब्दों के ऐतिहासिक वर्गीकरण की समस्या काफी उलझी हुई है। मूलतः वर्गीकरण ऐसा होना चाहिए जो सामान्य रूप से सभी भाषाओं पर लागू हो सके। तत्सम, तद्भव वाला भारतीय वर्गीकरण अपने मूल रूप में केवल उन भाषाओं पर लागू है जिनके शब्द भंडार का एक मुख्य स्रोत संस्कृत है। मेरे विचार में किसी भाषा के शब्द-समूह को ऐतिहासिक दृष्टि से मूलतः दो वर्गों में समाविष्ट किया जा सकता है—

(क) ज्ञातव्युत्पत्तिक।

(ख) अज्ञातव्युत्पत्तिक।

और ज्ञात व्युत्पत्तिक के दो उपभेद हो सकते हैं कि—

(अ) आगत—जो किसी भी अन्य भाषा से आया हो। हिंदी में आगत के संस्कृत, प्राकृत, तुर्की, फारसी, अंग्रेजी आदि अनेक उपभेद किए जा सकते हैं। सैद्धांतिक दृष्टि से कहा जा सकता है कि किसी भाषा में जितनी भाषाओं के शब्द आए हों, उस भाषा के प्रसंग में आगत के उतने ही भेद होंगे। आगे फिर प्रत्येक के दो-दो भेद हो सकते हैं : तत्सम, तद्भव।

(आ) अनुकरणात्मक—जो किसी भाषा के जीवन काल में अनुकरण के आधार पर बनाए गए हों, जो इस भाषा में कहीं से आए न हों, अपितु उसके जीवन काल में अनुकरण के आधार पर बने हों।

डॉ. तिवारी (हिंदी में देशज शब्द—डॉ. पूर्णसिंह उबास—भूमिका—1972, पृ. ग भूमिका) ने आगे लिखा है—

"वर्गीकरण पर पुनः आते हुए एक मिश्रित वर्ग संकर शब्दों का भी माना जा सकता है। यों इसकी अलग सत्ता मानने की आवश्यकता नहीं। यह ज्ञातव्युत्पत्तिक + ज्ञातव्युत्पत्तिक, अज्ञातव्युत्पत्तिक + अज्ञातव्युत्पत्तिक, ज्ञातव्युत्पत्तिक + अज्ञातव्युत्पत्तिक या अज्ञातव्युत्पत्तिक + ज्ञातव्युत्पत्तिक आदि प्रकारों का हो सकता है। दो से अधिक शब्दों के योग से बने शब्दों के लिए उसी प्रकार के और भी भेद किए जा सकते हैं।

3.2. अभारतीय या विदेशी

विदेशी विद्वानों ने शब्द-समूह के उद्गमस्रोतीय वर्गीकरण में अपेक्षाकृत कम रुचि दिखलायी है। इस प्रकार जहां भी वर्गीकरण किया गया है। भारतीय विद्वानों के वर्गीकरण के समान ही है भिन्नता कम ही दृष्टिगोचर होती है।

राबिनसन केसिडी (दि डेवलपमेंट ऑफ मॉडर्न इंगलिश) द्वारा किया गया

अंग्रेजी-शब्द-समूह का वर्गीकरण अवलोकनीय है—

1. मूल अथवा स्थानीय शब्द (जो पुरानी अंग्रेजी से आए हैं)
2. गृहीत शब्द (जो किसी भी अन्य भाषा से आए हैं)
3. नवनिर्मित शब्द (जो भाषा में वर्तमान धातुओं से किसी भी समय बनाए गए हैं।)

जार्ज ग्रियर्सन—जार्ज ग्रियर्सन ने भारतीय भाषाओं का सर्वेक्षण किया तत्पश्चात् एक बृहत् ग्रंथ लिखा। जिसका अनुवाद डॉ. उदयनारायण तिवारी ने 'भारत का भाषा सर्वेक्षण' नाम से किया। जार्ज ग्रियर्सन (भारत का भाषा सर्वेक्षण—अनूदित—द्वितीय संस्करण, पृ. 250) का शब्द-समूह संबंधी मत इस प्रकार है जो उन्होंने अर्द्धतत्सम के विषय में दिए हैं—

“ये वे शब्द थे जो प्राकृति भाषी लोगों के मुंह में पड़कर विकृत हो गए थे। किंतु वास्तव में ये (संस्कृत से) उधार लिए शब्द ही थे। साधारणतः यूरोपीय विद्वान् इन्हें 'अर्द्धतत्सम' नाम से अभिहित करते हैं। यह स्पष्ट है कि विकास क्रम की नैसर्गिक गति से, समस्त तत्सम शब्दों के रूप इतने विकृत हो गए हैं कि इनमें तथा तद्भव शब्दों में भेद करना कठिन हो गया है।”

प्लेटो—पारश्चात्य देशों में शब्द का ऐतिहासिक अध्ययन की अपेक्षा व्याकरणिक अध्ययन अधिक किया गया है। विदेशी वर्गीकरणों में प्लेटो के वर्गीकरण पर किया गया अंग्रेजी का वर्गीकरण सर्वप्रमुख एवं महत्वपूर्ण वर्गीकरण है। इसमें शब्दों को आठ वर्गों में विभक्त किया गया है—

- (1) संज्ञा (नाउन)
- (2) सर्वनाम (प्रोनाउन)
- (3) विशेषण (ऐडजैक्टिव)
- (4) क्रिया (वर्ब)
- (5) क्रियाविशेषण (ऐडवर्ब)
- (6) समुच्चयबोधक (कनेक्टिव)
- (7) संबंधसूचक (प्रीपोजीशन)
- (8) विस्मयादिबोधक (एक्सक्लेमेटरी)।

येस्पर्सन—अंग्रेजी के इस वर्गीकरण पर विचार करते हुए येस्पर्सन ने कहा है कि “यह वर्गीकरण व्यावहारिक तो है, किंतु तात्त्विक या वैज्ञानिक नहीं है अपना वर्गीकरण भी दिया है—

प्रायोगिक या व्याकरणिक दृष्टि से—

(1) नाम या संज्ञा, (2) विशेषण, (3) सर्वनाम, (4) क्रिया, (5) अव्यय (जिसमें वे प्रथम चार को छोड़कर भाषा के शेष सभी शब्दों को रखने के पक्ष में है। इन पांच वर्गों में रखने का विचार प्रकट किया है।

रचना की दृष्टि है—

(1) प्राइमरीज, (2) एडजंक्ट्स, (3) सबजंक्ट्स—इन तीन वर्गों में से शब्दों को रखने के पक्ष में हैं। इसी कारण इस पर विचार करते हुए विद्वानों ने शब्दों के आठ के स्थान पर दो, चार तथा नौ आदि वर्ग मानने के सुझाव दिए हैं। इन आठ वर्गों का विकास मूलतः प्लेटो के वर्गीकरण के आधार पर हुआ था।

अरस्तू—अरस्तू में कई रूपों में शब्दों का वर्गीकरण किया था; जैसे—

(क) रचना के आधार पर

(1) सरल—इसी को हिंदी में रूढ़ या रूढ़ि कहते हैं।

(2) यौगिक—यह संस्कृत या हिंदी के यौगिक के समान है।

(ख) प्रचलन के आधार पर

(1) प्रचलित, (2) अप्रचलित।

(ग) व्यंजना के आधार पर

(1) लाक्षणिक, (2) आलंकारिक।

(घ) अर्थ के आधार पर

(1) नवनिर्मित, (2) व्याकुंचित, (3) संकुंचित।

पी. सी. रैन—श्री रैन ने 'हाई स्कूल इंगलिश ग्रामर' लिखी है जिसका अनुवाद श्री प्रकाश गुप्त ने किया है। रैन (हाई स्कूल इंगलिश ग्रामर—1973, पृ. 5) ने 'शब्द भेद' शीर्षक में शब्दों को उनके प्रयोग के अनुसार अर्थात् वाक्य में उनके द्वारा किए गए कार्यानुसार आठ वर्गों में विभक्त किया है—

- (1) संज्ञा, (2) विशेषण, (3) सर्वनाम, (4) क्रिया, (5) क्रियाविशेषण, (6) संबंधसूचक (अव्यय), (7) समुच्चयबोधक (अव्यय), (8) विस्मयादिबोधक (अव्यय)।

3.3. शब्द-वर्गीकरण : समीक्षा

उद्धृत वर्गीकरणों का अवलोकन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उनमें एकरूपता नहीं है। इसके अतिरिक्त अनेक वर्गीकरणों में ऐतिहासिक या उद्गमस्रोतीय आधार का पूर्णरूपेण पालन भी नहीं किया गया है जिसके फलस्वरूप उद्धृत वर्गों में कुछ ऐसे शब्द वर्गों को भी सम्मिलित कर लिया गया है जो इसकी सीमा का अतिक्रमण करते हैं। इस समीक्षा का उद्देश्य तर्कसम्मत वर्गों का निश्चय करना है।

3.3.1. भारतीय प्राचीन आचार्य

भारतीय प्राचीन आचार्यों के वर्गीकरण से यह निष्कर्ष हम पहले निकाल चुके हैं कि प्रायः सभी आचार्यों ने शब्द को तीन वर्गों में विभक्त किया है। वस्तुतः सभी आचार्यों ने आचार्य भरत द्वारा किए गए वर्गीकरण को ही कुछ हेर-फेर से स्वीकारा है। ऐतिहासिक

या उद्गमस्रोतीय वर्गीकरण किंचित् परिवर्तन एवं परिवर्द्धन के साथ आज भी विद्वानों को मान्य है।

3.3.2. आधुनिक भाषाविद्

भारतीय आधुनिक भाषाविदों के वर्गीकरण में तत्सम, तद्भव, देशी, विदेशी, देशज अनुकरणात्मक, तत्समाभास, तद्भवाभास, अर्द्धतत्सम, अर्द्धतद्भव, प्रतिध्वन्यात्मक, संकर, ज्ञातव्युत्पत्तिक, अज्ञातव्युत्पत्तिक, गृहीत, आगत आदि प्रमुख वर्ग स्वीकार किए गए हैं। इनके अतिरिक्त अन्य अनेक वर्ग भी माने गए हैं। इनकी एकत्र समीक्षा न करके अलग-अलग समीक्षोपरांत सम्यक् विवेचन करेंगे।

1. गुरु का प्रथम वर्गीकरण—संज्ञा, क्रिया, विशेषण, क्रियाविशेषण अंग्रेजी वर्गीकरण पर आधारित है जिसमें उन्होंने सर्वनाम तथा संबंध, समुच्चय, विस्मयादिवाचक अव्ययों को समाविष्ट नहीं किया है।

प्रयोग को आधार मानते हुए दूसरे वर्गीकरण में इनका भी समावेश कर दिया है।

तृतीय वर्गीकरण में आठों वर्गों के लिए विकारी एवं अधिकारी दो प्रमुख वर्ग बनाए हैं।

इसके अतिरिक्त भावनात्मक एवं संबंधात्मक भी अन्य नाम स्वीकार किए हैं। तथा रूढ़, यौगिक एवं योगरूढ़ आदि वर्गों के अस्तित्व को भी स्वीकारा है।

2. डॉ. चाटुर्ज्या ने तत्सम, तद्भव, देशी, विदेशी वर्ग बनाए हैं, किंतु देशी का अभिप्राय स्पष्ट नहीं किया है।

3. डॉ. दास ने तत्सम के लिए संस्कृत तथा प्राकृत भाषाओं में आगत शब्द का प्रयोग किया है जबकि तत्समाभास भी एक वर्ग बनाया है। संकर को द्विज-शब्द की संज्ञा दी है।

4. डॉ. वर्मा ने भारतीय आर्य, भारतीय अनार्य एवं विदेशी तीन प्रमुख वर्ग बनाए हैं। यह वर्गीकरण वैज्ञानिकता न होते हुए भी अति वैज्ञानिक है।

5. डॉ. सक्सेना ने तत्सम, तद्भव, देशी, विदेशी तथा देशज पांच वर्ग बनाए हैं। देशी और देशज में भेद स्थापित कर वर्गीकरण को महत्ता प्रदान की है। इससे मेरी पूर्ण सहमति है जिसका विवेचन सकारण सम्यक् समीक्षा में करेंगे।

6. डॉ. उदयनारायण तिवारी ने प्रमुख चार वर्गों के साथ अर्द्धतत्सम वर्ग भी बनाया है तथा देशी से उनका अभिप्राय देशज से जो औचित्यपूर्ण नहीं है।

7. डॉ. जुयाल ने भारतीय एवं विदेशी प्रमुख दो वर्ग बनाए हैं। भारतीय के साथ अभारतीय या विदेशी के साथ देशी संज्ञा देते तो इस वर्गीकरण में वैज्ञानिकता आ जाती। किंतु देशज में अनुकरणात्मक का लाना वैज्ञानिक नहीं। दूसरे विदेशी में भी तत्सम, तद्भव, देशज एवं अनुकरणात्मक आदि वही वर्ग होते किंतु ऐसा नहीं किया है।

8. डॉ. बाहरी के वर्गीकरण में तद्भव एवं विदेशी अन्यों के समान हैं जबकि

तत्सम में पारिभाषिक शब्द भी सम्मिलित कर लिए हैं। देशी की विवेचना औचित्यपूर्ण है, किंतु देशज को स्थान नहीं दिया। संकर को 'दोगले' संज्ञा देना औचित्यपूर्ण नहीं है यद्यपि भावगति बढ़ जाती है। ऐसा किंचित् आपने पंजाबी प्रभाव के कारण किया है।

9. डॉ. भोलानाथ तिवारी ने विदेशी के अंतर्गत पश्तो से अंग्रेजी तक गिनाकर 'अन्य यूरोपीय' कहकर फ्रांसीसी एवं अफ्रीकी को स्वीकार किया है यही औचित्यपूर्ण नहीं। दूसरे 'अनेक भारतीय' नवीन वर्ग बनाकर देशी भाषाओं के शब्दों की विवेचना भी तर्कसम्मत प्रतीत नहीं होती है।

अन्य आधारों रचना, प्रयोग एवं अर्थ के अनुसार किए गए वर्गीकरण पूर्ण वैज्ञानिक हैं। इसके अतिरिक्त आपका नवीन वर्गीकरण ज्ञातव्युत्पत्तिक एवं अज्ञातव्युत्पत्तिक पूर्ण वैज्ञानिक एवं समीचीन है। किंतु अभी प्रचलन में नहीं आ पाया है।

3.3.3. अभारतीय या विदेशी—

राबिंसन, ग्रियर्सन, प्लेटो, येस्पर्सन, अरस्तू तथा रेन आदि सभी पाश्चात्य विद्वानों के वर्गीकरण का आधार प्लेटो का वर्गीकरण ही है। जिसको सभी विदेशी विद्वानों ने आधार स्वरूप माना है। विदेशियों के अतिरिक्त प्रसिद्ध भारतीय वैयाकरण पं. कामताप्रसाद गुरु ने भी इस वर्गीकरण को यथातथ्य स्वीकार कर लिया है।

3.4. सम्यक् समीक्षा

जैसा कि ऊपर संकेत किया जा चुका है उद्धृत शब्दवर्गों में अनेक वर्ग उद्गम स्रोतीय दृष्टि से महत्वपूर्ण नहीं हैं तथा अनेक केवल आभास पर आधारित हैं जिनका स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। इस प्रकार के सभी वर्गों की सम्यक् समीक्षा प्रस्तुत है।

3.4.1. तत्सम

यह वर्ग प्रायः सभी वर्गीकरणों में मान्य है। डॉ. वर्मा ने यद्यपि नाम नहीं दिया है, किंतु उनके द्वारा प्रदत्त वर्गीकरण में भी समाहित हो जाता है।

'तत्सम' शब्द तत् (उसके) + सम (समान) के योग से निर्मित है जिसका अर्थ रामचंद्रवर्मा (मानक हिंदी कोश, 1971, पृ. 501) के अनुसार "किसी भाषा का वह शब्द जो किसी दूसरी भाषा में अपने मूल रूप में (बिना विकृत हुए) चलता हो।" तद्भव से भिन्न। जैसे—हिंदी में प्रयुक्त होने वाले कृपा, महत्त्व, सेवा आदि संस्कृत के और खराब, मिजाज, हाजिर आदि अरबी-फारसी के शब्द तत्सम रूप में ही चलते हैं।

किंतु अधिकांश भाषाविद् उसके (तत्) का अर्थ संस्कृत भाव ही लेते हैं। 'तत्' का प्रयोग संस्कृत विशिष्ट के लिए न प्रयुक्त करके सामान्य रूप में प्रयुक्त किया

गया है। जिसका अर्थ देशी (स्वराष्ट्रीय) या विदेशी (परराष्ट्रीय) किसी भी भाषा के रूप में लिया जाना श्रेयस्कर होगा। प्राचीन काल में शब्द-समूह का वर्गीकरण करते हुए तत्सम, तद्भव तथा देशी वर्ग बनाए गए थे। उस समय का शब्द-समूह मुख्य रूप से संस्कृत शब्दावली पर आधारित था। भारतीय प्राचीन साहित्य के अवलोकन से ज्ञात होता है कि उस समय के साहित्य में भी भारतीय अनार्य तथा यूनानी, लैटिन एवं ईरानी आदि विदेशी (परराष्ट्रीय) भाषाओं के शब्द उसमें विद्यमान थे। प्रश्न यह उठता है कि अन्य भाषाओं के शब्द होते हुए भी तत्सम रूप में केवल संस्कृत शब्दों को ही क्यों लिया गया? इसका एक भाव यही उत्तर है कि उस समय विद्वानों का ध्यान विदेशी (परराष्ट्रीय) शब्दों की ओर नहीं गया था क्योंकि उनकी संख्या किंचित कम रही हो। उस समय विदेशी भारत की भाषा को प्रभावित नहीं कर सके थे। भारतीयों ने अपना प्रभाव अधिकांश भाषाओं पर डाल रखा था। जिसमें संस्कृत का प्रभाव सर्वोपरि था। इस प्रकार वे उसके (तत्) समान (सम) का अर्थ संस्कृत शब्दों के समान लिए। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि संस्कृत के वे शब्द जो यथावत् परवर्ती भाषाओं में विद्यमान हैं तत्सम कहलाए। सर्वप्रथम यह समानतासूचक नाम भरतमुनि (नाट्यशास्त्र—1943, पृ. 269) ने दिया। दंडी (काव्यदर्श)—पृ. 1 (33) ने इन शब्दों को 'तत्सम' की संज्ञा दी। जबकि वाग्भट (वाग्भटालंकार—सं. 1962, पृ. 23) ने इस प्रकार के शब्दों को तत्सम न कहकर सर्वथा नवीन नाम 'ततुल्य' प्रयुक्त किया है। आधुनिक पाणिनि पं. किशोरीदास वाजपेयी (हिंदी शब्दानुशासन—सं. 2014, पृ. 44) ने तत्सम के लिए 'तद्रूप' शब्द का प्रयोग किया है। यह तत्सम का ही पर्यायवाची है। अभिव्यक्ति की सशक्ता इसमें अपेक्षाकृत अधिक है। अर्थ एवं वर्तनी की दृष्टि से देखा जाय तो तत्सम शब्द उसके समान नहीं अपितु वही होते हैं जो संस्कृत या किसी अन्य भाषा से बिना विकृत हुए किसी भाषा में प्रयुक्त होते हैं। इसलिए मेरा अपना मत है कि तत्सम को 'तत्' की संज्ञा दी जाय तो अधिक उपयुक्त एवं वैज्ञानिक होगा। उनसे विकसित रूपों को 'तद्भव' प्रायः सभी विद्वान् स्वीकार करते ही हैं।

दूसरी बात यह है कि तत्सम के अंतर्गत केवल संस्कृत भाषा के मूल शब्दों को ही न लेकर अन्य भाषा के मूल शब्दों को भी लिया जाना चाहिए। रामचंद्र वर्मा (मानक हिंदी कोश—1971, पृ. 501) ने तत्सम का अर्थ केवल संस्कृत के आगत शब्दों को ही न लेकर यह लिखा है कि "जैसे—हिंदी में प्रयुक्त होने वाले कृपा महत्त्व, सेवा आदि संस्कृत शब्द और खराब, मिजाज, हाजिर आदि अरबी-फारसी के शब्द तत्सम रूप में ही चलते हैं।" इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि किसी भाषा में संस्कृत या अन्य किसी भी भाषा से मूल रूप अर्थात् बिना विकृत हुए जिन शब्दों का समावेश होता है उन्हें तत्सम की संज्ञा दी जाती है।

'तत्सम' नाम के विषय में विद्वानों में मतैक्य नहीं है किंतु परिभाषा की दृष्टि से

प्रायः सभी विद्वान् इसमें केवल संस्कृत के मूल शब्दों का ही अस्तित्व स्वीकारते हैं। सामान्य बोलचाल में तत्सम शब्दों की संख्या अल्प होती है, किंतु साहित्यिक भाषा में आधिक्य होता है।

तद्भव—इस वर्ग को भी प्रायः सभी भाषाविदों ने स्वीकृति दी है। 'तद्भव' शब्द 'तत्' और 'भव' के योग से बना है जिसका अर्थ है उस (तत्) संस्कृत से भव अर्थात् विकसित। अभिप्राय यह हुआ कि वे शब्द जो परवर्ती भाषाओं में संस्कृत से विकसित या परिवर्तित होकर आए हैं व तद्भव हैं। उदाहरणार्थ अठारह, उपर, उपासा, ऐन आदि क्रमशः अष्टादश, ऊपर, उपवास, अयन आदि से विकसित या परिवर्तित होकर बने हैं। प्रारंभ में तद्भव नाम का प्रयोग मार्कण्डेय तथा धनिक ने किया है। हेमचंद्र तथा चंड ने तद्भव के स्थान पर 'संस्कृत-योनि' शब्द का प्रयोग किया है जबकि वाग्भट (वाग्भटालंकार—सं. 1962, पृ. 23) ने तद्भव के लिए 'तज्ज' एवं भरत मुनि (नाट्य शास्त्र—1943, पृ. 269) ने इसके लिए 'विभ्रष्ट' शब्द का प्रयोग किया है। इनको 'अपभ्रष्ट' भी कहा गया है।

तत्सम की भांति किसी भी भाषा में अन्य भाषा के विकसित या परिवर्तित शब्दों को तद्भव की संज्ञा दी जानी चाहिए। इसी दृष्टिकोण से अन्य भाषाओं के तत्सम शब्दों के साथ-साथ तद्भव शब्दों की भी विवेचना करेंगे।

आधुनिक विद्वान् तद्भव शब्द के विषय में एक मत के हैं। डॉ. भोलानाथ तिवारी ने पूर्ववर्ती तद्भव तथा परवर्ती तद्भव करके तद्भव के दो उपभेद कर दिए हैं।

डॉ. देवेन्द्रनाथ शर्मा (हिंदी भाषा और नागरी लिपि—1994, पृ. 61-62) तद्भव की व्युत्पत्ति तत् + भव = से मानते हुए उद्भव का अर्थ उससे उत्पन्न स्वीकारते हैं। 'उससे' शब्द केवल संस्कृत का ही द्योतक नहीं है अन्य भाषाओं का भी बोध कराता है जैसा कि उन्होंने लिखा है—

"तद्भव का अर्थ है तत् + भव = उससे उत्पन्न अर्थात् संस्कृत आदि पूर्ववर्ती भाषाओं से उत्पन्न। ये शब्द संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश से होते हुए परिवर्तित रूप में हिंदी में हिंदी में विकसित हुए हैं। वस्तुतः ये शब्द हैं तो संस्कृत के ही किंतु उच्चारण-सौन्दर्य की भावना से इनकी ध्वनियों में परिवर्तन कर लिया गया है। जैसे—कृष्ण से कान्हा, कान्ह, कन्हाई, कन्हैया आदि तद्भव रूप विकसित हुए हैं। इसी प्रकार चंद्र से चंद, चंदा, चांद, चंदी। पत्र से पत्तर, पत्ता, पात, पाती। इसी तरह अग्नि से आग, संध्या से सांझ, बिंदु से बूंद, निद्रा से नींद, पार्श्व-पास, रश्मि से रस्सी, मूल्य से मोल, स्नान से नहान आदि तद्भव के उदाहरण हैं।

हिंदी में तद्भव शब्दों की संख्या काफी बड़ी है। विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि हिंदी से संज्ञा और विशेषण हो तत्सम रूप में हैं, किंतु क्रिया, क्रियाविशेषण आदि अधिकतर तद्भव रूप में हैं।"

3.4.3. तत्समाभास

तत्समाभास नाम से स्पष्ट हो जाता है कि इस वर्ग के शब्द तत्सम न होकर उनका आभास मात्र देते हैं। ऐसे शब्दों के विषय में डॉ. श्याम सुंदरदास (पृ.) का मत है, 'हिंदी में बहुत से ऐसे शब्दों का प्रयोग होता है जिन्हें कहने को तो 'तत्सम' कहते हैं परंतु ये 'तत्सम' नहीं हैं। इनमें से कुछ शब्द तो बहुत पहले से चले आते हैं, जैसे श्राप, प्रण, क्षत्राणी, सिंचन, अभिलाषा, सृजन, मनोकामना आदि; और अधिक आजकल अल्प संस्कृतज्ञों के गढ़े हुए चले आ रहे हैं; जैसे—राष्ट्रीय, जागृत, पौर्वात्य, उन्नायक आदि। इन्हें चाहे तो तत्समाभास कह सकते हैं।" डॉ. दास का यह कथन औचित्यपूर्ण नहीं है क्योंकि शब्दों का वर्गीकरण आभास मात्र के आधार पर नहीं किया जाना चाहिए अपितु वर्गीकरण में वैज्ञानिकता का विशेष ध्यान रखना अत्यावश्यक है। यह नहीं कि अमुक शब्द कैसा लगता है अपितु यह ज्ञात करना आवश्यक है कि अमुक शब्द का वास्तविक स्वरूप क्या है उस शब्द विशेष का विकास किस शब्द से हुआ है?

दूसरा यह कि जिन शब्दों को डॉ. दास ने तत्समाभास की संज्ञा दी है वे तत्समाभास न होकर तद्भव हैं। हिंदी में इतने ही नहीं इनके अतिरिक्त अन्य अनेक शब्द भी हैं जो तत्सम के अति निकट होते हुए भी तत्सम या तत्समाभास न होकर तद्भव हैं। उदाहरणार्थ संयहीत, अनुग्रहीत, उपरोक्त, दृढ़, अधीन, तथा ओषधि शब्द हैं जिनके तत्सम रूप क्रमशः संगृहीत, अनुग्रहीत, उपर्युक्त, दृढ़, अधीन तथा ओषध या ओषधि आदि शब्द हैं। इसी प्रकार डॉ. दास द्वारा प्रदत्त श्राप, प्रण, क्षत्राणी, सिंचन, जागृत, अभिलाषा तथा मनोकामना आदि शब्दों के तत्सम रूप क्रमशः शाप, प्रण, क्षत्रियाणी, सिञ्चन, जागरित, अभिलाषा तथा मनःकामना आदि शब्द हैं। अन्य दो उदाहरण सृजन एवं राष्ट्रीय ऐसे हैं जिनके संस्कृत में सृजन-सर्जन, राष्ट्रीय-राष्ट्रिय, दो-दो रूप मिलते हैं। इसलिए इनको तत्सम से इतर वर्ग में रखना वैज्ञानिक एवं औचित्यपूर्ण नहीं है। सादृश्य के आधार पर जिस प्रकार निर्गुण के सादृश्य पर सगुण का सर्गुण हो जाता है उसी प्रकार पाश्चात्य के सादृश्य पर पूर्व का पौर्वात्य बन गया है। ऐसे ही उन्नय या उन्नाय के आधार पर उन्नायक का निर्माण हुआ है। इनको एक नवीन वर्ग 'नवनिर्मित' में रखा जाना श्रेयस्कर होगा न कि तत्समाभास की संज्ञा देना। डॉ. दास भी इस तथ्य से सहमत हैं कि इनका निर्माण आधुनिक काल में संस्कृत को आधार मानकर किया गया है। हिंदी में इस प्रकार के शब्दों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है। हिंदी में प्रयुक्त धारिता, परिकल्पना, संकल्पना, अभिर्यता तथा कीर्तिमान आदि शब्द इसी श्रेणी में आते हैं।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि ऐसे शब्दों के लिए नवीन वर्ग 'नवनिर्मित' की सार्थकता तो स्वतः सिद्ध है किंतु तत्समाभास की वैज्ञानिकता संदिग्ध ही नहीं पूर्ण अनौचित्य है।

3.4.4. तद्भवाभास

शब्दों की महिमा अपार है। 'शब्द ब्रह्म' कहलाने का एक यह भी कारण है। शब्द होते कुछ हैं किंतु देखने-सुनने में कुछ और का ही आभास देते हैं। इसी आभास के आधार पर डॉ. श्यामसुंदरदास ने कुछ शब्दों को जहां तत्समाभास की संज्ञा दी है वहीं मौसा जैसे शब्दों को उन्होंने तद्भवाभास कहा है। उनका कहना है कि "कुछ शब्द ऐसे भी हैं जो न तो तत्सम कहे जा सकते हैं न तद्भव। उन्हें हम तद्भवाभास या अर्द्धतद्भव वर्ग में रख सकते हैं। जैसे, संस्कृत 'मातृष्वसा' से प्रसिद्ध स्त्रीत्व व्यंजक 'छ' लगाकर जो 'मौसा' शब्द बना है वह तो तद्भव है, पर उससे बना पुल्लिंग शब्द 'मौसा' न तो तत्सम है, न तद्भव और न देशज। ऐसे शब्दों को 'अर्द्धतद्भव या तद्भवाभास' कहे तो कह सकते हैं। परन्तु अब तक विद्वानों ने इन्हें कोई नया नाम नहीं दिया है।"

डॉ. दास के उपर्युक्त मत के विषय में यह कहना अनौचित्य न होगा कि उक्त प्रकार के शब्द मूलतः तद्भव ही हैं। स्पष्ट है कि 'मौसा' का आधार 'मातृष्वसा' का तद्भव 'मौसी' ही है। अतः इसकी व्युत्पत्तिपरक समस्या कोई समस्या नहीं है। डॉ. श्यामसुंदर दास ने जैसे शब्दों के लिए 'अर्द्धतद्भव' या 'तद्भवाभास' जिन दो नामों का सुझाव दिया है वे इसलिए भी वैज्ञानिक नहीं कहे जा सकते क्योंकि किसी भी शब्द के विकार की मात्रा की श्रेणियां निश्चित करना व्यावहारिक दृष्टि से संभव नहीं है। किसी शब्द के विकार या विकास से तो अवगत कराया जा सकता है किंतु यह निश्चितरूपेण कहना कि वह विकास या विकार—आधा, पूरा, पौना, चौथाई—कितना है यह बता सकना कठिन ही नहीं असंभव भी है क्योंकि इसकी वैज्ञानिक नापतौल करना तथा इस आधार पर शब्दों के वर्ग बनाना संभव नहीं है। इसके अतिरिक्त 'तद्भवाभास' नाम स्वयं इस तथ्य को प्रमाणित करता है कि यह नामकरण आभास के आधार पर किया गया है वास्तविक स्थिति के आधार पर किसी शब्द वर्ग के अस्तित्व को स्वीकार करना वैज्ञानिकता का द्योतक नहीं है। आभास के आधार पर निर्मित वर्गों का विरोध करते हुए डॉ. भोलानाथ तिवारी का यह कथन अक्षरशः सत्य है, "यदि पाठक आभास के आधार पर और भी भेद बर्दाश्त कर सके तो मैं विदेश्याभास (जैसे 'कलेजा'), यह लगता है विदेशी, किंतु है संस्कृत 'कालेयक' का तद्भव) एवं देशजाभास (जैसे बांगर, जंजाल, खच्चर, समोसा; ये सभी विदेशी हैं) का सुझाव देना चाहूंगा। यों वैज्ञानिक अध्ययन में आभास पर आधारित वर्गीकरण कोई महत्व नहीं रखते। वैज्ञानिक अध्ययन में हमें देखना होता है कि कोई शब्द क्या है, यह नहीं कि वह क्या लगता है।"

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि डॉ. दास द्वारा आभास पर आधारित वर्गीकरण अनुपयुक्त एवं अवैज्ञानिक है ऐसे शब्दों को तद्भव के अंतर्गत ही रखना श्रेयस्कर होगा।

3.4.5. अर्द्धतत्सम

शब्द-समूह का यह वर्ग पर्याप्त विवाद का विषय बना हुआ है। इस वर्ग के स्वतंत्र अस्तित्व के विषय में विद्वानों ने परस्पर विरोधी मतों की अभिव्यक्ति की है।

‘अर्द्ध-तत्सम’ शब्द का प्रयोग न तो संस्कृत-प्राकृत के आचार्यों द्वारा हुआ है न अपभ्रंश साहित्य में ही इसका कहीं उल्लेख मिलता है। इस शब्द वर्ग की स्थापना का श्रेय आधुनिक विद्वानों को है जिनमें जार्ज ग्रियर्सन, डॉ. सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, डॉ. श्यामसुंदर दास तथा पं. कामताप्रसाद गुरु के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। डॉ. श्यामसुंदर दास का मत इस प्रकार है, “इनके अंतर्गत वे सब संस्कृत शब्द आते हैं जिनका प्राकृत भाषियों द्वारा युक्त विकर्ष (संयुक्त वर्णों का विश्लेषण) या प्रतिभासमान वर्ण विकास होते-होते भिन्न रूप हो गया है। जैसे अग्नि, पच्छ, अच्छर, किरपा आदि।” पं. कामताप्रसाद गुरु ने आलोच्य वर्ग विशेष की स्थापना को स्वीकृति तो दी है किंतु उनकी एतद् विषय मान्यता स्पष्ट नहीं है।

जार्ज ग्रियर्सन (भारत का भाषा सर्वेक्षण—अनुवादक—डॉ. उदय नारायण तिवारी—द्वितीय संस्करण, पृ. 250) का अर्द्धतत्सम विषयक मत इस प्रकार है, “ये वे शब्द थे जो प्राकृत भाषी लोगों के मुंह में पड़कर विकृत हो गए थे। किंतु वास्तव में ये (संस्कृत से)—उधार लिए शब्द ही थे। साधारणतः यूरोपीय विद्वान् इन्हें ‘अर्द्ध-तत्सम’ नाम से अभिहित करते हैं। यह स्पष्ट है कि विकास-क्रम की नैसर्गिक गति से, समस्त तत्सम शब्दों के परिवर्तन की प्रकृति अर्द्धतत्सम की ओर थी और अंततः बाद के युग में इन शब्दों के रूप इतने विकृत हो गए हैं कि इनमें तथा तद्भव शब्दों में भेद करना कठिन हो गया है।”

डॉ. सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या (भारतीय आर्य भाषा और हिंदी—1963, पृ. 189) के अनुसार, “संस्कृत के जो शब्द किसी भाषा में प्राचीन काल में न ग्रहण किए जाकर आधुनिक काल में ग्रहण किए गए और उन्होंने जो विकृत रूप धारण कर लिया है उस विकास-क्रम का ही ‘अर्द्ध-तत्सम’ कहते हैं। संस्कृत ‘श्रद्धा’ शब्द का विकास होते-होते आधुनिक लोक बंगला में ‘शाध’ हो गया है (जिसका अर्थ दोहद होता है), परंतु ‘श्रद्धा’ शब्द अपने रास्तविक अर्थ में बंगला में फिर से ग्रहण किया गया या आया। यह आगमन बंगला के तद्भव (शाध) के पश्चात् नये सिरे से हुआ। इस शब्द का विकास आधुनिक बंगला में ‘छेदा’ के रूप में हो गया है। इन्हीं ‘छेदा’ आदि रूपांतरित शब्दों को ग्रियर्सन आदि भाषाविज्ञानिकों ने ‘अर्द्ध-तत्सम’ नाम दिया है।”

डॉ. धीरेन्द्र वर्मा (हिंदी भाषा का इतिहास—1953, पृ. 70) का मत है, “जो संस्कृत शब्द आधुनिक काल में विकृत हुए हैं वे ‘अर्द्ध-तत्सम’ कहलाते हैं, जैसे ‘कान्हा’ तद्भव रूप है किंतु ‘किशन’ अर्द्ध-तत्सम रूप है, क्योंकि संस्कृत ‘कृष्ण’ को लेकर यह आधुनिक समय में ही बिगाड़कर बनाया गया है।”

डॉ. भोलानाथ तिवारी (हिंदी-भाषा—1972, पृ. 650) का मत है, “आधुनिक काल के भाषाशास्त्रियों ने उन शब्दों के लिए इसका प्रयोग किया है जो एक प्रकार से तत्सम एवं तद्भव के बीच में हैं। तद्भव वे हैं जो संस्कृत से पालि, प्राकृत-अपभ्रंश होते हुए हिंदी आदि आधुनिक भाषाओं में आए हैं। अर्द्धतत्सम वे हैं जो प्राकृत अपभ्रंश काल में या आधुनिक भाषा काल में सीधे संस्कृत से लिए गए हैं और जिनमें तद्भव जैसे परिवर्तन नहीं हुए हैं अपितु कुछ अन्य प्रकार के थोड़े परिवर्तन हुए हैं। ये शब्द तद्भव की तुलना में तत्सम से कुछ ही हटे हैं। उदाहरणार्थ ‘कृष्ण’ तत्सम है, तो ‘कान्हा’, ‘कन्हैया’ आदि तद्भव हैं तथा ‘किशुन’, ‘किशन’ अर्द्धतत्सम हैं। मेरे विचार में इनका ‘अर्द्धतत्सम’ नाम ठीक नहीं है। ‘तद्भव’ का अर्थ है जो संस्कृत (तत्) से निकला हो, और ‘कान्हा’ तथा ‘किशुन’ दोनों ही संस्कृत ‘कृष्ण’ से निकले हैं, अतः दोनों ही ‘तद्भव’ नाम के अधिकारी हैं। हां ‘कान्हा’ तद्भवीकरण की प्रक्रिया बहुत पहले शुरू हो गई थी तथा ‘किशुन’ के तद्भवीकरण की बहुत बाद में शुरू हुई। ऐसी स्थिति में पहले को ‘तद्भव’ या ‘पूर्वर्ती तद्भव’ तथा दूसरे को ‘परवर्ती तद्भव’ कहना मेरे विचार से अधिक समीचीन है। हिंदी में प्रयुक्त करम, चंदर, धरम, अच्छर, कारण जैसे शब्द परवर्ती तद्भव ही हैं। पंजाबी में, प्रयुक्त नामों में, ये परवर्ती तद्भव बहुत अधिक हैं। जैसे सुरिन्दर, रजिन्दर, भूपिन्दर, महेन्द्र आदि।”

विद्वानों के उपर्युक्त मतव्यों से ज्ञात होता है कि अर्द्धतत्सम वे शब्द हैं जो आधुनिक काल में किसी भी भाषा में संस्कृत से सीधे आए हैं और उनका रूप तत्सम से मिलता-जुलता सा अर्थात् कुछ ही भिन्न है। इन्हीं को डॉ. भोलानाथ तिवारी ने ‘तत्सम एवं तद्भव के बीच में हैं’ कहा है। मेरी दृष्टि से ‘तत्सम’ को ‘तत्’ तथा ‘अर्द्धतत्सम’ जिनका रूप ‘तत्सम’ से मिलता-जुलता अर्थात् कुछ भिन्न होकर भी उसके समान अर्थात् संस्कृत शब्दों या किसी भी भाषा के मूल शब्द के समान होता है को ‘तत्सम’ की संज्ञा देना अधिक समीचीन एवं वैज्ञानिक होगा। अर्द्धतत्सम संस्कृत से सीधे किसी आधुनिक भाषा में थोड़े से परिवर्तन के साथ आ जाता है इसलिए उसे संस्कृत के निकट माना जाता है उसकी अपेक्षा कान्हा, कन्हैया जैसे तद्भव शब्द संस्कृत कृष्ण से सीधे विकसित न होकर पालि, प्राकृत, अपभ्रंश आदि में होते हुए आधुनिक भाषाओं में आते हैं। इसलिए ‘तद्भव’ एवं ‘अर्द्धतत्सम’ में भेद स्थापित किया गया है। किंतु भेदीकरण की यह प्रक्रिया वैज्ञानिक नहीं है क्योंकि संस्कृत शब्दों के विकसित या परिवर्तित रूप को ही तद्भव की संज्ञा दी जाती है तो कृष्ण से विकसित किशन या किशुन को भी तद्भव की श्रेणी में रखना ही श्रेयस्कर होगा। इनके लिए अलग वर्ग की कल्पना करना वैज्ञानिक नहीं होगा। परिवर्तन की मात्रा को ध्यान में रखकर शब्द समूह का वर्गीकरण करना असंभव है। क्योंकि इस प्रकार के शब्द कई परिवर्तनों के पश्चात् आधुनिक भाषाओं में स्थान पाते हैं ऐसी

स्थिति में अर्द्धतत्सम, तिहाई तत्सम, चौथाई तत्सम आदि अनेक रूप धारण कर लेने पर असंख्य वर्गों की जटिलता उपस्थित हो जायेगी। कृष्ण से कान्हा तक तो भाषाविद् पहुंच ही गए हैं आगे का विकास भी अवलोकनीय है—

कान्हा > कान्ह > काहन > कान > कां आदि। कान्हा का कान्ह तो साहित्य में मिलता ही है। उसी के व्यंजन विपर्यय से एक विशिष्ट घी का नाम 'काहन घी' रखा गया है जिसके डिब्बे पर कृष्ण एवं गाय चित्रित होते हैं। पंजाबी उच्चारण में 'काहन' न कहकर 'कान' ही कहा जाता है, क्योंकि पंजाबी में हकार लोप की प्रवृत्ति है, जैसे—बीस बीह बी। दूर नहीं जब 'कान' विकसित होकर 'कां' मात्र रह जाएगा जिस प्रकार 'आसमान' का 'आस्मां' तथा काले कृष्ण काले कौवे की आवाज में कां-कां के नाम से पुकारे जाएंगे।

इससे इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि 'अर्द्धतत्सम' नाम के वर्ग की आवश्यकता नहीं है। 'पूर्ववर्ती तद्भव' एवं 'परवर्ती तद्भव' की कल्पना भी उचित प्रतीत नहीं होती है क्योंकि एक समय में एक शब्द दो विभिन्न वर्गों एवं दिशाओं में विकसित हो सकता है। कभी-कभी दोनों विकसित रूप अर्थ भिन्नता के साथ चलते रहते हैं। हो सकता है कि डॉ. चाटुर्ज्या द्वारा 'श्रद्धा' के विकसित दो रूप 'शाध' एवं 'छेदा' इसी प्रकार के हों। अर्थ भिन्नता न होने पर एक समय में विकसित अनेक रूपों में से योग्यतमावशेष के अनुसार एक रूप ही अवशिष्ट रह जाता है शेष का लोप हो जाता है। हो सकता है 'किशन' एवं 'किशुन' की विकास परंपरा के अन्य रूप लुप्त हो गए हैं। यथा 'तर' एवं 'तम' संस्कृत के दो प्रत्ययों में से आजकल 'एक' का लोप हो गया है। निष्कर्षतः विकार की मात्रा के आधार पर शब्दों की कोटियां एवं वर्ग बनाने सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक दोनों ही दृष्टियों से औचित्यपूर्ण नहीं कहा जा सकता है।

आचार्य किशोरीदास वाजपेयी (समालोचक, अक्टूबर 1952) ने 'अर्द्धतत्सम क्या चीज है' नामक लेख में यह मत व्यक्त किया है कि ऐसे शब्दों का अलग वर्ग बनाने की क्या आवश्यकता है? वाजपेयी जी का कथन है, "यह अर्द्ध-बद्ध क्या चीज है? तब तो 'तृतीयांश तत्सम', 'चतुर्थांश तत्सम' और 'सहस्रांश तत्सम' शब्द भी चलेंगे और फिर उस परिवर्तन की नाप-तौल का झमेला सामने आएगा।" आगे उसी लेख में व्यंग्यात्मक शैली में अर्द्धतत्सम का विरोध करते हुए आचार्य वाजपेयी ने लिखा है, "हमारा अवधी में संस्कृत 'लक्ष्मण' के तद्भव रूप 'लक्खन', 'लखन' चलते हैं—जल को गए लक्खन हैं लरिका—और राम लखन सीता सहित—परंतु 'लछिमन' भी चलता है। 'भाषाविज्ञानी' कहता है कि 'लखन' तद्भव और 'लछिमन' अर्द्धतत्सम है क्योंकि यहां स्वरभक्ति और समीकरण के ध्वनि संबंधी नियमों के अनुसार परिवर्तन है। यह बात यह भी कि अवधी में संस्कृत शब्द 'लक्ष्मण' का तद्भव 'लक्खन' या 'लखन' हैं परंतु संस्कृतवाहिनी संस्कृत भाषा का 'लक्ष्मण' शब्द भी अवधी में प्रयुक्त होने लगा

और अवधी के उच्चारण के अनुरूप इस 'लक्ष्मण' या 'लछिमन' बन गया। परंतु यह रूपांतरित शब्द 'तद्भव' नहीं अर्द्धतत्सम है, यह मत आज के महान् भाषावैज्ञानिकों का है।" इससे स्पष्ट हो जाता है कि वाजपेयी जी ने 'अर्द्धतत्सम' नाम से किसी नए शब्द-वर्ग की स्थापना का विरोध किया है।

डॉ. पूर्णसिंह डबास (हिंदी में देशज शब्द—1972, पृ. 20) ने डॉ. भोलानाथ तिवारी के 'पूर्ववर्ती तद्भव' तथा 'परवर्ती तद्भव' को स्वीकारोक्ति प्रदान करते हुए लिखा है, "डॉ. तिवारी ने अर्द्धतत्सम तथा तद्भव को मूलतः एक ही प्रकार के शब्द माना है। हां, विकार के काल के आधार पर उन्होंने इनके 'पूर्ववर्ती' तथा 'परवर्ती' भेद करने का सुझाव दिया है। जिन शब्दों के विकार या विकास की यह 'पूर्व' तथा 'पर' की निश्चित जानकारी हो वहां इस सुझाव को स्वीकार किया जा सकता है।"

इस कथन के अवलोकन से ज्ञात होता है कि इसमें शंका की दृष्टि विद्यमान है। इसीलिए 'निश्चित जानकारी' शब्द का प्रयोग किया गया है। निश्चित जानकारी से अवगत होना ही कठिन कार्य है जो वैज्ञानिक होते हुए भी अव्यावहारिक है। इसलिए मेरी दृष्टि से इस प्रकार के उपभेद की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती है।

3.4.6. संकर

इस वर्ग को संकर के अतिरिक्त 'मिश्रित', 'द्विज' तथा 'दोगले' आदि नामों से भी अभिहित किया गया है। डॉ. हरदेव बाहरी (हिंदी : उद्भव, विकास और रूप—1970, पृ. 143) ने 'दोगले' नाम मात्र दिया है। इसकी कोई परिभाषा नहीं दी है। देशी शब्दों की विवेचन करते हुए उन्होंने (हिंदी : उद्भव, विकास और रूप—1970, पृ. 143) लिखा है, "दोगले शब्दों को भी इसी कोटि में रखना चाहिए। उदाहरण—चोर दरवाजा (हि. + फारसी), जेबघड़ी (फारसी + हिंदी), तिमाही (हि. + फारसी), दिलचला फा. + हि.), फूलदान (हि. + फा.), रेलयात्रा (अंग्रेजी + संस्कृत) इत्यादि।"

डॉ. भोलानाथ तिवारी (हिंदी-भाषा—1972, पृ. 660) ने संकर शब्दों की विवेचना करते हुए लिखा है, "उन शब्दों को कभी-कभी इस नाम से अभिहित किया गया है जो दो भाषाओं के तत्त्वों (शब्द, प्रत्यय, उपसर्ग) के योग से बने हों, जैसे, रेलगाड़ी (अं. + हिंदी), मालगाड़ी (अ. + हि.), दलबंदी (सं. दल + फा. बंदी), पाव रोटी (पुर्त + हि.), गुरुडम (सं. + अं. डम), अंग्रेजियत (फास. + अरबी) आदि।

डॉ. पूर्णसिंह डबास (हिंदी में देशज शब्द—1972, पृ. 20) इस वर्ग को महत्वहीन बतलाते हुए लिखते हैं—

"इस प्रकार के शब्दों का भी ऐतिहासिक दृष्टि से किए गए वर्गीकरण की दृष्टि से

कोई महत्त्व नहीं है। उदाहरण के लिए 'रैलगाड़ी' का उद्गम स्रोत जानने के लिए हमें पहले से वर्तमान 'रैल' तथा 'गाड़ी' का उद्गम स्रोत जानना होगा। वास्तव में शब्दों का यह वर्ग तो भाषा में पहले से स्थित शब्दों के आधार पर नए शब्दों की रचना से संबंधित है।"

डॉ. डबास का मत उचित प्रतीत नहीं होता है क्योंकि अपने कथन के आरंभ में उन्होंने इस वर्ग को महत्त्वहीन बतलाया है, किंतु अंत में इसकी विशेषता को भी स्वीकार किया है तथा यह कहा है कि 'रैलगाड़ी' का उद्गमस्रोत जानने के लिए दो भाषाओं के शब्दों 'रैल' तथा 'गाड़ी' पर विचार करना होगा। इसके अतिरिक्त पूर्व स्थित शब्दों के आधार पर इसे नए शब्दों की रचना के रूप में भी स्वीकार करते हैं।

दो भाषाओं के (शब्द, प्रत्यय, उपसर्ग) मेल से बने शब्दों को 'संकर' की संज्ञा दी जा सकती है। इस प्रकार के शब्दों का किसी भी भाषा के साहित्य में विशेष महत्त्व होता है। भाषा में ऐसे शब्दों की संख्या को देखते हुए इस वर्ग के शब्दों के अस्तित्व को नकारा नहीं जा सकता है।

3.4.7. प्रतिध्वनि

'प्रतिध्वनित' शब्द की परिभाषा डॉ. श्यामसुंदरदास ने इस प्रकार दी है—

"कभी-कभी किसी शब्द का प्रकार, सादृश्य या संबंध बोधन कराने के लिए आंशिक आवृत्ति कर जाती है; जैसे लोटा-ओटा अर्थात् लोटा तथा तत्सदृश अन्य वस्तुएं। इस प्रकार की प्रकारार्थक द्विरुक्ति आधुनिक आर्य भाषा एवं द्रविड़ भाषाओं में ही देखी जाती है। हिंदी में इस प्रकार के प्रतिध्वनित शब्दों की सृष्टि पर बहुत कुछ द्रविड़ प्रभाव समझना चाहिए।"

डॉ. भोलानाथ तिवारी (हिंदी-भाषा, 1972, पृ. 660) ने भी उन शब्दों को 'प्रतिध्वनित' शब्द स्वीकार किया है—

"जो किसी शब्द की प्रतिध्वनि या सादृश्य पर बने हों; जैसे घोड़ा-वोड़ा, चाय-वाय, काम-वाम। हिंदी में ऐसे शब्दों का प्रयोग द्रविड़ प्रभाव माना गया है। यों यह प्रवृत्ति उज्जबेक आदि भारत से बाहर की भाषाओं में भी मिलती है।"

डॉ. पूर्णसिंह डबास (हिंदी में देशज शब्द, 1972, पृ. 20) ने भी इसी प्रकार माना है—

"वे शब्द जो किसी मूल शब्द की प्रतिध्वनि या सादृश्य के आधार पर बने हों 'प्रतिध्वनि' शब्द कहलाते हैं।" इसके अतिरिक्त डॉ. डबास ने अनुवाद युग्म एवं पुनरुक्त शब्दों को भी इसी के अंतर्गत समाहित करके विस्तृत विवेचना प्रस्तुत की है।

डॉ. डबास (हिंदी में देशज शब्द—1972, पृ. 21) ने संकर की भांति इसके भी महत्त्व को स्वीकार नहीं किया है—

"अगर के उदाहरणों में 'ओटा', 'घोड़ा', 'वाय' तथा 'वाम' क्रमशः 'लोटा',

'घोड़ा', 'चाय' तथा 'काम' की प्रतिध्वनियां हैं अतः ये 'ओटा', 'ओड़ा' आदि शब्द ही वस्तुतः प्रतिध्वनित शब्द हैं। परंतु व्यवहार में प्रतिध्वनित शब्दों का यह अर्थ नहीं लिया जाता क्योंकि इनका स्वतंत्र रूप में प्रयोग नहीं किया जा सकता। ये तो अपने मूल शब्द के साथ मिलकर ही सार्थक होते हैं। ऐसी अवस्था में 'लोटा-ओटा', 'घोड़ा-वोड़ा' आदि पूरे पदों को ही सामान्यतया प्रतिध्वनित शब्द मान लिया जाता है। व्युत्पत्ति या उद्गम स्रोत की दृष्टि से इन शब्दों की भी कोई समस्या नहीं है। यह स्पष्ट है कि प्रतिध्वनित शब्द मूलतः किसी मूल शब्द की प्रतिध्वनि के परिणामस्वरूप उत्पन्न होते हैं।"

डॉ. डबास का यह कहना औचित्यपूर्ण नहीं है कि इनका स्वतंत्र रूप में प्रयोग नहीं किया जा सकता। ये तो अपने मूल शब्द के साथ ही मिलकर सार्थक होते हैं। इस दृष्टि से देखा जाय तो उपसर्ग और प्रत्यय का भी स्वतंत्र प्रयोग नहीं किया जा सकता है। शब्द के साथ मिलकर ही अपनी अर्थमयता का बोध कराते हैं फिर इनके योग से बने शब्दों को 'संकर' नाम भी नहीं दिया जा सकता है जैसा कि डॉ. तिवारी (हिंदी-भाषा, 1972, पृ. 660) ने संकर शब्द की परिभाषा देते हुए लिखा है—

"उन शब्दों को कभी-कभी इस नाम से अभिहित किया गया हो जो दो भाषाओं के तत्वों (शब्द, प्रत्यय, उपसर्ग) के योग से बने हों।"

उपसर्ग एवं प्रत्यय का प्रयोग स्वतंत्र नहीं किया जा सकता है फिर भी इनके योग से नये शब्द का निर्माण होता है। दूसरे डॉ. डबास ने लिखा है कि इनकी व्युत्पत्ति की कोई समस्या नहीं है। व्युत्पत्ति की समस्या तो तत्सम शब्दों की भी नहीं होती है। क्या उनका भी अलग वर्ग नहीं होना चाहिए। इसके अतिरिक्त यह कहना कि व्युत्पत्ति या उद्गम स्रोत की दृष्टि से इन शब्दों की कोई समस्या नहीं है यह भी औचित्यपूर्ण नहीं है क्योंकि एक ही मूल शब्द से एक से अधिक प्रकार के प्रतिध्वनि शब्दों की व्युत्पत्ति होती है तथा उनके अर्थ भी अलग-अलग होते हैं यथा—'चाय' एवं 'धोती' दो मूल शब्दों से क्रमशः 'चाय-वाय', 'धोती-ओती' तथा 'चाय-साय' एवं 'धोती-सोती' दो प्रकार के प्रतिध्वनि शब्द व्युत्पन्न हुए हैं। प्रथम का अर्थ स्वीकारात्मक है तो दूसरे का अर्थ नकारात्मक। उदाहरणार्थ जब हम कहता हैं कि 'चाय-वाय' पीने से पूर्व 'धोती-ओती' लेकर चलिए स्नान कर लिया जाए। इसका यह अर्थ होता है कि नाश्ते में चाय-बिस्कुट या काफी आदि कुछ लेना है किंतु उससे पहले धोती, तोलिया, पायजामा या साबुन आदि लेकर चलिए स्नान कर लिया जाए।

इसके विपरीत जब कहते हैं, " 'चाय-साय' क्या पिएंगे स्नान करने के लिए 'धोती-सोती' कुछ है ही नहीं।" तो इसका स्पष्ट अर्थ यही होता है कि धोती पायजामा, तौलिया, साबुन आदि कुछ नहीं है इसलिए चाय, बिस्कुट या काफी आदि कुछ भी नहीं पिएंगे।

इसी प्रकार अन्य उदाहरण भी दिए जा सकते हैं 'ठाट-बाट'—ठाट-वाट', 'पर-घर'—पर-घाट', तथा 'भाई-वाई'—भाई-साई' आदि

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि यहां यह समस्या होती है कि किस प्रकार की ध्वनि किस प्रकार का अर्थ प्रदान करती है। उपर्युक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रतिध्वनित शब्द में 'स' ध्वनि आने पर प्रायः नकारात्मक अर्थ ही होता है।

3.4.8. अनुवाद युग्म

डॉ. भोलानाथ तिवारी (हिंदी भाषा—1972, पृ. 660) ने इस वर्ग के विषय में अपने विचार निम्न प्रकार व्यक्त किए हैं—

“ऐसे समस्त पद जिनमें एक-दूसरे का अनुवाद हो जैसे हाट-बाजार, खेल-तमासा, पायरोटी, साग-सब्जी, लाज-शर्म, धन-दौलत, कागजपत्तर। संस्कृत में कार्षापण (कार्ष = नाप, पण = गणना) या शालिहोत्र (शालि = घोड़ा (कोल शब्द); होत्र = घोड़ा) ऐसे ही शब्द हैं। ऐसे युग्म आवश्यक नहीं कि विदेशी शब्द एवं अपने शब्द की सहायता से बनाए जाएं। एक और 'माल-पता', 'कायदा-कानून', 'सोदा-सुल्फ', 'माल-असवाव' जैसे शब्द केवल विदेशी आधार पर बने हैं, तो दूसरी ओर 'जीवन-जंतु', 'काम-काज', 'बनाव-सिंगार' जैसे शब्द अपने शब्दों के आधार पर। इस प्रकार के शब्दों में प्रायः 'इत्यादि' का भाव रहता है, किंतु पावरोटी जैसे शब्द अपवाद भी हैं। वस्तुतः ये अपवाद मिलने वाले शब्द ही एक शब्द कहलाने के अधिकारी हैं।”

उपर्युक्त कथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि 'अनुवाद युग्म' में प्रायः समान अर्थ वाले, किसी अन्य शब्द का योग होता है। इसके द्वारा स शब्द विशेष का मूल अर्थ कुछ विस्तृत हो जाता है। इन शब्दों का निर्माण ऐसी मानसिक परिस्थिति में होता है जब हमारा मन शब्द के किसी एक ही रूप के माध्यम से अपने भाव या अर्थ की पूर्ण अभिव्यक्ति में सफल नहीं हो पाता है। यह भाव अथवा अर्थ वस्तुतः उस मूल शब्द के अर्थ की अपेक्षा अधिक लचीला या विस्तृत होता है अथवा मूल शब्द के अर्थ या उसके अंतर्गत आने वाले मूल कार्य व्यापार से आगे बढ़कर उससे संबद्ध अनेक अर्थों या कार्य व्यापारों की व्यंजना करता है। उदाहरणार्थ लूट-खसोट, नोच-खसोट, मार-काट, रोक-टोक, खुले-आम तथा धक्का-मुक्की आदि के अर्थों को इन युग्मों में प्रयुक्त किसी एक शब्द से व्यक्त नहीं किया जा सकता है।

3.4.9. पुनरुक्त

डॉ. भोलानाथ तिवारी (भाषा-विज्ञान—1972, पृ. 659) का पुनरुक्त शब्दों के विषय में निम्न मत है—

“ऐसा योगिक शब्द शब्द को दुहराकर बनाया गया हो; जैसे चलते-चलते, जन-जन, भड़-भड़, बग-बग, रख-रखाव जैसे शब्द अपूर्ण पुनरुक्त शब्द कहलाते हैं।”

डॉ. तिवारी ने 'भड़-भड़' तथा 'बग-बग' दो उदाहरण अनुकरणात्मक के भी दे दिए हैं जिनमें प्रथम ध्वन्यात्मक अनुकरण एवं द्वितीय दृश्यात्मक अनुकरण के अंतर्गत आते हैं।

डॉ. तिवारी ने पुनरुक्त के पूर्ण, अपूर्ण दो भेद किए हैं। किंतु डॉ. पूर्णसिंह डबास ने पूर्ण पुनरुक्त को भी दो उपवर्गों में विभक्त किया है—

“(क) समानार्थक पुनरुक्त—जैसे बार-बार, देश-देश, धीरे-धीरे, मार-धाड़, सोच-विचार, मान-सम्मान, चीर-फाड़, रंग-ढंग, नौकर-चाकर आदि।

(ख) असमानार्थक पुनरुक्त—जैसे ऊंची-नीच, उतार-चढ़ाव, काला-पीला, खरा-खोटा तथा लेन-देन आदि।”

इतना ही नहीं डॉ. डबास (हिंदी में देशज शब्द—1972, पृ. 26) ने आगे लिखा है—

“यदि चाहें तो इन शब्दों को हिंदी में प्रचलित शब्द-समूह के पारंपरिक वर्गीकरण—तत्सम, तद्भव, देशज तथा विदेशी—के आधार पर और भी उपवर्गों में विभाजित किया जा सकता है। उदाहरण के लिए आदान-प्रदान, हड़-पुष्ट, आकार-प्रकार, अस्त-व्यस्त, सेवा-सुश्रूषा तथा छिन्न-भिन्न 'तत्सम पुनरुक्त' हैं तो आनन-फानन, हू-बू-हू, हैस-बैस, जर्क-बर्क, नफसा-नफसी आदि 'विदेशी पुनरुक्त' हैं तो आनन-फानन, हू-बू-हू, हैस-बैस, जर्क-बर्क, नफसा-नफसी आदि 'विदेशी पुनरुक्त' हैं। इसी प्रकार काम-काज, सीधा-साधा, हलका-फुलका, राव-चाव तथा होड़ा-होड़ी आदि 'तद्भव पुनरुक्त' हैं।”

उपर्युक्त कथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि शब्द के पुनरुक्त वर्ग के अनेक भेदोपभेद किए जा सकते हैं तथा यह वर्गीकरण वैज्ञानिक भी है।

डॉ. पूर्णसिंह डबास (हिंदी में देशज शब्द—1972, पृ. 22-24) ने प्रतिध्वनि, अनुवाद युग्म एवं पुनरुक्त को तथाकथित विशेषण से विभूषित किया तथा इनकी मूलभूत समानता या एकता का प्रतिपादन किया है—

“तीनों प्रकार के शब्दों के निर्माण के मूल में एक ही प्रवृत्ति कार्य करती है। चाहे किसी शब्द विशेष के साथ उसका तथाकथित प्रतिध्वनि जुड़ी हो या इसकी आवृत्ति (पुनरुक्ति) संलग्न हो अथवा उसके साथ, उसके प्रायः समान अर्थ वाले, किसी अन्य शब्द का योग हो, इन तीनों ही अवस्थाओं में उस शब्द विशेष का भूल अर्थ कुछ विस्तृत हो जाता है। अर्थ का यह विस्तार प्रायः समान दिशा में होता है अधिक भिन्न या विपरीत दिशा में नहीं उदाहरण के लिए गप-शप (प्रतिध्वनि) में 'गप' के साथ 'शप' का प्रयोग तथा 'रख-रखाव' (पुनरुक्ति) में 'रख' के साथ 'रखाव' का

संयोग एवं उछल-कूद, लूट-खसोट तथा चीर-फाड़ (अनुवाद युग्मों) में क्रमशः 'उछल' के साथ 'कूद', 'लूट' के साथ 'खसोट' तथा 'चीर' के साथ 'फाड़' का आगमन अर्थ की अपनी-अपनी सीमाओं में एक ही उद्देश्य की पूर्ति करते हैं। उक्त तीनों प्रकार के शब्दों की निर्माण या उद्देश्यगत समानता सिद्ध करने के लिए तुलनात्मक सूचियां दी जा रही हैं—

पुनरुक्त शब्द	अनुवाद-युग्म
1. नोचा-नोची	नोच-खसोट
2. चलना-चुलना	चलना-फिरना
3. काटा-काटी	काट-मार, मार-काट, काट-पीट
4. टोक-टाक	रोक-टोक
5. धका-धकी	धकापेल
6. धक्कम-धक्का	धक्का-मुक्की
7. खुल्लम-खुल्ला	खुलेआम।

प्रतिध्वनि शब्द	अनुवाद-युग्म
1. पकड़-धकड़	धर-पकड़
2. इने-गिने	गिने-चुने
3. चोर-चकार	चोर-उचक्का
4. टेढ़ा-मेढ़ा	टेढ़ा-तिरछा
5. नखरा-बखरा	नाज़-नखरा।

पुनरुक्त शब्द	प्रतिध्वनि शब्द
1. भीड़-भाड़	भीड़-भड़क्का
2. टाल-टूल	टाल-मटोल
3. पकड़ा-पकड़ी	पकड़ा-धकड़ी
4. लूट-लाट	लूट-पाट
5. फेर-फार	हेर-फेर।

इन तालिकाओं के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर यह विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि उक्त तीनों प्रकार के शब्दों के प्रयोजन में मूलभूत साम्य है। अनेक 'प्रतिध्वनि' एवं 'पुनरुक्त' शब्द तो निर्माण-प्रक्रिया की दृष्टि से भी इतने निकट हैं कि उनके बीच में कोई विभाजक रेखा खींचना अत्यंत कठिन है।"

तुलनात्मक विवेचन यह द्योतित करता है कि शब्द-समूह के पुनरुक्त, अनुवाद-युग्म तथा प्रतिध्वनि तीन वर्ग बनाए गए हैं इनमें निश्चित रूपेण समानता है।

किंतु समानता का यह अभिप्राय नहीं कि इन तीनों को एक ही वर्ग में समाहित कर दिया जाय। उनकी अपनी अलग-अलग विशेषताएं भी हैं।

3.4.10. अनुकरणात्मक

अनुकरण के आधार पर निर्मित शब्दों को अनुकरणात्मक कहा गया है। शब्द-समूह के इस वर्ग के नाम के विषय में भाषाविदों में मतैक्य नहीं है जिसके परिणामस्वरूप इसके अनुकरणमूलक, अनुकरणात्मक, ध्वन्यात्मक तथा ध्वनिमूलक शब्द आदि अनेक नाम दिए गए हैं। इन शब्दों के विषय में पं. कामताप्रसाद गुरु (हिंदी व्याकरण—सं. 2017, पृ. 24) का मतव्य इस प्रकार है—

"पदार्थ की यथार्थ अथवा कल्पित ध्वनि को ध्यान में रखकर जो शब्द बनाए गए हैं वे अनुकरण-वाचक शब्द कहलाते हैं; जैसे—खटखटाना, धड़ाम, चट आदि।"

उपर्युक्त कथन का यह तथ्य ध्यातव्य है कि पदार्थ की कल्पित या यथार्थ ध्वनियों का अनुकरण सभी व्यक्ति समान रूप से नहीं कर सकते हैं उसमें भिन्नता का आना अवश्यंभावी है। कोई व्यक्ति किसी ध्वनि या प्रतिध्वनि अथवा गुंज को सुनता है और उसको जिस प्रकार की विशिष्टता का ज्ञान होता है उसी प्रकार वह उस ध्वनि को उच्चरित करता है। इसी दृष्टिकोण को समक्ष रखते हुए कुछ विद्वानों ने इसे अनुकरणात्मक शब्द न कहकर 'प्रतिध्वनि शब्द' नाम रखने का सुझाव दिया है। कुछ विद्वान् इसके अलग वर्ग को स्वीकारते हैं तो दूसरे इसे 'देशज' के अंतर्गत रखने के पक्ष में हैं।

डॉ. भोलानाथ तिवारी (हिंदी भाषा—1972, पृ. 659) ने इस वर्ग को अनुकार, अनुकरणात्मक या अनुकरणमूलक शब्द की संज्ञा दी है तथा इसे अनुकरण के आधार पर बना हुआ कहा है। इसके अतिरिक्त इसके दो उपभेद भी किए हैं—

(क) ध्वन्यात्मक—फटफटिया, भोंपू, सीटी, भड़-भड़।

(ख) दृश्यात्मक—चमचम, बगबग तथा दकदक।

डॉ. तिवारी के वर्गीकरण से मैं सहमत हूँ। मेरा यह विचार है कि इस शब्द वर्ग को देशज के अंतर्गत न रखकर इसका स्वतंत्र वर्ग बनाया जाना चाहिए। अनुकरण की प्रधानता को देखते हुए इस वर्ग को 'अनुकरणात्मक' की संज्ञा देना श्रेयस्कर होगा। निष्कर्ष यह है कि इनको देशज के अंतर्गत नहीं रखा जाना चाहिए। क्योंकि देशज शब्दों की भांति ये अज्ञातव्युत्पत्तिक तो हैं नहीं। इनकी व्युत्पत्ति का ज्ञान होता है कि ये निश्चितरूपेण अनुकरण के आधार पर बने हैं।

डॉ. भोलानाथ तिवारी (शब्दों का अध्ययन—1969, पृ. 23) ने पुनः अनुकरणात्मक के तीन उपभेद किए हैं—

(क) ध्वन्यात्मक— + + + ।

(ख) दृश्यात्मक— + + + ।

(ग) प्रतिध्वन्यात्मक—जैसे घोड़ा-वोड़ा, चाय-चूय, पान-शान। इनमें वोड़ा, चूय, शान क्रमशः घोड़ा, चाय, पान की प्रतिध्वनि के आधार पर बने हैं। प्रतिध्वन्यात्मक शब्द का प्रयोग प्रायः 'वगैरह' का भाव व्यक्त करने के लिए होता है। विश्व की अनेक भाषाओं में ऐसे प्रयोग मिलते हैं। अधिकांश भाषाओं में इसे बनाने का ढंग प्रायः अलग-अलग होता है। जैसे हिंदी में चाय-वाय, अधिक चलता है तो पंजाबी में चाय-शाय। उजबेक भाषा में 'म' लगाते हैं : किताब-मिताब। गुजराती में घोड़ो-बोड़ो, मराठी में घोड़ा-बिड़ा, बंगाली में घोड़ा-टोड़ा आदि।"

डॉ. तिवारी के पूर्व वर्गीकरण से जहाँ में पूर्णरूपेण सहमत हूँ वहाँ इस वर्गीकरण तथा विवेचना से पूर्ण असहमत हूँ। (क) (ख) से मेरी पूर्ण सहमति है किंतु (ग) की असहमति के निम्न कारण हैं—

1. प्रतिध्वन्यात्मक शब्दों का अनुकरण नहीं किया जाता है अपितु डॉ. तिवारी के शब्दों में कहा जाय तो हम कह सकते हैं, ये मूल शब्द की प्रतिध्वनि के आधार पर बने हैं। प्रतिध्वन्यात्मक शब्द का प्रयोग (न कि अनुकरण) प्रायः 'वगैरह' का भाव व्यक्त करने के लिए होता है।" फिर इसको अनुकरणात्मक का एक उपवर्ग कैसे स्वीकारा जा सकता है। इसके अतिरिक्त 'प्रतिध्वनि शब्द' या 'प्रति ध्वन्यात्मक' एक अलग वर्ग है जिसकी विवेचना हम पहले कर आए हैं। डॉ. तिवारी ने भी उसे अलग वर्ग स्वीकारा है। इसलिए इसका उपवर्ग मानना औचित्य नहीं है। किंचित इसका परिष्कार दूसरी पुस्तक में किया गया है।

2. जैसा हम पहले कह आए हैं हिंदी में 'चाय-वाय' तथा 'चाय-साय' दोनों रूपों का प्रयोग है केवल एक का नहीं। प्रश्न यह उठता है कि क्या पंजाबी 'चाय-शाय' के आधार पर हिंदी 'चाय-साय' का विकास हुआ है या स्वतंत्र है। मेरा अपना विचार है कि स्वतंत्र है। पंजाबी के आधार पर हिंदी 'चाय-साय' का विकास नहीं हुआ है।

3. प्रतिध्वनित शब्दों में विभिन्न भाषाओं में विभिन्न शब्दों के साथ किन-किन व्यंजनों का आगम होता है यह शोध का विषय है यथा हिंदी में 'व', 'स', गुजराती में 'व', बंगाली में 'ट' तथा उजबेक में 'म' आदि इन ध्वनि परिवर्तनों को देखते हुए भी इनको अनुकरणात्मक का उपसर्ग-कहना समाधान प्रतीत नहीं होता है।

3.4.11. देशज

इस वर्ग के नामकरण के विषय में मतैक्य नहीं है। इसे देशज या देशजात, देशिन, देशी, देश्य, देसिका, देसिज, देसि आदि अनेक नामों से अभिहित किया गया है। भरत ने इसे

'देशी मत', चंड ने 'देशी प्रसिद्ध', तथा हेमचंद्र एवं मार्कण्डेय आदि ने 'देश्य' या 'देशी', डॉ. भोलानाथ तिवारी ने 'अज्ञात व्युत्पत्तिक' कहा है। इसके अतिरिक्त कुछ भाषाविदों ने इस वर्ग को 'देशजात' तथा 'देसिका' आदि नाम देना श्रेयस्कर समझा है। उपर्युक्त सभी शब्द समानार्थी हैं जिनमें 'देशज' ही उपयुक्त नाम है। अन्यथा इसे 'अज्ञातव्युत्पत्तिक' नाम देना भी औचित्यपूर्ण होगा। नामकरण की भांति इसकी परिभाषा भी अति विवादास्पद है। विभिन्न विद्वानों ने भिन्न-भिन्न परिभाषाएं दी हैं। चंड के अनुसार वे शब्द 'देशी प्रसिद्ध' के अंतर्गत आते हैं जो संस्कृत एवं प्राकृत (अर्थात् तत्सम एवं तद्भव) न हों।

रुद्र उन शब्दों को देशज मानते हैं जिनकी प्रकृति प्रत्यय-मूला व्युत्पत्ति नहीं दी सकती है। इसी प्रकार की परिभाषा हेमचंद्र, बीम्स तथा भंहारकर आदि ने दी है। इन सबका विश्वास है कि देशज शब्दों की संस्कृत से व्युत्पत्ति संभव नहीं है।

हर्नले का कहना है कि ये तद्भव शब्द हो सकते हैं। इनमें इतनी विकृतियां हो गई हैं कि परिणामस्वरूप इन्हें पहचानना भी कठिन हो गया है। इसी दृष्टिकोण से डॉ. भोलानाथ तिवारी ने 'अज्ञातव्युत्पत्तिक' नाम दिया है। अर्थात् इनकी निश्चित रूप में व्युत्पत्ति ढूंढी जा सकती है किंतु अभी किसी को उसका ज्ञान नहीं है, अन्यथा बिना आधार के शब्द निर्माण किस प्रकार संभव है ?

ग्रियर्सन मुंडा, द्रविड़ प्रांतों में विकसित प्रांतीय शब्द एवं प्राथमिक प्राकृतों के तद्भव आदि को, जो संस्कृत शब्दों से जोड़े नहीं जा सकते हैं उन्हीं को 'देशज' मानते हैं।

मुंडा और द्रविड़ भी किसी प्रांत से संबंधित हैं इसलिए इनका नाम विशेष रूप से लेकर पुनः प्रांतीय शब्द कहना औचित्यपूर्ण नहीं है। प्रांतीय भी कहने की आवश्यकता नहीं है व्यापक रूप से देखा जाय तो 'देशीय' शब्द का प्रयोग किया जा सकता है, किंतु 'देशज' से मेरा अभिप्राय देश + ज से न होकर देश-स्थान + ज से है।

डॉ. चाटुर्ज्या ने अपूर्ण परिभाषा दी है। उनके अनुसार आर्यपूर्व द्रविड़ तथा कोल शब्द ही देशज हैं।

डॉ. भोलानाथ तिवारी (हिंदी भाषा—1972, पृ. 659) ने निष्कर्ष रूप में इन शब्दों को अज्ञातव्युत्पत्तिक कहना ही वैज्ञानिक माना है किंतु देशज को भी मान्यता दी है और उसके दो भेद किए हैं। आपका कथन अवलोकनीय है—

"मैं 'वास्तविक देशज' शब्द तथा 'देशज' माने जाने वाले शब्दों में अंतर मानता हूँ। वास्तविक देशज शब्द तो वे हैं जो किसी भाषा-क्षेत्र में बिना किसी आधार (तत्सम, तद्भव, गृहीत (लोन) शब्द तथा अनुकरण आदि) के विकसित हो गए हों और जो शब्द देशज माने जाते हैं वे, वे हैं जिनकी व्युत्पत्ति का हमें पता नहीं है। सच्चे देशज शब्द को पहचानना मेरे विचार में प्रायः असंभव-सा है। इसलिए यह तो कहा जा सकता है कि देशज शब्द हो सकते हैं, होते हैं, किंतु यह कहना मुझे भ्रामक और अवैज्ञानिक लगता है

कि अमुक या ये शब्द देशज हैं। देशज माने जाने वाले शब्द देशज हो भी सकते हैं और नहीं भी हो सकते हैं। वास्तविक स्थिति यह है कि ये अज्ञातव्युत्पत्तिक हैं। अतः इन्हें 'अज्ञातव्युत्पत्तिक' कहना ही मेरे विचार में वैज्ञानिक है, क्योंकि यह असंभव नहीं कि इनमें अनुकरणात्मक दूसरी भाषाओं से गृहीत, तद्भव या यहां तक कि—यद्यपि बहुत ही कम तत्सम शब्द छिपे हों। हम जानते हैं कि हेमचंद्र द्वारा स्वीकृत देशज शब्दों में अनेक तद्भव या विदेशी सिद्ध हो चुके हैं। हिंदी के कुछ अज्ञात व्युत्पत्तिक शब्द ये हैं—कबड्डी, सादी, गड़बड़, घपला, घूंट, चंपत, चूहा, झंझट, झगड़ा, टट्टू, टीस, ठेठ, ठेस, तेंदुआ, घोंघा, धब्बा, पेठा, पेड़, भर्ता आदि।”

डॉ. पूर्णसिंह डबास (हिंदी में देशज शब्द—1972, पृ. 43) ने केवल इतना कहना पर्याप्त समझा है, “मैं शब्द परंपरागत अर्थ में तत्सम, तद्भव से भिन्न प्रकार के होते हैं अथवा ये वे शब्द होते हैं जिनका प्राचीन इतिहास उपलब्ध नहीं होता।”

डॉ. राजकिशोर सिंह ने देशज शब्दों के अस्तित्व को ही नकार दिया है उन्होंने हिंदुस्तानी त्रैमासिक पत्रिका के जुलाई-सितंबर 1962 के अंक में 'देशज' शीर्षक से एक लेख लिखा है। जिसके कुछ शब्द उद्धृत हैं—

“देशज नाम से शब्दों का वर्गीकरण सही नहीं है और हिंदी ही नहीं सभी आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में देशज शब्दों की स्थिति को मान्य स्वीकार करना गलत होगा।”

उपर्युक्त मत कितना भ्रामक है कि देशज नाम से वर्गीकरण ही न दिया जाय क्योंकि यह सही नहीं। इसके अतिरिक्त सभी आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में देशज की स्थिति को स्वीकारना गलत होगा। इसका अभिप्राय यह है कि आधुनिक भारतीय भाषाओं में डॉ. सिंह ने देशज के अस्तित्व को अस्वीकारा है तथा प्राचीन भारतीय भाषाओं एवं विदेशी-देशी (परराष्ट्रीय-स्वराष्ट्रीय) भाषाओं में इसके अस्तित्व को स्वीकारा भी है अन्यथा यह कह सकते थे कि देशज वर्ग का शब्द-समूह में कोई अस्तित्व नहीं है। किंतु ऐसा नहीं कहा है।

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि शब्द-समूह से देशज वर्ग के अस्तित्व को नकारा नहीं जा सकता है। अनुकरणात्मक वर्ग में देशज को रखना औचित्यपूर्ण नहीं है। इसी भांति अनुकरणात्मक को भी इसके अंतर्गत समाहित नहीं किया जाना चाहिए। दोनों के स्वतंत्र वर्गों में शब्द-समूह को विभाजित किया जाना श्रेयस्कर एवं वैज्ञानिक है।

जैसा कि हम पहले कह आए हैं 'अज्ञातव्युत्पत्तिक' के अतिरिक्त अन्य सभी नाम 'देशज' के समानार्थी ही हैं। 'अज्ञातव्युत्पत्ति' नामकरण वैसा ही है जैसे यदि किसी का नाम निश्चित न होने अथवा न होने पर उसे 'अनिश्चित' या 'अनामिका' नाम से अभिहित करना। जबकि इनका तो इनके विषय में निश्चित ही है कि इनकी उत्पत्ति 'स्थानीय' या 'देशीय' है अतः देशज नाम वैज्ञानिक एवं समीचीन है। डॉ. भोलानाथ तिवारी ने इस नाम को भी स्वीकार किया है अन्यथा (शब्दों का अध्ययन—1969, पृ.

22) देशज शब्दों को दो वर्गों 'वास्तविक देशज' एवं 'देशज माने जाने वाले' दो वर्गों में विभक्त करके इनकी विवेचना प्रस्तुत न करते। अज्ञातव्युत्पत्ति की स्थिति होने के कारण 'अज्ञातव्युत्पत्तिक' नाम को वैज्ञानिक माना है। क्योंकि यह असंभव नहीं कि इनमें अनुकरणात्मक, दूसरी भाषाओं से गृहीत, तद्भव यहां तक कि—यद्यपि बहुत ही कम—तत्सम शब्द छिपे हों। ऐसा कहना मात्र आशंका है। आशंका मात्र से नाम परिवर्तन वैज्ञानिक नहीं है। शंका समाधान हेतु शोध होना चाहिए जिन शब्दों की व्युत्पत्ति का निश्चित ज्ञान हो जाए उन्हें उनके विशिष्ट वर्ग में रख दिया जाना चाहिए।

पुनश्च हम इसी निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि वे स्थानीय शब्द जिनकी व्युत्पत्ति का ज्ञान न हो देशज हैं। चाहे वे किसी भाषा या किसी काल के क्यों न हों।

3.4.12. देशी (स्वराष्ट्रीय)

किसी भाषा में अन्य देश की भाषाओं से आगत अर्थात् आकर मिल जाने वाले शब्दों को विदेशी (परराष्ट्रीय) संज्ञा दी गई है। जिसका आधार देश है। डॉ. पूर्णसिंह डबास ने इस आधार को अस्वीकार करते हुए इसे “‘गृहीत’ की संज्ञा देना अधिक वैज्ञानिक समझा है—“हमारे विचार से देश 'देश' की भावना के आधार पर शब्द-समूह का नामकरण बहुत वैज्ञानिक नहीं है। क्योंकि राजनीति और समय के परिवर्तन से देशों की सीमाएं घटती-बढ़ती रहती हैं। वर्मा, लंका तथा पाकिस्तान की भाषाएं कभी हमारे लिए देशी (स्वराष्ट्रीय) भाषाएं थीं, परंतु अब विदेशी (परराष्ट्रीय) हो चुकी हैं। अतः ऐसी अवस्था में विदेशी के स्थान पर परराष्ट्रीय शब्द का प्रयोग किया जाय तो अधिक वैज्ञानिक रहेगा।”

मेरे विचार से डॉ. डबास का यह मत भ्रामक प्रतीत होता है क्योंकि 'गृहीत' के अंतर्गत देशी (स्वराष्ट्रीय) एवं विदेशी (परराष्ट्रीय) दोनों प्रकार के शब्द आ जाते हैं फिर विदेशी (परराष्ट्रीय) शब्दों को ही 'गृहीत' से संबोधित करना वैज्ञानिक प्रतीत नहीं होता है। डॉ. डबास ने देशी के अस्तित्व को भी अप्रत्यक्ष रूप से स्वीकारा है जहां उन्होंने उक्त मंतव्य में कहा है, “वर्मा, लंका तथा पाकिस्तान की भाषाएं कभी हमारे लिए देशी भाषाएं थीं परंतु अब विदेशी हो चुकी हैं।”

जब तक हम देश शब्द के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करेंगे तब तक 'देश' के आधार पर निर्मित 'देशी' तथा 'विदेशी' वर्गों को स्थान नहीं दिया जा सकता है।

'देशी' शब्दों से मेरा अभिप्राय किसी राष्ट्रीय या देश की विभिन्न भाषाओं से गृहीत शब्दों से है। अर्थात् हिंदीतर भारत की अन्य भाषाओं से लिए गए शब्द 'देशी' (स्वराष्ट्रीय) के अंतर्गत आते हैं। किंचित डॉ. बाबूराम सक्सेना (सामान्य भाषा विज्ञान—1995, पृ. 173) का भी यही मत है, “प्रत्येक भाषा अपनी समकालीन देशी-विदेशी भाषाओं से शब्द लेती है। हिंदी ने बंगला से उपन्यास, गल्प आदि और मराठी से चलतू, टिकाऊ, बाजारू आदि शब्द लिए हैं। पर किसी

भी संपन्न भाषा में इसके अतिरिक्त भी शब्द रहते हैं जो तत्संबंधी प्राचीन भाषाओं से लिए जाते हैं। अंग्रेजी, जर्मन आदि भाषाएं इस प्रकार ग्रीक, लेटिन से शब्द लेती आई हैं और बंगाली, गुजराती, मराठी, हिंदी आदि संस्कृत से। इसमें कोई अस्वाभाविकता नहीं।”

अन्य अनेक विद्वानों ने भी वर्गीकरण के अंतर्गत देशी वर्ग माना है किंतु देशी से इनका अभिप्राय ‘देशज’ शब्दों से है। जिनमें डॉ. सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, एवं डॉ. चंद्रप्रकाश त्यागी के नाम प्रमुख हैं। डॉ. त्यागी ने ‘देशी शब्दों का भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन’ नामक शोध ग्रंथ पर काशी हिंदू विश्वविद्यालय से पी-एच. डी. की उपाधि प्राप्त की है।

3.4.13 विदेशी (परराष्ट्रीय)

विदेशी शब्दों के अध्ययन के प्रारंभ से ही प्रायः सभी विद्वानों ने किसी भाषा में अन्य देश की भाषाओं से आगत शब्दों को ‘विदेशी’ की संज्ञा दी है। कुछ ऐसे भी हैं जिन्होंने ऐसे शब्दों को ‘म्लेच्छ’ शब्द से अभिहित किया है जो किसी भी प्रकार औचित्यपूर्ण या वैज्ञानिक प्रतीत नहीं होता है। किंचित उस देश विशेष या जाति के प्रति घृणा भाव की अव्यक्ति हेतु ही ऐसा किया गया है। इसलिए ‘विदेशी’ के स्थान पर ‘परराष्ट्रीय’ शब्द का प्रयोग कर घृणा की भावना का परिष्कार किया जाना चाहिए। ऐसा मेरा मत है।

डॉ. भोलानाथ तिवारी ऐसे शब्दों को ‘गृहीत’ या ‘आगत’ की संज्ञा देना श्रेयस्कर समझते हैं। डॉ. तिवारी के मत को स्वीकार करते हुए डॉ. पूर्णसिंह डबास ने भी ‘गृहीत’ शब्द को अधिक वैज्ञानिक माना है किंतु उसमें देशी और विदेशी दोनों को समाहित कर लिया है। ऐसा कर लेने पर दोनों वर्गों को एक वर्ग मानकर गृहीत या आगत नाम दिया जाय तो इसकी वैज्ञानिकता में वृद्धि हो जाएगी।

परंपरागत—किसी भी भाषा के शब्द-समूह में अधिकांश शब्द भाषा के अपने रहते हैं जो उसमें पूर्ववर्ती भाषा के क्रमिक विकास के फलस्वरूप आते हैं। यह भाषा की स्व संपत्ति होती है जो अस्तित्व में आने पर उसे दाय रूप में प्राप्त होती है।

डॉ. पूर्णसिंह डबास (हिंदी में देशज शब्द—1972, पृ. 43) ने ऐसे शब्दों के विषय में लिखा है, “हिंदी के परंपरागत शब्द वे हैं जो हिंदी को उसके जन्म के समय अपभ्रंश से उत्तराधिकार के रूप में मिले, जैसे—असुर, कूप, कदली, बाण, गंगा, कला, मोची, ठठेरा, कलंक, भूमि, रजक, रथ, गला, गांठ, रतन, मनियार आदि।”

परंपरागत शब्द हिंदी में संस्कृत, पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश के माध्यम से आए हैं। पहले भाषावैज्ञानिक ऐसे शब्दों को दो वर्गों में विभक्त करते थे—तत्सम एवं तद्भव।

संस्कृत से मूल रूप में आए शब्दों को ‘तत्सम’ तथा संस्कृत से पालि, प्राकृत एवं अपभ्रंश में विकसित होते हुए आने वाले विकृत शब्दों को ‘तद्भव’ कहा जाता था किंतु ऐसा कहना औचित्यपूर्ण नहीं क्योंकि किसी भी भाषा से आगत शब्दों को तत्सम एवं तद्भव दो उपवर्गों में विभक्त किया जाने लगा है।

उद्गम स्रोत की दृष्टि से डॉ. पूर्णसिंह डबास (हिंदी में देशज शब्द—1972, पृ. 44) ने परंपरागत शब्दों को दो वर्गों में विभक्त किया है—

“(क) संस्कृत परंपरा, (ख) संस्कृतेतर परंपरा।”

(क) संस्कृत परंपरा—इन शब्दों का संबंध मूलतः संस्कृत शब्दों से है जो अपने मूल रूप में अथवा पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश से होते हुए हिंदी में आए हैं। संस्कृत से हिंदी तक आते-आते इनमें से अनेक विकृत या विकसित हो गए हैं, किंतु कुछ अपने मूल रूप को सुरक्षित रखते हुए भी हिंदी तक आ पहुंचे हैं अर्थात् कुछ तत्सम हैं तो कुछ तद्भव।

(ख) संस्कृतेतर परंपरा—इस परंपरा के शब्दों से अभिप्राय उन शब्दों से है जो हिंदी में आए तो हैं संस्कृत, पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश के माध्यम से ही परंतु वे मूलतः इन भाषाओं के हैं नहीं। ये शब्द अत्यंत प्राचीन काल में ही संस्कृत में ग्रहण कर लिए गए थे। उदाहरण के लिए संस्कृत से हिंदी में आए—‘असुर’ तथा ‘मन’ (= चालीस सेर) असीरियन हैं तो कफ, कूप, शलाका, फिनोउमिक हैं। इसी प्रकार कदली, बाण, तांबूल, पिनाक, गंगा, लिंग आदि यूनानी हैं और तुरष्क, खच्चर आदि तुर्की हैं। मध्यकालीन भाषाओं में भी संस्कृतेतर परंपरा से शब्द ग्रहण किए जाते रहे। उदाहरण के लिए हि. ‘मोची’ के प्रा. रूप ‘मोचिआ’ का उद्गम पहलवी भाषा के शब्द ‘भोचक’ (= घुटने तक का जूता) से हुआ है तथा हिंदी के ‘ठाठी’ या ‘ठाठी’ (= थाली) एवं ‘ठठेरा’ के जनक प्रा. ‘ठठार’ का संबंध फा. ‘तशत’ से है। इसी प्रकार हि. एवं प्रा. के टसर (वस्त्र-विशेष) का आगमन चीनी भाषा से हुआ है।

उपर्युक्त मत का अधिकांश डॉ. भोलानाथ तिवारी (भाषा-विज्ञान—1972, पृ. 646) के उद्धरण रूप में भी प्रस्तुत किया गया है। इस तथ्य की ओर डॉ. डबास ने ध्यान नहीं दिया है कि डॉ. भोलानाथ तिवारी ने ऐसे शब्दों को तत्सम शब्दों के अंतर्गत लिया है।

डॉ. भोलानाथ तिवारी (हिंदी-भाषा—1972, पृ. 645) ने परंपरागत शब्दों की परिभाषा इस प्रकार दी है, “जो उस भाषा को पूर्ववर्ती भाषा से निकलने के समय मिलते हैं। उदाहरणार्थ हिंदी के परंपरागत शब्द वे हैं, जो उसे अपभ्रंश से उसके जन्म के समय मिले।”

उद्गम स्रोत की दृष्टि डॉ. तिवारी के परंपरागत शब्दों का कोई वर्गीकरण नहीं किया है।

3.4.1.4. नवनिर्मित

इस वर्ग के अंतर्गत वे शब्द आते हैं जिनका संबंध न परंपरागत शब्दों से होता है न देश-विदेश से मूलतः होते हैं अपितु आवश्यकतानुसार इनका निर्माण हो जाता है या निर्मित कर लिए जाते हैं।

डॉ. देवेन्द्र नाथ शर्मा (हिंदी भाषा और नागरी लिपि—1994, पृ. 61) ने हिंदी तत्सम शब्दों को दो वर्गों में विभक्त किया है—

1. परंपरागत (परंपरागत)

2. नवनिर्मित

नवनिर्मित शब्दों के विषय में उनका (हिंदी भाषा और नागरी लिपि, 1994, पृ. 61) मत है—

“नवनिर्मित शब्द वे हैं जो वैज्ञानिक, तकनीकी, शैक्षिक, प्रशासनिक आदि आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए स्वतंत्र रूप में या अंग्रेजी शब्दों के पर्याय के रूप में गढ़े गए हैं, जैसे—रजिस्ट्रार—पंजीकार, रजिस्ट्रेशन—पंजीयन, रजिस्टर्ड—पंजीयित।”

इसी प्रकार के अन्य शब्द—ट्रैवेडी—त्रासद, कैमेडी—कामदी, टैजिक—कामद आदि अंग्रेजी शब्दों को आधार मानकर बनाए गए शब्द हैं।

संस्कृत को आधार मानकर निर्मित शब्दों में—शाप—श्राप, पण-प्रण, क्षत्रचारी—क्षत्राणी, सिञ्चन—सिंचन, जाम—जागरित, अभिलाषा—, मन-कामना—मनोकामना आदि हैं। जिन्हें कुछ विद्वानों ने तत्समाभास के अंतर्गत रखने का सुझाव दिया है। वास्तव में ये सभी नवनिर्मित तत्सम शब्द हैं जो परंपरागत नहीं आए हैं।

डॉ. भोलानाथ तिवारी (हिंदी-भाषा, 1972, पृ. 645) ने शब्द के दो प्रकार परंपरागत एवं नवीन माने हैं। नवनिर्मित को नवीन का एक भेद माना है। डॉ. तिवारी का मत द्रष्टव्य है—

“नवनिर्मित—इसके कई भेद हो सकते हैं, जैसे दो या अधिक शब्दों के योग (जैसे रेतगाड़ी, मालगाड़ी) से, उपसर्ग प्रत्यय आदि जोड़कर, या ध्वनि (पड़पड़ाना) एवं दृश्य (बगबग, चमचम) आदि के आधार पर नए बनाए जाने वाले शब्द।”

डॉ. पूर्णसिंह डबास (हिंदी में देशज शब्द—1972, पृ. 44) ने भी प्रायः डॉ. तिवारी का ही वर्गीकरण स्वीकार किया है नवीन को इन्होंने नवागत की संज्ञा से अभिहित करना अधिक श्रेयस्कर समझा है। इसकी परिभाषा देते हुए कहते हैं, “नवनिर्मित वे शब्द हैं जो नये अर्थों की अभिव्यक्ति के लिए अनेक आधारों पर हिंदी-युग में बनाए गए हैं। इनके भी निम्न प्रमुख भेद किए जा सकते हैं—

(अ) परंपरागत प्राचीन शब्दों के आधार पर निर्मित शब्द।

(आ) गृहीत शब्दों के आधार पर निर्मित शब्द।

(इ) ध्वनि अनुकरण के आधार पर निर्मित शब्द।”

वर्गीकरण के आधार

विद्वानों द्वारा वर्गीकृत शब्दों के विभिन्न वर्गीकरणों की विवेचना से इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि शब्द-समूह के वर्गीकरण के अनेक आधार हैं जिनके अनुसार किसी भाषा के शब्द-समूह को अनेक वर्गों में विभाजित किया जा सकता है जिनमें से कुछ प्रमुख आधार एवं उन पर आधारित वर्गीकरण निम्नलिखित हैं—

(क) इतिहास—तत्सम, तद्भव, देशज, देशी, विदेशी, अनुकरणात्मक।

(ख) रचना—(1) रूढ़ि, यौगिक, योगरूढ़।

(2) समस्त शब्द पुनरुक्त शब्द, अनुवाद युग्म शब्द।

(ग) प्रयोग—(1) सामान्य, अर्द्धपारिभाषिक, पारिभाषिक।

(2) साहित्यिक, बोलचाल।

(3) श्लील, अल्पश्लील, अश्लील।

(4) प्रयुक्त, अल्पप्रयुक्त, अप्रयुक्त।

(5) सर्वश्रेणीय, प्रांतीय।

(6) बहुप्रचलित, प्रचलित, अल्पप्रचलित, अप्रचलित।

(7) लौकिक, वैदिक।

(8) सुवन्त, तिङन्त, अव्यय।

(घ) अर्थ (1) सार्थक, निरर्थक, एकार्थी, अनेकार्थी।

(2) वाचक, लक्षक, व्यंजक।

(3) नवनिर्मित, व्याकुंचित, संकुंचित या परिवर्तित।

(4) लाक्षणिक, आलंकारिक।

(5) सरल, अल्पक्लिष्ट, क्लिष्ट।

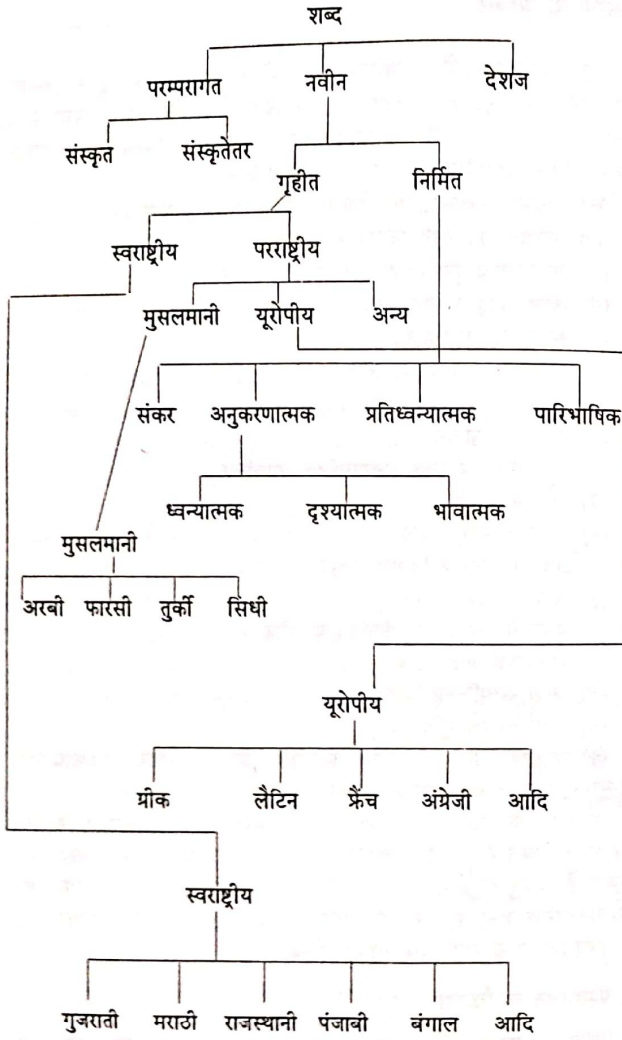
(6) सूक्ष्म—स्थूल, मूर्ति—अमूर्त।

(ङ) व्याकरण—संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया, अव्यय, क्रियाविशेषण, संबंध-सूचक, समुच्चबोधक, विस्मयादिबोधक।

वर्गीकरण के उक्त आधारों के अतिरिक्त शब्द-समूह के वर्गीकरण के अन्य आधार भी हो सकते हैं तथा इन्हीं आधारों पर इनसे भी अधिक वर्गों का निर्माण किया जा सकता है। किंतु इन सभी आधारों में ऐतिहासिक आधार ही प्रमुख है। हमारा मूल विषय ऐतिहासिक शब्द वर्गों तक ही सीमित है। इसलिए ऐतिहासिक वर्गीकरण एवं उसकी विवेचना पर ही प्रस्तुत ग्रंथ आधारित होना।

3.5. प्रस्तावित वर्गीकरण

उक्त विवेचन के पश्चात् हिंदी शब्द-समूह का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है—



पुनः इनके तत्सम एवं तद्भव उपभेद किए जा सकते हैं क्योंकि प्रत्येक भाषा के

शब्दों को इन उपवर्गों में विभक्त किया जा सकता है। तत्सम के भी दो वर्ग किए जा सकते हैं—

1. परंपरागत प्राप्त।
2. नवनिर्मित।

1. परंपरागत

हिंदी के परंपरागत शब्द वे हैं जो हिंदी को उसके जन्म के समय अपभ्रंश से उत्तराधिकार स्वरूप प्राप्त हुए। ये शब्द मूलतः संस्कृत के हैं जो पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश के माध्यम से हिंदी को प्राप्त हुए। कुछ शब्द अपने मूल रूप में तथा कुछ विकृत रूप में हिंदी को मिले। प्रथम प्रकार के तत्सम तथा दूसरे तद्भव कहलाए।

प्राचीन काल में ही संस्कृत भाषा में अवकादी, असीरियन, फिनो, ठगिक तथा आस्ट्रिक आदि भाषाओं के अनेक शब्द अपना स्थान बना चुके थे। ये शब्द संस्कृत के मूल शब्द न होकर भी मूल जैसे प्रतीत होते हैं। ऐसे शब्द भी परंपरागत के ही अंतर्गत आते हैं क्योंकि ये अपनी मूल भाषाओं से सीधे हिंदी में न आकर संस्कृत के माध्यम से हिंदी में आए हैं। ये शब्द संस्कृत, पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश के नहीं हैं। इस दृष्टि से उद्गम स्रोत की प्रधानता को लक्ष्य करके परंपरागत शब्दों को निम्न दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है—

(क) संस्कृत परंपरा।

(ख) संस्कृतेतर परंपरा।

2. नवीन

ये ऐसे शब्द हैं जो हिंदी के अस्तित्व में आ जाने के पश्चात् विभिन्न भाषाओं से हिंदी में आए हैं अथवा इनका निर्माण स्वतः हो गया है या निर्मित किए गए हैं। इस प्रकार इसको दो उपवर्गों में विभक्त किया जा सकता है—

(क) गृहीत—हिंदी के अतिरिक्त देश-विदेश की भाषाओं से ग्रहण किए गए शब्दों को इसके अंतर्गत रखा जा सकता है। ऐसे शब्दों को आगत या नवागत भी कहा जा सकता है पुनः स्वराष्ट्रागत एवं परराष्ट्रागत दो भेद किए जा सकते हैं—

(i) स्वराष्ट्रीय—ये वे शब्द हैं जो स्वराष्ट्रीय विभिन्न भाषाओं से हिंदी में ले लिए गए हैं, जैसे हड़ताल, गल्प, ठाट, सालू, कुड़माई, पंतुआ, सांभर, दोसा, इजली, आदि।

(ii) परराष्ट्रीय—राष्ट्र के बाहर अर्थात् परराष्ट्रीय भाषाओं से जो शब्द हिंदी भाषा में आए हैं उन्हें इसके अंतर्गत रखा जा सकता है; जैसे तौलिया, कोट, बटन, बम, कैची, चिक, कागज़, हरामखोर, दाम आदि।

(ख) निर्मित—निर्मित शब्द वे शब्द हैं जो भावाभिव्यक्ति अर्थात् अर्थ की स्पष्टता हेतु हिंदी युग में विभिन्न आधारों पर बनाए गए हैं; यथा—संकर, अनुकरणात्मक, प्रतिध्वनित तथा पारिभाषिक आदि।

3. देशज

जिन शब्दों की व्युत्पत्ति ज्ञात नहीं होती है उन्हें देशज वर्ग में रखा जा सकता है। इस दृष्टि से ऐसे शब्दों को अज्ञातव्युत्पत्तिक भी कहा जा सकता है। इस प्रकार के शब्द परंपरागत एवं नवीन वर्ग से संबंधित नहीं होते हैं। इसके अतिरिक्त अनुकरणात्मक वर्ग में भी नहीं रखे जा सकते हैं क्योंकि अनुकरणात्मक शब्दों का किसी-न-किसी आधार से संबंध अवश्य होता है, किंतु देशज शब्दों का कोई भी आधार नहीं होता है। इनके विशेष अध्ययन में इनको भाव किसी स्थान या देश से जोड़ा जा सकता है। किसी देश अथवा स्थान में भावाभिव्यक्ति इनका हेतु प्रयोग कब से किसके द्वारा चल पड़ा? निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता है। कुछ भाषाविदों ने देशज को निर्मित का एक उपवर्ग माना है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि इनका निर्माण/उत्पत्ति हिंदी युग में हुई। किंतु यह निश्चित नहीं है। अनेक देशज शब्द प्राचीन भी हो सकते हैं, नवीन भी। किंतु निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है कि नवीन ही हैं इसलिए इस वर्ग को नवीन का उपवर्ग न मानकर स्वतंत्र बनाया है।

शब्द-समूह

शब्द-समूह का अभिप्राय किसी व्यक्ति, कृति अर्थात् भाषा के निश्चित समय के उस भंडार से है जो इस व्यक्ति विशेष ने अपने जीवन काल में उच्चरित किया है अथवा लिपिबद्ध किया है। अर्थात् किसी व्यक्ति का शब्द भण्डार ही उस व्यक्ति विशेष का शब्द-समूह कहलाता है जैसे तुलसी शब्द सागर, मीरां शब्द कोश या कबीर आदि कहने से तुलसी, मीरां अथवा कबीर के शब्द-समूह का ज्ञान होता है।

इसी प्रकार किसी पुस्तक के शब्द-समूह का यह अर्थ हुआ कि उसमें कितने शब्दों का प्रयोग किया गया है। ऐसे ही किसी भाषा में किसी निश्चित अवधि अथवा आदि से अंत तक प्रयुक्त शब्दों को ही उस भाषा के उस काल अथवा उस भाषा का शब्द-समूह कहा जाता है। यथा आदिकालीन शब्द-समूह, भक्तिकालीन शब्द-समूह, रीतिकालीन शब्द-समूह अथवा आधुनिककालीन शब्द-समूह का यह अभिप्राय हुआ कि हिंदी-साहित्य में आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल या आधुनिककाल में कितने शब्दों को साहित्य में स्थान मिला। इस प्रकार सभी कालों के शब्द-समूह को हिंदी शब्द-समूह को संज्ञा दी जा सकती है।

शब्द-समूह में व्यक्ति का शब्द-समूह सर्वप्रथम हमारे समक्ष आता है। जीवित व्यक्तियों के शब्द-समूह का अध्ययन पूर्ण संभव है। उनके द्वारा यदि कुछ साहित्य आदि लिपिबद्ध किया गया है तो उसमें प्रयुक्त शब्दों पर विचार किया जाता है। अथवा उनके साथ बैठकर उच्चरित शब्दों को अंकित कर उनका अध्ययन किया जाता है।

मृत व्यक्तियों के शब्द-समूह का अध्ययन ऐसी अवस्था में ही किया जा सकता है जब उनका लिखित साहित्य उपलब्ध हो; यथा—तुलसी, जायसी, मंझन आदि का साहित्य। इसके अतिरिक्त ऐसे साहित्यकारों के साहित्य के आधार पर उनके शब्द-समूह का भी अध्ययन किया जा सकता है जिन्होंने अपने साहित्य को स्वयं लिपिबद्ध नहीं किया अपितु अपनी भावाभिव्यक्ति करते रहे हैं तथा उनके अनुयायियों ने उनका संकलन किया तथा वह संकलन प्राप्य है। ऐसे साहित्यकारों में कबीर का स्थान प्रमुख

है। उनकी ग्रंथावली अथवा बीजक प्राप्त है जिसके आधार पर कबीर शब्द-समूह का अध्ययन आसानी से किया जाता है। किंतु इसके विपरीत जिन व्यक्तियों का साहित्य अप्राप्य है तथा वे स्वर्गवासी हो गए हैं ऐसे व्यक्तियों के शब्द-समूह का अध्ययन किया जाता है।

शब्द-समूह का अध्ययन करने के लिए सर्वप्रथम शब्दानुक्रमणिका तैयार की जाती है। रचना में प्रयुक्त संपूर्ण शब्दों की वर्णक्रमानुसार सूची को ही शब्दानुक्रमणिका की संज्ञा दी जाती है। इसमें शब्दों के विषय में यह संकेत रहता है कि शब्द विशेष साहित्य में किस स्थान पर प्रयुक्त हुआ है? शब्दानुक्रमणिका में न केवल संपूर्ण शब्द की संकलित होती है अपितु उनके प्रयोग-संदर्भ भी रहते हैं। अर्थात् प्रत्येक शब्द के साथ-साथ यह भी संकेतित होता है कि कौन शब्द कितने संदर्भ में कहाँ-कहाँ प्रयुक्त हुआ है।

शब्द-समूह के अध्ययनार्थ शब्दानुक्रमणी से पूर्व कृति का वैज्ञानिक पद्धति से पाठ भी निर्धारित करना अत्यावश्यक है। यह समस्या जीवित साहित्यकारों के शब्द-समूह के अध्ययन के समय उनता उग्र रूप नहीं धारण करती है जितना कि दिवंगत साहित्यकारों के अध्ययन के समय उग्र रूप धारण कर लेती है क्योंकि उनकी एक से अधिक पांडुलिपियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। इस प्रकार प्राप्त सभी पांडुलिपियों का अध्ययन कर तुलना के आधार पर पाठ निर्धारण करना पड़ता है जैसा कि डॉ. पारसनाथ तिवारी ने अनेक पांडुलिपियों के गहन अध्ययन के पश्चात् अपने शोध-प्रबंध के रूप में कबीर ग्रंथावली का संपादन किया। यदि कृति की एक ही पांडुलिपि प्राप्त हो और उसका अध्ययन करने पर उसमें कभी दृष्टिगोचर हो तो उसका भी संशोधन अति आवश्यक होता है। यह संशोधन या पाठ निर्धारण उसी भाषा और उसी धारा के तत्कालीन साहित्यकार की रचना आदि के आधार पर किया जाता है। इस प्रकार प्राचीन साहित्यकार के साहित्य के पाठ का निर्धारण पूर्ण सतर्कता तथा वैज्ञानिकता से किया जाना चाहिए।

आधुनिक साहित्यकारों की शब्दानुक्रमणी तैयार करने में उतनी कठिनाइयाँ नहीं आती हैं जितनी कि पुराने साहित्यकारों की। इस कार्य हेतु पूर्ण सतर्कता अपेक्षित है। सामान्यतः एक ही पाठ के विभिन्न संस्करणों के रूप में भी भिन्नता होती है। विभिन्न मुद्रणों में एकरूपता का न होना अनुक्रमणी बनाते समय सम्मुख आने वाली प्रमुख समस्या है। इस समस्या के समाधान हेतु अनुक्रमणी बनाने से पूर्व एक बार अध्ययन करना आवश्यक होता है। यदि ऐसा न किया जाय तो मुद्रण की अनेक रूपता अनुक्रमणिका में अनेक त्रुटियों का ऐसा मूल स्रोत बन जाती है कि उनका निराकरण करना या संशोधन करना अत्यंत कठिन हो जाता है। उदाहरणार्थ किसी रचना के एक स्थान पर 'जिसने' मुद्रित है तो दूसरे स्थान पर 'जिस ने'। इस प्रकार 'ने' के दोनों संदर्भों का पता चलना कठिन होगा। इसी प्रकार यदि मुद्रण में कहीं 'होनेवाला' एक शब्द के

रूप में कहीं 'होने वाला' दो शब्द के रूप में मुद्रित हो और अनुक्रमणिका में भी इसी प्रकार एक स्थान पर 'होनेवाला' एक शब्द मानकर रखा जाय तथा दूसरे स्थान पर 'होने' एवं 'वाला' दो शब्द रूप में दूसरे स्थान पर रखा जाय तो अनुक्रमणिका दोषपूर्ण हो जाएगी। ऐसी अवस्था में 'वाला' के अध्ययन से 'होनेवाला' में 'वाला' का संदर्भ तो तुरंत मिल जाएगा, किंतु 'होनेवाला' जहाँ एक शब्द के रूप में प्रयुक्त है वहाँ 'वाला' एक संदर्भ में मिलना टेढ़ी खीर हो जाएगा।

भाषा विशेष की विशेष पद्धति के परिणामस्वरूप ही त्रुटि आ जाती है। हिंदी-साहित्य में संज्ञा के साथ कारक-चिह्नों को अलग लिखा जाता है, उदाहरणार्थ 'ने' को, आशुतोष ने, निर्मल ने आदि। किंतु सर्वनाम के साथ कारक-चिह्न को मिलकर लिखा जाता है; यथा 'तुमने, उसको, मैंने, उससे आदि। यदि उपर्युक्त लेखन पद्धति के आधार पर ही शब्द अनुक्रमणी बनायी जाय तो संज्ञा के साथ आने वाले कारक चिह्नों को अनुक्रमणी में निश्चितरूपेण स्वतंत्र स्थान मिल जाएगा; किंतु सर्वनाम के साथ आने वाले कारक चिह्न को स्थान नहीं मिल जाएगा। यदि कारक को शब्दानुक्रमणी में स्थान मिल जाएगा तो उनके संदर्भ की बात ही समाप्त हो जाएगी जिसका होना कहीं-कहीं पर अत्यावश्यक होता है।

इस त्रुटि से बचने के लिए संज्ञा के साथ आने वाले चिह्नों को यथावत् स्थान दें तथा सर्वनाम के साथ आने वाले कारक चिह्नों को सर्वनाम के साथ के अतिरिक्त संदर्भ मिल सके इसलिए अलग भी अंकित करते जाएँ। यथा 'उसने' को सर्वनाम के साथ रखें साथ ही 'उसने' का 'ने' कारक चिह्न अलग भी अंकित करें।

सामाजिक पदों के विषय में भी यही पद्धति अपनाने से त्रुटि से बचा जा सकता है। उदाहरणार्थ—कृष्णावतार यदि साहित्य में आए और अनुक्रमणिका में रखना पड़े तो सामाजिक रूप को तो रखे ही साथ ही उसमें प्रयुक्त अवतार स्वतंत्र रूप को अलग भी रखें। इस प्रकार अंकित करने के साथ-साथ समास के या संधि के द्वितीय पद होने का भी संकेत किया जाना आवश्यक होता है; यथा—अवतार।

हिंदी के समान ही अन्य भाषाओं के अलग-अलग विषय बनाए जा सकते हैं। अनुक्रमणिका बनाने के लिए सभी भाषाओं के लिए सामान्य रूप से यह ध्यान रखना चाहिए कि लघुतम इकाई को स्थान देना चाहिए। यहां तक कि शब्द के साथ उपसर्ग, प्रत्यय तथा मध्यसर्ग आदि को अनुक्रमणिका में स्थान देना चाहिए। इस प्रकार स्वतंत्र मूल शब्दों के साथ उपसर्ग तथा प्रत्यय आदि को स्थान मिलने पर भाषावैज्ञानिक अध्ययन में विशेष सहायता मिलती है। इससे किसी विशेष कृति या रचना, साहित्यकार के साहित्य, सीमित समय के साहित्य, या समग्र साहित्य के कारक चिह्नों, उपसर्गों या प्रत्यय आदि के भाषावैज्ञानिक अध्ययन में विशेष सहायता मिलेगी।

पुस्तक नाम आदि लंबा है तो अनुक्रमणिका बनाने के पूर्व उसे संक्षिप्त कर

लेना चाहिए। उदाहरणार्थ यदि गोस्वामी तुलसीदास के श्रीरामचरित मानस की शब्दानुक्रमणिका बनाना हो तो पुस्तक का संक्षिप्त नाम 'मा.' या 'राम.' रखा जा सकता है। जिस कृति या पुस्तक की अनुक्रमणिका बनाए इसके संस्करण अथवा सन् या संवत् का उल्लेख प्रारंभ में ही कर देना आवश्यक होता है। विभिन्न संस्करणों में संशोधन के साथ कुछ-न-कुछ परिवर्तन होता ही है और इसके अतिरिक्त पंक्तियों तथा पृष्ठ-संख्या में परिवर्तन होना सामान्य बात है। इस प्रकार यदि संस्करण का उल्लेख नहीं किया जाएगा तो अनुक्रमणिका के अनुसार शब्दों का संदर्भ नहीं मिल सकेगा। अनुक्रमणिका पूर्ण होते हुए भी यदि यह त्रुटि आ गई तो उसका सदुपयोग होना अत्यंत कठिन हो जाएगा। साहित्य के पदवर्ग के प्रबंध-काव्य की अनुक्रमणिका बनाते समय अध्याय तथा छंद संख्या के आधार पर संदर्भ मिल जाता है। मुक्तक काव्य में छंद संख्या के साथ पंक्ति होने पर आसानी होती है। गद्य काव्यों में अध्याय तथा पृष्ठ संख्या से काम चलाया जा सकता है। अध्याय तथा पृष्ठ के साथ पंक्ति संख्या लिखने से कार्य बहुत आसान हो जाता है। जैसे यदि अध्याय न भी दें तो पृष्ठ तथा पंक्ति संख्या से संदर्भ ढूंढने में कठिनाई नहीं होती है।

किसी साहित्यकार के संपूर्ण साहित्य की शब्द-अनुक्रमणिका को उसका शब्द-समूह कहा जा सकता है किंतु इस कथन में आंशिक सत्यता ही विद्यमान है क्योंकि किसी भी व्यक्ति के शब्द-समूह का प्रत्येक शब्द उसके साहित्य में स्थान नहीं प्राप्त कर पाता है।

डॉ. भोलानाथ तिवारी (शब्दों का अध्ययन—1969, पृ. 151) ने कुछ साहित्यकारों द्वारा प्रयुक्त शब्दों की संख्या निम्नलिखित बतलायी है—

“होमर के ग्रंथों में लगभग 9000, मिल्टन में लगभग 8000, शेक्सपियर में लगभग 15000 तथा तुलसीदास में लगभग 16000 शब्दों का प्रयोग हुआ है, किंतु इसका यह आशय नहीं कि न साहित्यकारों का पूरा शब्द-भंडार केवल यही था। इसका अर्थ यह हुआ कि किसी साहित्य के द्वारा केवल उसके द्वारा प्रयुक्त शब्द-समूह का ही पता चल सकता है, उसके पूरे शब्द-भंडार का नहीं।”

प्राचीन या दिवंगत साहित्यकारों के शब्दों की संख्या का वास्तविक ज्ञान नहीं हो पाता है, केवल मान लिया जाता है। साहित्यकार आजीवन अपने साहित्य में लिपिबद्ध शब्दों की अपेक्षा अधिक शब्दों का प्रयोग करता है किंतु विवशता यह होती है कि किसी साहित्यकार का शब्द भंडार उस साहित्यकार के साहित्य में प्रयुक्त शब्द-भंडार से ही जाना जा सकता है। उसका पूर्ण शब्द ज्ञान प्राप्त कर सकना संभव नहीं होता है। इस प्रकार के शब्द-भंडार के लिए लिखित साहित्य को ही आधारस्वरूप ग्रहण करना पड़ता है। लिखित साहित्य का शब्द-संकलन अति दुरूह एवं कष्टसाध्य कार्य है जिसे अतीव मनोयोग एवं सतर्कता से करना अपेक्षित होता है। इसकी तुलना में व्यक्ति विशेष या

विशिष्ट समुदाय के उच्चरित शब्दों को सुनकर उनका संकलन तैयार कर अध्ययन करना अपेक्षाकृत अधिक कठिन एवं दुःसाध्य है। उच्चरित शब्द-समूह संकलन चाहे कितना ही कठिन क्यों न हो किंतु इसका अपना विशिष्ट महत्व होता है। कृषक, मजदूर आदि अशिक्षित व्यक्तियों (जिनका कोई भी साहित्य नहीं होता है) की भाषा के शब्द-समूह का अध्ययन इसी प्रणाली से किया जाता है। सर्वप्रथम अलिखित सामग्री का कठिन एवं सूक्ष्म वैज्ञानिक अध्ययन किया जाना आवश्यक होता है। क्योंकि शब्द-संकलन के साथ उसकी ध्वनियों, उनका वाक्यगत प्रयोग, उनके उच्चारण में आने वाले बलाघात आदि तथ्य भी सम्मुख आते हैं। जबकि लिखित साहित्य में भाषा के ये विभिन्न स्वरूप उतने स्पष्ट नहीं होते हैं जिनसे कि व्यक्ति विशेष द्वारा उच्चरित होने पर स्पष्ट हो जाते हैं। शब्दों के सर्वांगीण अध्ययन हेतु दत्तचित्ता की अतीव आवश्यकता होती है। इस प्रकार एक या अनेक व्यक्तियों की बोली के शब्द संकलन विधि को 'सर्वेक्षण पद्धति' कहते हैं।

4.1. शब्द-समूह के प्रकार

किसी व्यक्ति विशेष के शब्द-समूह को उसके प्रयोग अथवा क्रियाशीलता के आधार पर मुख्य रूप से दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है—

4.1.1. सक्रिय

व्यक्ति अपनी प्रतिदिन की अभिव्यक्ति में जिन शब्दों का प्रयोग करता है उन्हें सक्रिय शब्द-समूह कहा जाता है। इस प्रकार के शब्दों के प्रयोग की बारंबारता बहुत अधिक होती है। कभी-कभी तो व्यक्ति विशेष का ही शब्द का इतना अधिक प्रयोग करता है कि प्रायः दो-चार वाक्य के पश्चात् वह शब्द उसकी बोली में निश्चित रूप से आ जाता है जिसे उसका 'तकिया कलाम' कहा जाता है। पुलिस वालों की बोली में गाली के लिए प्रयुक्त शब्द इसी प्रकार के हैं जिन्हें अति सक्रिय की कोटि में रखा जा सकता है। प्रयोगानुसार इन शब्दों को पुनः तीन उपवर्गों में विभक्त किया जा सकता है—

- (i) बहुसक्रिय।
- (ii) सक्रिय।
- (iii) अल्पसक्रिय।

इससे भी अधिक वर्ग बनाए जा सकते हैं किंतु इनकी उपादेयता नहीं है।

4.1.2. निष्क्रिय

सक्रिय शब्दों के अतिरिक्त व्यक्ति के शब्द भंडार में अनेक ऐसे शब्द होते हैं जिनकी क्रियाशीलता संदिग्ध होती है। ऐसे शब्दों का उसे ज्ञान मात्र होता है किंतु उनका

उपयोग वह नहीं करता है। पढ़ने या सुनने में ही ऐसे शब्दों का प्रयोग होता है। किसी व्यक्ति के ऐसे शब्द-भंडार को निष्क्रिय शब्द समूह की संज्ञा दी जाती है। ऐसे शब्दों का प्रयोग व्यक्ति की अपनी अभिव्यक्ति में प्रयोग प्रायः न के बराबर होता है। सक्रिय शब्दों की भांति इस निष्क्रिय को जाने वाले शब्दों के भी तीन उपभेद किए जा सकते हैं—

- (i) बहुनिष्क्रिय।
- (ii) निष्क्रिय।
- (iii) अल्पनिष्क्रिय।

ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि सक्रिय शब्द समूह का प्रतिशत निष्क्रिय की अपेक्षा पर्याप्त कम है दोनों में प्रायः 1, 2 का अनुपात दृष्टिगोचर होता है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि व्यक्ति अपने शब्द भंडार के अल्प भाग का प्रयोग अभिव्यक्ति के लिए करता है। उसका अधिकांश दूसरों के समझने में ही प्रयुक्त होता है या उसके मस्तिष्क की ही शोभा में अभिवृद्धि करता रहता है।

शब्द-समूह का यह प्रतिशत सभी व्यक्तियों में एक जैसा न रहकर कम अधिक भी होता है। सामान्य लोगों के शब्द भंडार में सक्रिय शब्द-समूह का प्रतिशत बहुत कम होता है जबकि तकनीकी व्यक्तियों की सक्रिय शब्दावली का प्रतिशत सामान्य लोगों की तुलना में अधिक होता है क्योंकि ऐसे लोग सामान्य लोगों के शब्दों के प्रयोग के अतिरिक्त अपने विषय से संबद्ध तकनीकी शब्दों का भी प्रयोग करते हैं।

डॉ. भोलानाथ तिवारी (शब्दों का अध्ययन—1969, पृ. 152) ने शब्द-समूह प्रतिशत निम्न प्रकार दिया है—

शब्द-समूह

सक्रिय—35 प्रतिशत

निष्क्रिय—65 प्रतिशत

बहुसक्रिय सक्रिय अल्पनिष्क्रिय बहुनिष्क्रिय निष्क्रिय अल्प निष्क्रिय

10 प्रतिशत 14 प्रतिशत 11 प्रतिशत 20 प्रतिशत 30 प्रतिशत 15 प्रतिशत

उपर्युक्त विश्लेषण से प्राप्य विभिन्न वर्गों के शब्द-समूह-प्रतिशत से यह स्पष्ट हो जाता है कि मानव सामान्य अभिव्यक्ति हेतु अपने शब्द-समूह के अल्पांश का प्रयोग करता है। उसके शब्द समूह का अधिकांश उसके मस्तिष्क मात्र को अलंकृत करता है जो गुप्त या निष्क्रियावस्था में पड़ा रहता है। प्रत्येक व्यक्ति का यह प्रतिशत समान नहीं होता है अपितु व्यवसायानुसार इसमें पर्याप्त विभिन्नता दृष्टिगोचर होती है। वकील, इंजीनियर, वैज्ञानिक, साहित्यकार, डॉक्टर आदि की अपेक्षा सामान्य व्यक्तियों के सक्रिय शब्दों की संख्या बहुत कम होती है। जबकि सामान्य व्यक्ति की अपेक्षा उपर्युक्त अन्य

व्यक्तियों के सक्रिय शब्द समूह की संख्या अपेक्षाकृत बहुत अधिक होती है। इसका एकमात्र कारण यह है कि ऐसे व्यक्तियों के द्वारा सामान्य शब्दों का प्रयोग तो होता ही है साथ ही तकनीकी शब्दों की एक व्यापक शब्दावली उनके शब्द-समूह को अति विस्तृत बना देती है।

मानव सामान्य अभिव्यक्ति हेतु सक्रिय शब्दों का प्रयोग करता है। प्रश्न यह उठता है कि फिर मानव निष्क्रिय शब्दों का प्रयोग किन परिस्थितियों में करता है? साहित्यकार साहित्य सृजन के समय कभी-कभी ऐसी परिस्थिति में होता है जबकि सामान्य शब्दों से भावाभिव्यक्ति करने में अपने को सक्षम नहीं पाता है या अभीप्सित गहन अथवा गंभीर भावों की अभिव्यक्ति करने में असमर्थ होता है। ऐसी स्थिति में मस्तिष्क में पड़े निष्क्रिय शब्दों द्वारा ही स्वभावतः अपनी भावना को वाणी प्रदान करता है अथवा लिपिबद्ध कर देता है। ऐसी अवस्था लेखक के समक्ष यदाकदा ही जाती है किंतु कविगणों को प्रायः ऐसी अवस्था का निराकरण निष्क्रिय शब्दों से ही करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त जब साहित्यकार साहित्यिक विषय की अपेक्षा वैज्ञानिक या अन्य विषय को अपनाता है ऐसी अवस्था में सामान्य शब्दों के साथ-साथ निष्क्रिय शब्द अनिवार्य रूप से उसकी सृजना में स्थान ग्रहण कर लेते हैं।

आजकल कुछ कवि मुक्त छंदों में अथवा गद्य गीत के रूप में अपनी रचना प्रस्तुत करते हैं जिसमें सामान्य शब्दों का प्रयोग ही अधिक करते हैं, किंतु उन्हें भी यदाकदा निष्क्रिय शब्दों का आश्रय लेना पड़ता है। जबकि पुराने कवि सामान्य रूप से छंदमय रचना करते थे इसलिए उन्हें निष्क्रिय शब्दों का सहयोग अधिक संख्या में लेना पड़ता रहा होगा। इस प्रकार पुराने कवियों के साहित्य के आधार पर उनकी सक्रिय तथा निष्क्रिय शब्दावली का ज्ञान आसानी से प्राप्त किया जा सकता है किंतु सक्रिय एवं निष्क्रिय शब्दों का विवरण प्रस्तुत करना कठिन कार्य है।

आज तक दिवंगत या जीवित किसी भी व्यक्ति के पूरे शब्द-भंडार का पता लगाने में कोई भी पद्धति सफल नहीं हो सकी है। डॉ. भोलानाथ तिवारी (शब्दों का अध्ययन—1969, पृ. 153) इस विषय में एक पद्धति का संकेत करते हुए कहते हैं—

“इसका एक ही तरीका हो सकता है कि उससे शब्द कोश के सारे शब्दों को एक-एक करके पूछा जाय।”

डॉ. तिवारी द्वारा संकेतित पद्धति की सफलता संदिग्ध है क्योंकि हिंदी ही नहीं अपितु विश्व की किसी भी भाषा का पूर्ण शब्द कोश मिलना अति कठिन है। किसी भी जीवित भाषा का कोश पूर्ण नहीं होता है। इसके अतिरिक्त एक-एक करके शब्दों की जानकारी प्राप्त करते समय सक्रिय शब्दों के विषय में सही ज्ञान प्राप्त होगा किंतु निष्क्रिय शब्दों के विषय में लिया गया निर्णय सर्वथा असंदिग्ध नहीं होगा। इसका एकमात्र कारण यह है कि अनेक निष्क्रिय शब्द नवीन वातावरण में समक्ष आ जाते हैं

किंतु सामान्य स्थिति में व्यक्ति उसकी जानकारी देने में समर्थ नहीं होगा। उपर्युक्त तथ्यों के अतिरिक्त अन्य तथ्य भी इसमें बाधक होते हैं; यथा—व्यक्ति का शब्द समूह यथानुसार परिवर्तित होता रहता है। इस पद्धति का सबसे बड़ा दोष यह है कि इसके द्वारा जीवित व्यक्तियों के शब्द-समूह पर ही विचार किया जा सकता है दिवंगत के शब्द-समूह पर नहीं।

किसी भी साहित्यकार के साहित्यगत शब्द-समूह से अवगत होना सरल है, किंतु उसके पूर्ण शब्द-समूह या लघुतम और अधिकतम शब्द-समूह से अवगत होना आसान काम नहीं है।

जैसा कि अभी ऊपर कह आए हैं व्यक्ति के शब्द-भंडार में सदा एकरूपकता नहीं रहती है। वयानुसार अथवा समयानुसार ज्ञान का विस्तार एवं विकास होता रहता है उसी के साथ-साथ शब्द-भंडार भी परिवर्तित होता रहता है। नवजात शिशु को शब्दों का ज्ञान नहीं होता है या यों कहें कि उसका शब्द-भंडार अति सीमित होता है। वह रोकर या हंसकर अपने विचारों की अभिव्यक्ति करता है। इसके पश्चात् कुछ समयोपरान्त कुछ इने-गिने शब्दों—मम, भां, आं, आदि—के द्वारा विचारों की अभिव्यक्ति करता है। ऐसी अवस्था में इन्हीं शब्दों को बच्चे के सक्रिय शब्दों की श्रेणी में रखा जा सकता है। शनैः-शनैः वयानुसार उसका शब्द-भंडार विकसित होता जाता है। निष्क्रिय शब्दों का ज्ञान कहानियों एवं किंवदंतियों से भी होता है। वीर अभिमन्यु ने मातृ-उदर में ही चक्रव्यूह भेदन की कला, कहानी के माध्यम से सुनी थी। वे भाव शब्दों की लड़ियों में गुंथे हुए उसके मस्तिष्क में निष्क्रिय पड़े रहे। शारीरिक विकास के साथ समयागमन पर वीर पिता द्वारा कहे गए एक-एक शब्द जो सुषुप्तावस्था में निष्क्रिय पड़े थे जागृत हो उठे। परिणामस्वरूप अभिमन्यु ने चक्र-व्यूह भेदन का वह कार्य कर दिखाया जिसने उसे सदा-सदा के लिए अमर कर दिया।

ऐसे अनेक अन्य उदाहरण भी दिए जा सकते हैं। सामान्यतया प्रत्येक व्यक्ति के शब्द-भंडार में बचपन से मृत्यु पर्यंत परिवर्तन होता रहता है। इस परिवर्तन का मुख्य कारण ज्ञानवर्द्धन के परिणामस्वरूप नवीन शब्दों का आगमन एवं कुछ शब्दों का लोप होना है। ज्ञानवर्द्धन के साथ शब्द-समूह का विकास जितना ही महत्वपूर्ण है, शब्दागमन की कहानी उतनी ही रोचक है; उदाहरणार्थ—‘बायकाट’ अंग्रेजी का शब्द है। अहिंसा के बल पर महात्मा गांधी ने जब से राष्ट्रीय आंदोलन का प्रारंभ एवं विदेशी का ‘बायकाट’ करने का आह्वान किया तब से भारत की प्रायः सभी भाषाओं में इसका प्रवेश हो गया। क्योंकि गांधी जी की भावना के साथ यह शब्द प्रत्येक भारतीय तक पहुंच गया। आश्चर्य की बात यह है कि विदेशी वस्तुओं तथा अंग्रेजी भाषा का ‘बायकाट’ तो संभव हो गया; किंतु इस शब्द ने सभी भाषाओं में घर कर लिया। शब्द-लोप का भी शब्द-समूह पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। आधुनिक काल में अनेक नवीन संयंत्रों

के आविष्कार के परिणामस्वरूप उनकी स्थानापन्न वस्तुओं और उनके विभिन्न अंगों के लिए प्रयुक्त शब्दों का लोप हो जाता है। इसी प्रकार अनेक आभूषण जिनका उपयोग नहीं होता है उनके लिए प्रयुक्त शब्द लुप्त होते जा रहे हैं; उदाहरणार्थ—रथ, बाजूबंद, झांझ-लच्छा (पर में पहनने का आभूषण) आदि।

प्रत्येक व्यक्ति का शब्द-समूह डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार (शब्दों का अध्ययन—1969, पृ. 153) भिन्न-भिन्न होता है। मजदूर, किसान लगभग 500 से 800 शब्दों के बीच शब्दों का, या कुछ उदाहरणों में तो इससे भी कम का प्रयोग करता है। यह उसका सक्रिय शब्द-भंडार होता है। चर्चिल का शब्द-भंडार 60,000 कहा गया है, जिसमें 30,000 का तो वे प्रयोग करते थे। कोशकारों का शब्द-भंडार सहज ही काफी बड़ा होता है, किंतु उसका बड़ा भाग सच्चे अर्थों में निष्क्रिय रहता है। अच्छे विज्ञानवेत्ता का शब्द-समूह प्रायः 80,000 शब्दों का होता है। अच्छे वकीलों का शब्द-समूह 50,000 से ऊपर होता है।

कृति में प्रयुक्त शब्द-समूह को उस पुस्तक का शब्द-भंडार कहते हैं। ज्यों-ज्यों ‘शब्द-समूह विज्ञान’ का महत्व बढ़ता जा रहा है त्यों-त्यों इसके विभिन्न क्षेत्रों में कार्य होने लगा है। अब किसी कृति के शब्द-समूह का अध्ययन भी किया जाने लगा है। कुछ कृतियों के शब्दों की गणना करके उनके शब्द-भंडार का पता लगाया गया है। ईसाइयों की प्रसिद्ध धर्म पुस्तक की पुरानी प्रति में जबकि लगभग 5642 शब्दों का प्रयोग हुआ है तो उनकी नवीन प्रति में लगभग 4800 शब्द ही मिलते हैं।

डॉ. भोलानाथ तिवारी (शब्दों का अध्ययन—1969, पृ. 154) की गणनानुसार ‘कामायनी’ में प्रयुक्त कुछ पद-संख्या 25441 है, जिसमें मूल शब्द केवल 3505 हैं। विभिन्न प्रकार के व्याकरणिक रूपों के प्रतिशत इस प्रकार हैं—

संज्ञा	51 प्रतिशत
क्रिया	25 प्रतिशत
विशेषण	20 प्रतिशत
सर्वनाम	2.5 प्रतिशत
क्रियाविशेषण	1.25 प्रतिशत
संख्यावाचक	0.05 प्रतिशत
परसर्ग	0.04 प्रतिशत
अव्यय	0.98 प्रतिशत

लिंगीय प्रयोगों का प्रतिशत

पुल्लिंग	73 प्रतिशत
स्त्रीलिंग	27 प्रतिशत

वर्तनीय प्रयोगों का प्रतिशत

एकवचन

बहुवचन

85 प्रतिशत

15 प्रतिशत

कृति की अपेक्षा कृतिकार का शब्द-भंडार अधिक होता है। क्योंकि प्रायः साहित्यकार एक से अधिक कृतियों का सृजन करता है। एक ही कृति होने पर भी उपर्युक्त कथन की सत्यता असंदिग्ध होती है क्योंकि साहित्यकार अपने संपूर्ण जीवन के अनेक वातावरणों में भाषाभिव्यक्ति हेतु प्रयुक्त शब्दों का समावेश सीमित समय तथा निश्चित वातावरण में लिखित साहित्य में नहीं कर सकता है। जिस प्रकार पुस्तक की अपेक्षा साहित्यकार का शब्द-भंडार अति विस्तृत होता है उसी प्रकार साहित्यकार की अपेक्षा किसी भाषा का शब्द-भंडार अत्यधिक व्यापक होता है। जैसे कृति एवं कृतिकार के शब्द-भंडार में अनेक दृष्टियों से समानता विद्यमान होती है वैसे ही साहित्यकार तथा उस भाषा के शब्द भंडार में भी समानता पाई जाती है।

जिस प्रकार किसी व्यक्ति के संपूर्ण शब्द-भंडार का ज्ञान प्राप्त करना कठिन कार्य है उसी प्रकार विश्व की किसी भी भाषा के संपूर्ण शब्द-भंडार से अवगत होना और भी कठिन कार्य है किंतु इसका अभिप्राय यह नहीं है कि इस दृष्टि से अध्ययन नहीं किया जाना चाहिए। हिंदी-अंग्रेजी जैसी जीवित भाषाओं के संपूर्ण शब्द-भंडार का पता लगाने में चाहे सफलता न मिले किंतु अध्ययन एवं शोध के आधारों से नकारा नहीं जा सकता है। इसकी तुलना में संस्कृत जिसे कुछ दिनों पूर्व तक मृत भाषा की संज्ञा दी जाती थी स्वल्प प्रयोग के कारण उसके संपूर्ण शब्द-भंडार का पता लगाना आज के युग में असंभव ही लगता है और ऐसी भाषा के साहित्य में प्रयुक्त शब्दों का अध्ययन करके उसके साहित्य के संपूर्ण शब्द-भंडार का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है, किंतु भाषा का नहीं। प्राचीन काल में संस्कृत बोलचाल की भाषा अर्थात् बोली थी जिसमें अनेक ऐसे शब्द रहे होंगे जिनको संस्कृत साहित्य में किसी कारण से स्थान नहीं मिल सका होगा। यदि कुछ अन्य शब्दों को साहित्य में स्थान मिल भी गया होगा तो वह साहित्य ही आज उपलब्ध नहीं है।

शब्द-समूह के प्रसंग में शब्द कोश पर भी विचार करना अप्रासंगिक न होगा। वृहत् हिंदी कोश के प्रथम संस्करण में 1,25,518 शब्द हैं तो तृतीय संस्करण में इन शब्दों की संख्या बढ़कर 1,35,000 हो गई है। इस प्रकार तीनों ही संस्करणों में इतने शब्दों की वृद्धि को देखते हुए शब्दकोश की पूर्णता असंदिग्ध नहीं रह जाती है। बोली के अतिरिक्त यदि हिंदी भाषा पर ही दृष्टिपात करें तो ज्ञात होता है कि हिंदी भाषा के अनेक ऐसे शब्द हैं जिनको हिंदी भाषा कोश में स्थान नहीं मिल सका है। इसके विपरीत अनेक ऐसे शब्दों (अरबी, फारसी तथा संस्कृत आदि) को शब्दकोशों में स्थान मिल गया है जिनका हिंदी साहित्य में न भूतकाल में प्रयोग हुआ

है, न वर्तमान काल में उनका प्रयोग हो रहा है तथा भविष्य में इनके प्रयोग की संभावना भी नहीं है। किसी विशिष्ट कोश की ही ऐसी स्थिति नहीं है अपितु शायद सभी शब्द कोशों की यही स्थिति है। पारिभाषिक शब्दों के निर्माण से शब्द भंडार की शनैः-शनैः वृद्धि होती जा रही है।

वैयक्तिक शब्द-समूह की भांति भाषिक शब्द-समूह भी वातावरणिक परिवर्तन के साथ-साथ परिवर्तनशीलता बनाए हुए हैं। भाषिक शब्द-समूह में परिवर्तन के प्रमुख निम्न कारण हैं—

1. नवीन शब्दागम।

2. पुरातन शब्द-लोप।

भाषिक आवश्यकतानुसार किसी भी भाषा में समय के साथ-साथ नव्य शब्दागम एवं पुरातन शब्द लोप की प्रक्रिया स्वाभाविक रूप से चलती रहती है। किसी भी भाषा के विभिन्न कालों की शब्दावली को देखने से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है।

साहित्य समाज का दर्पण है। भाषा सामाजिक प्राणियों के विचारों के आदान-प्रदान का माध्यम है। जिसके परिणामस्वरूप सामाजिक परिवर्तन के साथ-साथ भाषा में परिवर्तन होता रहता है। मुसलमानों तथा अंग्रेजों के भारतागमन के परिणाम स्वरूप भारतीय समाज परिवर्तित हुआ तथा हिंदी भाषा ने अनेक मुस्लिम एवं ईसाई शब्दों को अपना लिया। इस प्रकार का शब्दागम शासन, वस्त्र, संस्कृति एवं औषधि आदि के कारण हुआ। विश्व की सभी भाषाओं की यह विशेषता है कि अन्य भाषाओं के शब्दों को परंपरा अथवा वस्तुओं के माध्यम से समयानुसार ग्रहण करती रहती हैं। हिंदी की यह प्रमुख विशेषता रही है। संपर्क एवं संबंध शब्दों के आदान-प्रदान के सहायक अवयव हैं। अंग्रेजों के संपर्क एवं संबंध के परिणामस्वरूप हिंदी में अनेक अंग्रेजी शब्द तत्सम एवं तद्भव रूप में आ गए हैं। आधुनिक साहित्य में ऐसे शब्दों की भरमार है। अंग्रेजी के अतिरिक्त पुर्तगाली एवं फ्रांसीसी शब्द भी पर्याप्त संख्या में हिंदी में समाविष्ट हो गए हैं।

हिंदी भाषा ने विदेशी (परराष्ट्रीय) शब्दों को तत्सम, तद्भव तथा अनूदित तीन रूपों में ग्रहण किया है। आगत विदेशी (परराष्ट्रीय) शब्दों में संज्ञा शब्द सर्वाधिक हैं। द्वितीय स्थान विशेषणों का तथा तृतीय अर्थात् सर्वल्य सर्वनाम का है। अश्लीलता शब्द-लोप का मुख्य कारण है। उक्त चिंतन के पश्चात् यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि भाषा की आधारभूत शब्दावली में समय के अनुसार परिवर्तन होता रहता है।

4. 2. हिंदी शब्द-समूह के अध्ययन का इतिहास

हिंदी शब्द-समूह के प्रारंभिक अध्ययन का श्रेय पं. कामताप्रसाद गुरु (हिंदी

व्याकरण—1920, पृ. 55-56) को है। उन्होंने 'हिंदी-व्याकरण' में तत्सम, तद्भव पर विस्तृत रूप से विचार करते हुए विदेशी (परराष्ट्रीय) शब्दों को अलग वर्ग में रखने का सुझाव दिया है। उनकी 'हिंदी व्याकरण' नामक प्रसिद्ध कृति का प्रकाशन सन् 1920 ई. में हुआ है।

हिंदी शब्द-समूह पर किया जाने वाला दूसरा कार्य डॉ. सुनीति कुमार चातुर्वर्ज्य का (ओरिजिन एंड डेवलपमेंट ऑफ बेंगाली लैंग्वेज—पृ. 185) है। उन्होंने 'ओरिजिन एंड डेवलपमेंट ऑफ बेंगाली लैंग्वेज' की भूमिका में शब्दों को तत्सम, तद्भव विदेशी और देशी चार वर्गों में वर्गीकृत करने का सुझाव दिया है।

हिंदी के प्रसिद्ध भाषा वैज्ञानिक डॉ. धीरेन्द्र वर्मा (हिंदी भाषा का इतिहास—1953, पृ. 69-75) ने हिंदी शब्द-समूह पर विस्तार से विचार किया है। उन्होंने 'हिंदी भाषा का इतिहास' में हिंदी शब्द समूह को तीन नये उपवर्गों में विभक्त किया है।

(क) भारतीय आर्य भाषाओं का शब्द-समूह।

(ख) भारतीय अनार्य भाषाओं से आए हुए शब्द।

(ग) विदेशी भाषाओं के शब्द।

डॉ. वर्मा ने इन तीन वर्गों के आधार पर हिंदी के विभिन्न प्रकार के शब्दों का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया है।

हिंदी पर विदेशी (परराष्ट्रीय) भाषाओं के प्रभाव-संदर्भ से डॉ. अम्बा प्रसाद सुमन, डॉ. कैलाशचन्द्र भाटिया, डॉ. विश्वनाथ मिश्र और डॉ. हरदेव बाहरी द्वारा किए गए कार्य विशेष उल्लेखनीय हैं।

डॉ. बाबूराम सक्सेना (सामान्य भाषाविज्ञान—1965, पृ. 172) का हिंदी शब्दों के वर्गीकरण का गंतव्य विशेष रूप से उद्धरणीय है। उन्होंने शब्द-समूह को तत्सम, तद्भव, देशी-विदेशी और देशज पांच मुख्य वर्गों में विभक्त किया है। इस प्रकार देशी और देशज के दो भिन्न-भिन्न वर्ग बनाने के अन्य भारतीय भाषाओं के शब्दों और अज्ञातकुत्पत्तिक शब्दों का वर्गीकरण व्यवस्थित हो जाता है।

डॉ. उदयनारायण तिवारी (हिंदी भाषा का उद्गम और विकास—1969, पृ. 421-499) का इस संदर्भ का कार्य निश्चय ही मध्य की महत्वपूर्ण कड़ी स्वल्प है।

भाषा विज्ञान के अधिकारी विद्वान् डॉ. भोलानाथ तिवारी (शब्दों का अध्ययन—1969, पृ. 158) ने हिंदी शब्द समूह पर विभिन्न दृष्टियों से विचार किया है। शब्द-विज्ञान पर लिखी गई 'शब्दों का जीवन' शब्दों का अध्ययन, हिंदी भाषा की शब्द-संरचना आदि पुस्तकें विशेष उल्लेखनीय हैं। उन्होंने 'हिंदी भाषा' में शब्दों को तत्सम, अर्द्धतत्सम, तद्भव विदेशी, देशज संकर आदि वर्गों में विभक्त कर शब्दों के अध्ययन का सुदृढ़ आधार प्रदान किया है। 'शब्दों का अध्ययन' में तिवारी जी ने शब्द-वर्गीकरण शब्द-संकलन और शब्द अध्ययन की विभिन्न पद्धतियों पर विस्तार से विचार किया है। यह कार्य शोधार्थियों के लिए विशेष उपयोगी है।

डॉ. पूर्णसिंह डबास (हिंदी में देशज शब्द—1962, पृ. 76) द्वारा किया गया "हिंदी शब्द-समूह के देशज वर्ग से संबंधित कार्य निश्चय ही प्रशंसनीय है। डॉ. डबास ने 'हिंदी में देशज शब्द' शोध ग्रंथ में अनेक देशज शब्दों की व्युत्पत्ति दर्शाकर उन्हें भिन्न-भिन्न वर्गों में व्यवस्थित किया है।

डॉ. नरेश मिश्र (हिंदी शब्द समूह का विकास—1995, पृ. 363) ने हिंदी भाषा के सन् 1900 से 1925 ई. तक की शब्दावली पर विस्तृत कार्य किया है। उन्होंने अपने शोध-ग्रंथ 'हिंदी शब्द-समूह का विकास (सन् 1900-1925 ई.) में शब्दों का व्युत्पत्ति के आधार वर्गीकरण करते हुए विभिन्न शब्द-वर्गों पर वैज्ञानिक कार्य किया है।

तत्सम शब्द

हिंदी शब्द भंडार में तत्सम शब्दावली का विशेष स्थान है। संस्कृत भाषा से ही हिंदी का उद्भव हुआ है, इसलिए उसमें संस्कृत भाषा को विभिन्न प्रवृत्तियों का अत्याधिक परिवर्तन के साथ विद्यमान होना स्वाभाविक है। परंपरागत शब्दों में संस्कृत के कुछ शब्द ज्यों के त्यों अर्थात् बिना किसी परिवर्तन के हिंदी में आ गए हैं, तो कुछ परिवर्तन के साथ हिंदी में स्थान प्राप्त किए हैं। संस्कृत के ऐसे शब्द जो रूप और अर्थ संदर्भ में बिना परिवर्तन के हिंदी में प्रयुक्त होते हैं, उन्हें ही तत्सम शब्द कहते हैं। ऐसे शब्दों से भारतीय संस्कृति और सभ्यता की सहज अभिव्यक्ति होती है। पुरानी हिंदी के पूर्व अपभ्रंश भाषा का प्रयोग होता था। अपभ्रंश भाषा के शब्दों में संस्कृत के विकसित तद्भव शब्दों की बहुलता है। ऐसे शब्दों में इतना अधिक परिवर्तन हो जाता है कि उसमें संस्कृत के तत्त्वों का आभास भी नहीं होता है। पुरानी हिंदी के पश्चात् संस्कृत से बहुत अधिक दूर लगने वाले शब्द धीरे-धीरे अपने मूल रूप के निकट आने लगे हैं।

भक्ति काल का साहित्य श्रद्धा-भक्ति और आध्यात्मिकता के आधार पर विकसित हुआ है। इसमें भक्ति की विभिन्न धाराओं का सूक्ष्मातिसूक्ष्म विवेचन करने का सफल प्रयत्न किया गया है। भक्ति-भावना के साहित्यिक चित्रण में तत्सम शब्दावली की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। भक्ति काल की प्रारंभिक रचनाओं में यदि तद्भव शब्दों की बहुलता रही है, तो परवर्ती काल में तद्भव शब्दों की संख्या क्रमशः घटने और तत्सम शब्दों की संख्या बढ़ने लगी है।

तत्सम शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग आचार्य भरतमुनि ने (नाट्यशास्त्र—पृ. 17/2) किया है। आचार्य दंडी ने भी भरतमुनि द्वारा सुझाए गए 'तत्सम' नाम को स्वीकार किया है। संस्कृत के कुछ आचार्यों और आधुनिक विद्वानों ने इसके स्थान पर कुछ अलग नामों के उल्लेख किए हैं। जिनमें संस्कृत आचार्यों द्वारा उल्लेख किया गया नाम तंतुल्य और आधुनिक हिंदी वैयाकरण, आचार्य किशोरी दास वाजपेयी द्वारा प्रदत्त नाम तद्रूप विशेष उल्लेखनीय है।

इस शब्द वर्ग के विभिन्न नामों में आचार्य भरत मुनि द्वारा प्रयुक्त 'तत्सम' नाम ही प्रचलन में है, शेष नामों को प्रयोग में वह स्थान नहीं मिल सका है।

5.1. परिभाषा

तत्सम शब्दों को परिभाषा के विषय में लगभग सभी विद्वानों का एक ही मत है। सभी भाषाविदों और भाषावैज्ञानिकों के द्वारा भिन्न-भिन्न शब्दावली में लगभग एक ही भावाधारित परिभाषाएं दी गई हैं। इस समभाव तथ्य के प्रमाणार्थ कुछ एक प्रमुख परिभाषाएं दी जा रही हैं।

हिंदी के प्रसिद्ध वैयाकरण पं. कामताप्रसाद गुरु ने ('हिंदी व्याकरण'—1960, पृ. 23) में 'तत्सम' की परिभाषा इस प्रकार दी है—

“तत्सम वे संस्कृत शब्द हैं जो अपने असली स्वरूप में हिंदी भाषा में प्रचलित हैं, जैसे—राजा, पिता, कवि, आज्ञा, अग्नि, वायु, वत्स, भ्रात्रा इत्यादि।”
प्रसिद्ध आधुनिक भाषा वैज्ञानिक डॉ. भोलानाथ तिवारी ने (हिंदी-भाषा, सं. 1962, पृ. 646) में तत्सम शब्द की परिभाषा इस प्रकार दी है—
“तत्सम वे शब्द हैं, जो संस्कृत के समान हैं, अर्थात् जिनमें परिवर्तन नहीं हुआ है।”

डॉ. उदयनारायण तिवारी (हिंदी भाषा का उद्भव और विकास—1969, पृ. 210) ने तत्सम को परिभाषित करते हुए लिखा है, “तत्सम से वस्तुतः तात्पर्य है, तत् = उसके, सम = समान। यहाँ भी तत् से संस्कृत से तात्पर्य है। वस्तुतः तत्सम वे शब्द हैं जो नव्य आर्यभाषाओं में संस्कृत से उसी रूप में लिए गए हैं।”

डॉ. नरेश मिश्र ने 'हिंदी शब्द-समूह का विकास' तत्सम की परिभाषा इन शब्दों में दी है—

“संस्कृत भाषा के जो शब्द परवर्ती भाषा में यथावत् आते हैं अर्थात् जिनमें परिवर्तन नहीं होता है, उन्हें तत्सम शब्द कहते हैं।”

डॉ. देवेन्द्रनाथ शर्मा (हिंदी भाषा और नागरी लिपि—1994, पृ. 60-61) ने तत्सम का अर्थ, परिभाषा एवं वर्गीकरण करते हुए लिखा है—

“तत्सम का अर्थ है तत् + सम = उसके समान अर्थात् संस्कृत के समान। वस्तुतः ये शब्द संस्कृत के ही हैं जो हिंदी में अपना लिए गए हैं। जैसे पिता की संपत्ति पर पुत्र का स्वयंस्मिद्ध अधिकार होता है, वैसे ही पूर्ववर्ती भाषा पर उत्तरवर्ती भाषा का। चूंकि हिंदी का विकास संस्कृत से हुआ है, इसलिए स्वभावतः उसमें संस्कृत के शब्दों का बाहुल्य है। ऊपर उदाहृत ईश्वर, मनुष्य, पशु शब्द तत्सम हैं क्योंकि जिस रूप में संस्कृत में प्रयुक्त होते हैं उसी रूप में हिंदी में भी। तत्सम शब्दों की संख्या हिंदी में लगभग साठ प्रतिशत है।

हिंदी के तत्सम शब्दों को दो प्रकारों में बाँटा जा सकता है—(1) परंपरा

प्राप्त और (2) नवनिर्मित। परंपरा प्राप्त शब्द वे हैं जो वैदिक युग से अर्थात् प्रायः चार हजार वर्षों से अविच्छिन्न रूप में हिंदी-भाषी समाज के व्यवहार के अंग हैं। इतनी लंबी और समृद्ध परंपरा संसार की शायद ही किसी भाषा में देखने को मिले। ये परंपरा प्राप्त तत्सम शब्द हिंदी की बहुत बड़ी शक्ति है। नवनिर्मित शब्द वे हैं जो वैज्ञानिक, तकनीकी, शैक्षिक, प्रशासनिक आदि आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए स्वतंत्र रूप में या अंग्रेजों शब्दों के पर्याय के रूप में गढ़े गए हैं। जैसे—“रजिस्ट्रार—पंजीकार; रजिस्ट्रेशन—पंजीयित; रजिस्टर्ड—पंजीयित।”

डॉ. हरदेव बाहरी (हिंदी : उद्भव, विकास और रूप—1970, पृ. 130-131) ने भी तत्सम के दो उपभेद करते हुए लिखा है, “संस्कृत-शब्दावली की उत्तरोत्तर अभिवृद्धि के अनेक कारण हैं—राजनीतिक जागृति और सांस्कृतिक उत्थान, शिक्षा के प्रचार और यातायात के विस्तार के साथ सार्वदेशिक सामान्य स्तर की चिंता, अहिंदी भाषियों के लिए हिंदी का सुबोध और सुगम बनाने की चेष्टा, ललित साहित्य के अतिरिक्त ज्ञान-विज्ञान संबंधी साहित्य की मांग और पारिभाषिक शब्दावली की आवश्यकता, राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी की प्रतिष्ठा, आदि-आदि।

तत्सम शब्द दो प्रकार के हैं—परंपरागत और निर्मित। परंपरागत वे शब्द हैं जो संस्कृत वाङ्मय में उपलब्ध हैं। दूसरे वे शब्द हैं जो नये विचारों और व्यापारों को अभिव्यक्त करने के लिए संस्कृत व्याकरण के अनुसार समय-समय पर गढ़ लिए गए हैं। वैज्ञानिकों की मांग को पूरा करने के लिए सैकड़ों-हजारों पारिभाषिक शब्द संस्कृत स्रोतों से बनाए गए हैं यद्यपि वे संस्कृत अभिधानों में नहीं मिलते। साहित्यकारों ने विशेषतया छायावादी युग और उसके बाद के कवियों ने भी सैकड़ों शब्द गढ़े और न जाने कितने अन्य लेखकों, विचारकों और विद्वानों ने अपनी आवश्यकता के अनुसार तत्सम शब्दावली का निर्माण किया है।”

डॉ. शर्मा ने ‘नवनिर्मित’ नाम दिया है और डॉ. बाहरी ने ‘निर्मित’ कहा है। इन शब्दों का निर्माण आवश्यकता के अनुसार किया जाता है। इसलिए ‘निर्मित’ नहीं ‘नवनिर्मित’ है। ‘निर्मित’ के अंतर्गत पारिभाषिक, अनुकरणात्मक संकर तथा प्रतिध्वन्यात्मक शब्द आते हैं। इन्हें पारिभाषिक नाम देना भी उचित नहीं है ये तत्सम के ही उपभेद से संबंधित शब्द हैं।

ऊपर दी गई सभी परिभाषाएं मात्र परंपरागत शब्दों को ध्यान में रखकर दी गई हैं। यदि हिंदी भाषा को आगत (स्वराष्ट्रीय परराष्ट्रीय) शब्दावली के विषय में चिंतन किया जाएगा तो परिभाषा इससे भिन्न हो जाएगी। ऊपर की परिभाषा में संस्कृत के अपरिवर्तित शब्दों को ‘तत्सम’ शब्द को संज्ञा दी गई है जबकि आगत शब्दावली के संदर्भ में किसी भी भाषा के वे आगत शब्द जो अपने मूल रूप में प्रयुक्त होते हैं, उन्हें तत्सम की संज्ञा दी जा सकती है।

हिंदी भाषा में परंपरागत तत्सम शब्दों का प्रमुख वर्ग है और भाषाभिव्यक्ति में इस शब्द वर्ग की अनूठी भूमिका है।

5.2. विषयानुसार वर्गीकरण

हिंदी भाषा के प्रमुख शब्द-वर्ग ‘तत्सम’ का प्रयोग क्षेत्र बहुत विस्तृत है। जीवन के विभिन्न क्षेत्रों के विभिन्न संदर्भों को भावाभिव्यक्ति में तत्सम शब्दों का सहारा लिया जाता है। इस वर्ग के शब्द जीवन के शैक्षिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, प्राकृतिक आदि सभी संदर्भों में प्रयुक्त होते हैं। रहन-सहन, खान-पान तथा आवास तक के विभिन्न तत्सम नामावली को देखते हुए इस शब्द-वर्ग की महत्ता स्वतः स्पष्ट हो जाती है। हिंदी भक्ति कालीन शब्दावली को मुख्यतः निम्नलिखित विषयों के आधार पर वर्गीकृत कर सकते हैं।

5.2.1. प्रकृति संबंधी शब्दावली

भारतवर्ष प्रकृति प्रधान देश है। यहां एक तरफ बर्फ से ढंके पर्वत हैं, तो दूसरी तरफ असीम समुद्र। भारत की धरती, कृषि तथा वन प्रदेश से हरी-भरी दिखती है। प्रकृति-प्रांगण में मुस्कराते फूल, झर-झर करते झरने, सतत प्रवहमान जल-धार आदि यहां के वातावरण को सौंदर्य मंडित करते हैं। भक्तिकाल की भाषा में प्रकृति से संबंधित अनेक शब्दों के प्रयोग हुए हैं। इन शब्दों के प्रयोग से जहां शब्द-भंडार में अनूठी श्रीवृद्धि होती है, वहीं प्रकृति संबंधी भावाभिव्यक्ति संभव होती है। भक्तिकाल की भाषा में प्रयुक्त प्रकृति संबंधी कुछ प्रमुख शब्दों के उद्धरण प्रस्तुत हैं—

1. अंबुज—नव अंबुज तें अबहीं बिछुरो बिजुरो तैसो। नन्द-37/93
2. अंबुद—बार-बार कुहो बरसवतो अंबुद अंबर छायो। नन्द-1286/23
3. अनल—अनल पंषि आकाष कूं माया मेर उलंघि। दादू-137/90
4. अर्क—बाल अर्क सम बिरह जमओ। नन्द-115/295
5. अस्त—उदे अस्त लहि चा उजियारा। मंझन-10/16
6. अदधि—उभय अपार उदधि अवगाहा। तुलसी-1.5-1
7. कंज—ले जल जमुना को झारो भरि, कंज सुमन बहु ल्याए। सूर-260/2
8. कानन—व्योम धर नद सेल, कानन इते चरिन अधाइ। 56/7
9. कुश—केतकि कुश मग रमस प्रगोरो। नन्द—130/82
10. सद्योत—रवि आगे सद्योत उज्यारो, चंदन संग कुबांस। सूर-1592/6
11. चन्द्रकला—चमक उठी सपने सुधि भूलो, चन्द्रकला न साहात। मीरा-76
12. चेतन—जे जड़ चेतन जीव जहाना। तुलसी-1/2/4
13. तमपुंज—जहां आवे तमपुंज कुंज गहबर तरु छाहों। नन्द—12/17

14. दामिनी—कुंद कली दाड़िम दामिनी। तुलसी-3/29/11
 15. दिवाकर—कृष्ण-भगति-प्रतिबंध तिमिर कहुं कोटि दिवाकर। नन्द-1/4
 16. हुम—हों अनाथ बैठयों हुम-डरिया, पारिधि साथे बान। सूर-97/2
 17. पवन—पवन पाणो दोनु ही जायंगे, अटल रहे अविनासी। मीरा-20
 18. प्रकृति-समुझहु छाड़ि प्रकृति अभिमानो। तुलसी-5/56/3
 19. मीन—तपन मीन जस पावा पानी। मंझन-5/6
 20. मेघ—मेघ घटा घनघोर दे जो। मीरा-143
 21. रजनी—राजकुंवर कंह रजनो तिल तिल सुख बिहाई। मंझन-262/492
 22. रवि—रवि ससि किए प्रदच्छिन कारो। सूर-34/9
 23. रसाल—देसि रसाल विरप वर सासा। तुलसी-1/86/1
 24. सरोज—बंदों पद सरोज सब केरा। तुलसी-1/17/4
 25. बसंत—अरस परस उस एक तो, घेले सदा बसंत। दादू-61/159
 26. हेम—उत्तर हेम गिरि लहि परवानां। मंझन-8/11
- उपर्युक्त उद्धरणों के अतिरिक्त कुछ अन्य प्रकृति संबंधी शब्द निम्नलिखित हैं—
वायु, अग्नि, धूम्र, वर्षा, विद्युत।
सूर्य, चन्द्रमा, तरक, पृथ्वी, क्षेत्र, आकाश, नक्षत्र, गिरि, नदी, धारा, गुहा, अन्तरिक्ष, समुद्र।

श्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त, शिशिर आदि।

5.2.2. शरीरांग संबंधी शब्दावली

साहित्यकार सामाजिक प्राणी है। वह जिस समाज में रहता है उसके चित्रण के साथ ही मानव-शरीर के विभिन्न अंगों का विभिन्न संदर्भों से नाम लेता तथा वर्णन करता रहता है। इस प्रकार शरीरांगों के चित्रण से लौकिक तथा पारलौकिक दोनों विषयों का विस्तृत विवेचन होता है। शरीर में ही आत्मा का निवास होता है। इस पंचभूत शरीर से ही आराध्य देव की अराधना भी संभव होती है। अतः यह कहना उचित होगा कि भक्ति भावना की पावन वेदी हमारा शरीर ही है। इसलिए भक्ति काल की भाषा में शरीरांग का विवेचन आना स्वाभाविक ही है।

1. अधर—अधर मधुर पर वंशी बजावे। मीरा-2
2. अलग—कुटिल अलक बिना अपन के मनो अलि-सिसु-जल। सूर-234/13
3. उदर—उदर भरयो कूकर-सूकर लों। सूर-65/2
4. उर—प्रेम-विकल, अति आनंद उर धरि, कदलो-छिकुला साये। सूर-13/6
5. उर—उर बैजंति माल। मीरा-3
6. कंबुकंठ—कंबुकंठ की रेस देखि हरि-धानु प्रकासि। नन्द-1/8

7. कटि—कटि निपंग कर सूर को दंड। तुलसी-1/146/8
 8. कटितर—छुद्र घंटिका कटितट सोमित, नूपुर सबद रसाल। मीरा-3
 9. कपोल—सदन सरोज बदन की सोभा, ऊभी जोऊं कपोल। मीरा-62
 10. कुच—बहुरि जो कर कुच मर्दत गए। मंझन-262/492
 11. गिरा—सिर धुनि गिरा लागि पछिताना। तुलसी-1/10/7
 12. ग्रीवा—मुंडमाल सिव ग्रीवा केसी? सूर-226/6
 13. चरण—मन रे परसि हरि के चरण। मीरा-1
 14. निबली—निबली ता मंह ललित भांति मनु उपजति लहरी। नन्द-1/11
 15. नमन—निरखि सरूप विवेक नयन भरि। सूर-69/2
 16. नासिका—देसि नासिका रहेउ अबाला। मंझन-255/480
 17. नितंब—गरुब नितंब न देख संभारा। मंझन-256/484
 18. मन—मन को मेल हिय ते न छूटो। मीरा-162
 19. मुख—तेहि सम लिस्टि रूप मुख जाहीं। मंझन-6/8
 20. लोचन—चरषत लोचन नीर। सूर-18/4
 21. हृदय—हृदय सिधुमति सीप समाना। तुलसी-1/10/4
- इन उद्धरणों के अतिरिक्त शरीरांग संबंधी कुछ अन्य तत्सम शब्द भी उल्लेखनीय हैं—
हस्त, शिर, पाद, मुख, जिह्वा, अंगुलि, इन्द्रिय, कर्ण, नेत्र, चक्षु, वाक्, त्वचा, अंग, शरीर।
रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, अश्रु।
मन, प्राण, बुद्धि, चित्त, हृदय, मस्तिष्क आदि।

5.2.3. साष्ट-पेय पदार्थ संबंधी शब्दावली

जीवन के लिए खाद्य और पेय पदार्थ की अनिवार्यता सर्व विदित है। इस अनिवार्य वस्तु से संबंधित अनेक नाम भक्ति काल के साहित्य में यत्र-तत्र प्रयुक्त हुए हैं।

1. जन—ले जल जमुना को झारी भरि। सूर-260/2
 2. दधि—दधि निस आयु बंधायो, दांवरि सुत कुबेर के तारे। सूर-25/6
 3. नवनीत—पिघरि चल्यो नवनीत-मीत नवनीत सहस हिय। नन्द-8/85
 4. नीर—नांतर समंद के नीर बिहना। मंझन-12/18
- दुग्ध, मधु, रस, घृत, सुरा, क्षीर, ओषधि आदि अन्य शब्द भी हैं।

5.2.4. धर्म संबंधी शब्दावली

धर्म प्रधान देश भारत में धार्मिकता की प्रबलता है। विभिन्न धर्मों का संगम भारत-भूमि

है। यहां की भाषा में धर्म से संबंधित विभिन्न प्रकार के शब्दों का दैनिक जीवन में प्रयोग होता है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि भारतवर्ष का आम आदमी धर्म के सहारे जीता है, उसी के सहारे जीवन में आगे बढ़ने का प्रयत्न करता है। भक्ति काल की भाषा में संस्कृति और धर्म संबंधी शब्दावली को प्रमुखता स्वाभाविक ही है। ऐसे कुछ प्रमुख शब्दों के प्रयोग उद्धरण प्रस्तुत हैं।

1. अमोघ—नाभी कुंड आमोघ अथाहा। मंझन-257/484
2. गुरु—जो गुरु सिक्ख दिस्टि प्रतिपाल सो चारिहुं जुग राउ। मंझन-10/15
3. चतुर्भुज—रूप चतुर्भुज गर्भ मंझारी। सर-289/29
4. तपस्या—मूरति मंत तपस्या जैसी। तुलसी-1/77/1
5. दयानिधि—तुम तो अखिल अनंत, दयानिधि अविनासी, सुखरासि। सूर-111/11
6. धर्म—धर्म अधर्म अधर्म धर्म करि अकरन करन करे। सूर-104/2
7. निरंजन—निरंजन की बात कहि। दादू-143/137
8. नीति—नीति अनीति भली बुरी, सुभ अशुभ निधार। दादू-56/124
9. परमानन्द—काहे न परमानन्द प्रेम पदनो को पावै। नन्द-164/64
10. पाप—बरसत चरन पाप गा नासा। मंझन-10/15
11. पीताम्बर—तरुन कान्ह अरु तरुन गोपिका, पीताम्बर, नीलाम्बर, तन-तन। सूर-1735/3
12. दिवाकर—तहं भगति प्रतिबन्ध तिमिर कहुं कोटि दिवाकर। नन्द-1/4
13. प्रभु—प्रभु पद प्रति न समुति नीकी। तुलसी-1/8/5
14. कल—मिरितुक कल आब्रत होई गया। मंझन-286/538
15. भक्त—भक्त बछल गोपाल। मीरा-3
16. मदन—कोट मदन अपनो बल हारयो, कुंडल किरनि छप्या रवि। सूर-1756/2
17. विधि—जिहि निहि विधि रीझे हरो। मीरा-13
18. सत्य—सत्य कहहुं लिसि कागद कोरे। तुलसी-118/11
19. सदाचार—सदाचार जय जोग विरागा। तुलसी-1/83/8
20. साधु—साधु चरित सुभ चरित कपासू। तुलसी-1/1/5
21. सुर—गावत सुन सुर मुनि बर बानी। तुलसी-1/24/6
22. हर—हरि हर कथा विराजति बेनी। तुलसी-1/1/10
23. हरि—हरि बिन कण गती मेरी। मीरा-65

धर्म संबंधी कुछ अन्य तत्सम शब्द—

जप, तप, मंत्र, यज्ञ, कर्म, सुख, दुख, पाप, पुण्य, दान, दया, ज्ञान, विज्ञान, उपासना, श्रद्धा,

प्रजा, धारणा, समाधि तथा शांति आदि।

5.2.5. पशु-पक्षी संबंधी शब्दावली

मानव का संबंध प्रकृति के आंगन में विचरण करने वाले पशु-पक्षियों से विशेष रूप में होता है। मानव के सुख-दुःख में भी पशु-पक्षी सहयोगी होते हैं। पालतू पशु-पक्षी यदि मानव के साथ रहते हैं, तो वन में विचरण करने वाले उन्मुक्त जीवन व्यतीत करते हैं। भक्ति काल की भाषा में पशु-पक्षी संबंधी अनेक शब्दों के प्रयोग मिलते हैं।

1. कपि—नृप कपि विप्र गोध गनिका गज कंस केसि सल तारे। सूर-2715/5
 2. कपोत—हरि ये, कोट कपोत, मधुप पिक सारंग सुधि बिसरी। सूर-1277/5
 3. गज—गज कारन पग धारे। सूर-25/7
 4. मधुव—दुरि गए, कीर कपोत मधुप...। सूर-2715/5
 5. वृष—तेली के वृष लों नित भरमत। सूर-102/4
 6. हरि—संकल जंतु अविरोध जहां हरि मृग संग चरही। नन्द-2/19
- पशु, गो, गर्दभ, उष्ट्र, धेनु, पक्षी, क्रौंच, श्येन, कूर्प, सूर्य, पिपीलिका आदि।

5.2.6. मानव-संबंध द्योतक शब्दावली

मनुष्य समाज में एक-दूसरे से विभिन्न संबंधों के आधार पर जुड़ा होता है। एक ही व्यक्ति यदि किसी एक का बेटा होता है, तो किसी अन्य का भाई, मामा, चाचा, पिता आदि भी हो सकता है। इन शब्दों के प्रयोग से समाज में मानव-संबंधों के महत्त्व का ज्ञान होता है। भक्ति कालीन साहित्य में प्रयुक्त कुछ प्रमुख मानव संबंध सूचक शब्द इस प्रकार हैं—

1. अनुज—रावन अरि को अनुज विभीषन। सूर-3/6
2. जननि—सूरदास आवंत भजन बिनु धरनी जननि बांशत झारी। सूर-34/11
3. तनया—रिषु कच गहत द्रुपत-तनया जन सरन सरन कहि भाषी। सूर-27/11
4. तात—तात जनक तनया यह सोई। तुलसी—1/230/1
5. भरी—भरीनागणि जे डसे, ते नर मुए निदान। दादू-144/151
6. निज—बहु विश्वास अचल निज धरमा। तुलसी-1/1/11
7. पति—पुनि पति बचनु मृषा करि जाना। तुलसी-1/58/2
8. भ्राता—आगे राम सहित श्री भ्राता। तुलसी-1/53/4

9. सुत—सेई सुत पिते हना विधि काजा । मंझन-7/9
 10. सुता—हुपद सुता की चीर बधायो । मीरा-135
- पिता, माता, पुत्र, वधू, अतिथि, आचार्य, गुरु, पत्नी, बाल, कुमार, किशोर, युवा, तरुण, वृद्ध आदि ।

5.2.7. रहन-सहन एवं श्रृंगार संबंधी शब्दावली

भक्ति काल के साहित्य में मानव के रहन-सहन से संबंधित पर्याप्त चित्रण किया गया है । इसलिए तत्संबंधित शब्दावली का पर्याप्त प्रभाव दिखाई पड़ता है ।

1. अंतर—सखि सों कह ससि उहि गृह अंतर । नन्द-130/92
2. अंबर—अंबर दान करयो । सूर-133/4
3. अकिंचन—चरम अकिंचन प्रिय हरि केरे । तुलसी-160/3
4. अध—कोटी बास लग नरक भोग अध भुगते छिन में । नन्द-5/52
5. आलय—गिरिघर अपनी आलय कियो । नन्द-114/272
6. कपाट—खान-पाम मोहि ने कन भावे नैण न लागे कपाट । मीरा-99
7. कुटुम्ब—ओ कुसलात कुटुम्ब जहं ताई । मंझन-283/532
8. कूप—गंगाजल तजि पियत कूप जल । सूर-296/4
9. कृपापात्र—कृपापात्र रघुनायक केरे । तुलसी-7/69/2
10. कोमल—कोमल कंवल तहां पेसिकरि । दादू-61/155
11. गृह—तजि गृह रहे सरस्वति जाइ । सूर-289-12
12. जगत—करता करे जगत जेत चाहे । मंझन 3/2
13. तिलक—मोर मुकुट माथे तिलक विराजे । मीरा-2
14. तृषित—तृषित निरसि रवि कर भव बारी । तुलसी-1/42/8
15. द्वन्द्व—मिटि गए द्वन्द्व मंद दासन के मनवांछित फल पाई । नन्द-282/9
16. धन—धन जोवन हे पावणारी । मीरा-2
17. धृष्ट—एक धृष्ट, एक सठ, इक दच्छिन । नन्द-140/12
18. नगर—धर-धर नगर अनंद उछाहा । मंझन-264/535
19. निमेष—जिनके नैन निमेष ओर कोटिक जुग जाहीं । नन्द-10/3
20. पीत—पीत अरुन-सित-सेत ध्वजा चल । सूर-1754/6
21. प्रणाम—हमारो प्रणाम बांके विहारी को । मीरा-2
22. प्रीति—लगन लगी जदि प्रीति और ही । मीरा-30
23. विकल—फिरत बन-बन विकल, सहस सो रह सकल ब्रह्म पूरन अचल नाहि पावें । सूर-1737
24. मधुर—मनो मधुर मराल छोना । सूर-307/5

25. ममता—जेहि जन पर ममता अति छोड़ू । तुलसी-1/12/6
26. महिमा—सतसंगति महिमा नहि गोई । तुलसी-1/2/2
27. माया—माया मेरि उलंघि । दादू-139/90
28. मुग्धा—ते पुनि तीन तीन परवार, मुग्धा, मध्या प्रौढ़ विहार । नन्द-127/12
29. रति—सुनिअ कथा सादर रति मानी । तुलसी-1/32/8
30. रस—नैना रस पीजे हो । मीरा-13
31. रसाल—नूपुर सबद रसाल । मीरा-3
32. रहस्य—ताइ में पुनि अति रहस्य यह पंचा ध्याई । नन्द-2/15
33. विरह—निसि वासा मोहि विरह सतावें । मीरा-48
34. संताप—दारिद दुख संताप में पुहुमी छाड़ि परान । मंझन-8/18
35. सदन—तृष्णा सुख सदन सात संधाने । सूर-60/12
36. साहस—देखि साहस सकुच मानत । सूर-106/6
37. सुमति—नहिं करि लकुटि सुमति सत संगति । सूर-48/5
38. सादर—सेवत सादर समन कलेसा । तुलसी-1/1/12
39. साहस—साहस अनृत चवलता माया । तुलसी-6/15/3
40. सुख—दुख-सुख पाप पुण्य दिन राती । तुलसी-1/5/5
41. हित—पर हित हानि लाभ जिन्ह केरे । तुलसी-1/3/2

5.2.8. शासन एवं व्यवस्था संबंधी शब्दावली

समाज तथा मनुष्य विभिन्न व्यवस्थाओं के आधार पर व्यवस्थित जीवन व्यतीत करता है । शासन यदि राज्य से संबंधित होता है, तो परिवार तथा मन का भी शासन होता है । मनुष्य-जीवन को व्यवस्थित बनाने के लिए भाषा में गिनती की व्यवस्था (गणना), समय और तौल आदि के निर्धारण का ज्ञान अनिवार्य होता है । विभिन्न सामाजिक व्यवस्थाएं साहित्य में यत्र-तत्र उभरकर सामने आती हैं । भक्तिकालीन भाषा में प्रयुक्त शासन एवं व्यवस्था संबंधी कुछ शब्द इस प्रकार हैं—

1. अखंड—लागि समाधि अखंड अपारा । तुलसी-1/57/8
2. अवलि—कुटिल अलक मुख कमल मनीं इलि-अवलि बिराजे । नन्द-1/3
3. अनुचर—मोहि अनुचर कर केतिक बाता । तुलसी-2/252/5
4. अनन्त—श्री अनन्त महिमा अनन्त को बरनि सकें कवि । नन्द-3/22
5. अष्ट—अगर मेहारति अष्ट महासिधि डारे सधियापूरति नो निधि । नन्द-286/24
6. एक—एक बिछुरत राम प्रान हरि ले हो । तुलसी-114/4
7. खंडन—दससीस बाहु प्रचंड मंडन तुलसी-3/31/1

8. दल—स्रवत सलिल राजिब दल लोचन । सूर-18/4
9. नृप—रावन सो नृप जात न जान्यो । सूर-18/4
10. पल—उठा बिनि पल न रहाउ । मीरा-17
11. प्रतिबंध—कृष्ण भगति प्रतिबंध तिमिर कुहु कोटि दिवाकर । नन्द-1/4
12. प्रथम—बंदउं प्रथम महीसुर चरना । तुलसी-1/1/3
13. भय—जो अवतरेउ भूमि मय हारन । तुलसी-1/116/7
14. भवन पति—भवनपति तुम धरि आज्यो हो । मीरा-96
15. रीति—अब कुछ ओरि ही रीति । मीरा-60
16. लघु—लघु मति मोर चरित अवगाहा । तुलसी-1/7/5
17. विपुल—कलिमल विपुल विभंजन नामा । तुलसी-3/10/5
18. स्वाधीन—सा स्वाधीन बल्लभा कहिए । नन्द-138/10

5.2.9. जीवनोपयोगी वस्तुओं संबंधी शब्दावली

मनुष्य के जीवन में विभिन्न क्षेत्रों की सफलता के लिए अनेक वस्तुओं की आवश्यकता होती है। इन वस्तुओं का अपना विशेष महत्त्व होता है। भक्ति-काल के साहित्य में ऐसी वस्तुओं का चित्रण प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से किया गया है। कुछ प्रमुख जीवनोपयोगी वस्तुओं के प्रयोग—उद्धरण प्रस्तुत हैं—

1. अनल—ज्याल अनल विष ज्वाल तें रासि लई सब ठौर । नन्द-158/34
 2. अम्ल—बीचि-बीचि कटु अम्ल निवत् अतिसम रुचिकारो । नन्द-10/1
 3. अस्म—अस्वस्थामा अस्म चलायो । सूर-289/23
 4. औषध—औषध मूल फूल फल पाना । तुलसी-2/5/2
 5. चीर—झूठा पाट पटंवारे, झुठा दिखणो चीर । मीरा-1
 6. विष—विष को प्यालो राणा जी भेज्यो । मीरा-44
- पात्र, कलश, चित्र आदि ।

5.2.10. अध्यात्म-चिंतन संबंधी शब्दावली

भक्ति काल का साहित्य श्रद्धा और भक्ति की निर्मल धारा से आप्लावित है। आत्मा की गति परमात्मा की ओर और परमात्मा का कृपाल रूप सर्वत्र विस्तीर्ण दिखाई देता है। भक्तिकाल की भाषा में साधना, आराधना तथा भगवत-चिंतन से संबंधित अनगिनत शब्द यत्र-तत्र दृष्टिगोचर होते हैं—

1. आगम—अकथ अगाध अनादि अनूपा । तुलसी-1/22/1
2. कमला—जदपि पद-कमल कमला अमला सेवत निसि दिन । नन्द-19/33
3. कमलाकांत—जहां प्रभु कमलाकांत पियारे । नन्द-186/5
4. नाद—नाद ब्रह्म की जननि मोहिनी सब सुख सागर । नन्द-5/47

5. पद्मासन—पद्मासन सब द्वार रोकि इंद्रिन को मारें । नन्द-155/7
6. विधि—जिहि निहि विधि रोझे हरि । मीरा-13
7. श्रुति—पाप मनोरथ अपनो जैसे हरषे श्रुतिगन । नन्द-38/106
8. हरि—जिहि विधि विधि रोझ हरि । मीरा-13

5.2.11 अन्य वर्ग

उपर्युक्त वर्गों के अतिरिक्त तत्सम शब्दों के कुछ अन्य वर्ग भी हैं—

आंकिक—एक, द्वौ, त्रयः, पंच, सप्त, नवम, दशम, दश, पंचदश, शत, प्रतिशत, सहस्र, अयुत, नियुत, प्रयुत, अर्बुद, न्यर्बुद आदि ।

प्राकृतिक नक्षत्र—सूर्य, चन्द्रमा, तारक, पृथ्वी, आकाश, नक्षत्र, गिरि, नदी, धारा, गुहा, अन्तरिक्ष, समुद्रि आदि ।

काल—दिन, दिव, रात्रि, सायं, प्रातः, ऊषा, मध्याह्न, मुहूर्त, ऋतु, मास, पक्ष, वेला, वर्ष, युग आदि ।

नक्षत्र—अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा, पूर्वा फाल्गुनी, उत्तरा फाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाति, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूला, पूर्वाषाढ़, उत्तराषाढ़, श्रवणा, धनिष्ठा, शतमिषा, पूर्वा भाद्रपदा, उत्तरा भाद्रपदा, रेवती एवं अभिजित ।

वर्ण—ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र, वर्ण, गोत्र, जाति आदि ।

जाति—वणिक्, भिषक्, कुम्भकार, लोहकार, गणक, अनुचर आदि ।

कृषि—कृषि, क्षेत्र, दर्भ, हल, चक्र एवं रथ ।

प्रवृत्ति एवं आस्वाद—मद, अहंकार, क्रोध, काम, ओज, सत्य, ज्योति, विद्या, वीर्य, रूप, रस, गंध, स्पर्श, स्वाद, शब्द आदि ।

उपलब्धि—ऋद्धि, सिद्धि ।

दिशा—पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण ।

देवी-देवता—देवी, देवता, असुर, इन्द्र, अग्नि, विष्णु, शिव, ब्रह्मा, हर, हरि, रुद्र, शंकर, पार्वती, अपर्णा, द्विमसुता आदि ।

इनके अतिरिक्त भी अनेक वर्ग बनाए जा सकते हैं; जैसे, वृक्ष, पात्र, रत्न, एष्णा, योनि, कर्म आदि ।

विश्व की हिन्दीतर किसी अन्य भाषा में इतने तत्सम शब्द नहीं हैं। ये तत्सम शब्द अनेक बार लुप्त हो गए हैं, आवश्यकतानुसार भाषिक अभिव्यक्तियों को समृद्ध एवं सशक्त बनाने हेतु इनका प्रादुर्भाव होता रहा है। गत दो दशकों में ऐसे अनेक शब्दों ने हिंदी भाषा की श्रीवृद्धि में योगदान किया है ।

तत्सम शब्द की तत्समता

हिंदी में आने वाले संस्कृत के तत्सम शब्दों की तत्समता का विषय विचारणीय है। प्राचीन आचार्यों एवं आधुनिक भाषाविदों के मतानुसार हिंदी में आने वाले संस्कृत के अपरिवर्तित शब्दों को तत्सम की संज्ञा दी जाती है। यदि इन शब्दों के विषय में गहराई से विचार किया जाए, तो इस वर्ग के सामान्य रूप में तत्सम लगने वाले अनेक शब्द तत्सम होते ही नहीं। डॉ. भोलानाथ तिवारी (शब्दों का अध्ययन—1969, पृ. 16) ने इस विषय पर विचार व्यक्त करते हुए लिखा है—

“जिन शब्दों को तत्सम कहा जाता है, उनमें यदि वैज्ञानिक दृष्टि से देखा जाए तो तत्समता से अधिक अतत्समता है।” यह पूर्ण तथ्य है कि भाषा या शब्द संरचना के दो मुख्य आधार हैं : प्रथम—भाषा का शारीरिक गठन अर्थात् ध्वनि अक्षर आदि इकाइयाँ, दूसरा—उसकी आत्मा स्वरूप आर्थात् इकाई। इन दोनों मुख्य आधारों के दृष्टिगत कर यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि किसी भाषा में अन्य भाषा के परंपरागत या नवागत रूप के वे ही शब्द तत्सम होंगे जिनको शारीरिक संरचना और आर्थिक रूप अपने मूल रूप में ही हो अर्थात् उनमें किसी भी प्रकार का परिवर्तन न हो। डॉ. भोलानाथ तिवारी ने (शब्दों का अध्ययन—1969, पृ. 16) इसी भाव को इन शब्दों में व्यक्त किया है—

“कोई शब्द तत्सम कहलाने का अधिकारी तभी है, जब वह आत्मा और शरीर दोनों ही दृष्टियों से संस्कृत के समान हो।”

डॉ. भोलानाथ तिवारी ने यहां केवल परंपरागत शब्दों के विषय में संकेत किया है। उक्त विचार संस्कृत के ही नहीं किसी भी विदेशी भाषा के विषय में पूर्ण उपयुक्त लगता है।

डॉ. नरेश मिश्र ने (हिंदी शब्द-समूह का विकास—1985, पृ. 89) में अपना विचार इस प्रकार लिपिबद्ध किया है—

“सूक्ष्म दृष्टि से चिंतन करने से ज्ञात होता है कि प्रत्येक शब्द के दो पक्ष हैं। प्रथम आभ्यंतर पक्ष जिसे अर्थ कहते हैं अर्थात् जिससे भाव का ज्ञान होता है, इसे शब्द को आत्मा की संज्ञा दी जाती है। द्वितीय बाह्य पक्ष है, जिसमें शब्द के बाह्य रूप अर्थात् उसमें प्रयुक्त ध्वनियों के साथ उसके उच्चारण का ज्ञान होता है।” तत्सम कहे जाने वाले कुछ शब्दों के अर्थ संस्कृत के समान नहीं हैं, तो कुछ की ध्वनियों में अंतर हो गया है। इन दोनों विषयों पर अलग-अलग विचार करना अधिक उपयुक्त होगा।”

तत्सम शब्द को तत्समता पर विचार करने के लिए उसके अर्थ-परिवर्तन और ध्वनि-परिवर्तन पर विचार करना होगा।

5.3.1. अर्थ-परिवर्तन

हिंदी में प्रयुक्त होने वाले तत्सम शब्दों में अनेक ऐसे शब्द हैं जो वास्तव में तत्सम होते नहीं हैं वरन् तद्भव होते हैं। ऐसे तद्भव शब्दों को तत्सम समझने का मुख्य कारण यह है कि इनकी ध्वन्यात्मक संरचना तो संस्कृत के समान होती है, किंतु उनके अर्थ में परिवर्तन हो जाता है। ध्वनि-परिवर्तन का ज्ञान तो सामान्य रूप से ज्ञात हो जाता है, किंतु अर्थ-परिवर्तन का ज्ञान सूक्ष्म-चिंतन से ही संभव होता है। विभिन्न शब्दों में अर्थ-परिवर्तन के सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक आदि में से एक अथवा एकाधिक कारण हो सकते हैं।

हिंदी साहित्य की भक्तिकालीन भाषा में ऐसे अनेक शब्द हैं, जिनमें तत्समता का आभास होता है, किंतु उनमें तत्सम गुण बहुत ही कम होते हैं। इस कोटि के कुछ प्रमुख शब्दों के संदर्भ इस प्रकार हैं—

1. कटि—हिंदी में ‘कटि’ शब्द का प्रयोग कमर के लिए किया जाता है, जबकि संस्कृत में इस शब्द का प्रयोद नितम्ब और कूल्हा के लिए होता है।

“कटि निषंग कर सर कोदंडा।” —तुलसी-1/146/8

“छुद्र घंटिका कटि तट सोभित, नूपुर सबद रसाल।” —मीरा-3

2. जटिल—संस्कृत भाषा में ‘जटिल’ शब्द का अर्थ है—जटाधारी या जटावाला होता था किंतु हिंदी में यह शब्द इसके विपरीत दुरूह या कठिन अर्थ में प्रयुक्त होता है।

3. देव—संस्कृत में ‘देव’ शब्द का प्रयोग पूज्य, अमर, देवता, राजा, मेघ और ईश्वर के लिए प्रयुक्त होता था, किंतु भक्तिकालीन भाषा में इसका प्रयोग मुख्यतः देवता के लिए होने लगा है।

4. पत्र—संस्कृत भाषा में ‘पत्र’ शब्द कई अर्थों में प्रयुक्त होता रहा है; यथा—पत्र, पुष्प, पंखड़ी, चिड़ी, पत्ता, छुरी आदि। हिंदी में इसका प्रयोग केवल ‘पत्ता’ और ‘पत्र’ दो ही अर्थों में प्रयुक्त होता है। इस प्रकार अर्थ भिन्नता की दृष्टि से इसे तत्सम शब्द की कोटि में नहीं रख सकते हैं।

5. परिवार—संस्कृत में ‘परिवार’ का अर्थ है—घेरे रहने वाले या परिचायक वर्ग, हिंदी में यही शब्द पूर्णतः भिन्न कुटुंब अर्थ में प्रयुक्त होता है।

6. वंश—संस्कृत में ‘वंश’ शब्द का प्रयोग मुख्यतः बांस अर्थ में होता था। हिंदी में यह शब्द मुख्यतः परिवार के लिए होता है।

“बूड़ा वंश कबीर का उपजा पूत कमाल।” —कबीर

5.3.1. ध्वनि-परिवर्तन

हिंदी में अनेक ऐसे शब्दों के प्रयोग मिलते हैं जो अर्थ में तो संस्कृत के समान

होते हैं, किंतु उनमें ध्वन्यात्मक परिवर्तन होता है। ऐसे शब्दों को तत्सम वर्ग में नहीं रख सकते हैं क्योंकि इनसे भाव तत्समाभास ही होता है। ऐसे कुछ शब्द हैं।

हिंदी में प्रयुक्त रूप

उर
ज्योति
तप
नभ
मन
यश
रज

संस्कृत में प्रयुक्त रूप

उरस्
ज्योतिष्
तपस्
नभस्
मनस्
यशस्
रजस्

संरचनात्मक वर्गीकरण

संरचना की दृष्टि से प्रत्येक भाषा में शब्द तीन प्रकार के होते हैं—मूल, यौगिक और योगरूढ़। यदि भाषा को प्रारम्भिक आधारभूत शब्दावली मूल शब्दों पर आधारित हो तो यौगिक। योग रूढ़ शब्दावली मुख्यतः मूल शब्दों पर आधारित होती है। मूल शब्द भाषा को स्वतंत्र, लघुतम और अर्थवान इकाई के रूप में होते हैं। ऐसे शब्द एक ही भाषा से संबंधित होते हैं; यथा—सूर्य, नीर, पंक आदि। यौगिक तथा योगरूढ़ शब्द की संरचना शब्द और शब्दांश (उपसर्ग, प्रत्यय) या शब्द के योग से होती है। ऐसे शब्दों के दोनों अंश एक भाषा अथवा भिन्न भाषाओं के भी हो सकते हैं; यथा—

यौगिक शब्द—दो भाषाओं पर आधारित—बेकाम (बे-फा. + काम—हिंदी), डाक्टर (डाक्टर—अंग्रेजी + ई—हिंदी प्रत्यय)

5.4.1. मूल-शब्द

भक्तिकालीन भाषा के तत्सम वर्ग में मूल शब्दों की संख्या सर्वाधिक है। भाव-अभिव्यक्ति की नींव इस शब्दावली पर आधारित होती है। ऐसे शब्दों का विस्तार विभिन्न क्षेत्रों में है। इस वर्ग के कुछ प्रतिनिधि शब्द दिए जा रहे हैं—

अंत, काल, कुच, गज, गति, गृह, जल, तट, दृग, पवन, पीत, मधु, मुख, रवि, हरि आदि।

5.4.2. यौगिक शब्द

यौगिक शब्द, मूल शब्द में उपसर्ग या प्रत्यय के योग से बनते हैं। संस्कृत के प्रत्येक उपसर्ग और प्रत्यय का प्रयोग भक्तिकाल की भाषा की तत्सम शब्दावली में देख सकते

हैं उपसर्ग आधारित यौगिक शब्दों की संख्या प्रत्यय-आधारित यौगिक शब्दों की संख्या से कहीं अधिक है—

अकथनीय, अचल, अमोघ, दुर्लभ, निर्मल, प्रतिबंध, सदाचार, सरोज, सुमति आदि।

5.4.3. योगरूढ़ शब्द

योगरूढ़ वे शब्द हैं जो दो मूल शब्दों अथवा एक मूल और एक शब्दांश के योग से बने हों। इनमें दोनों पदों के स्थान पर कोई तीसरा पद प्रधान होता है। इसे बहुब्रीहि समास भी कह सकते हैं; यथा—

कमलाकांत, चतुर्भुज, दयानिधि, भानुसुता, भुवनपति, पद्मासन, परमानन्द, पीतांबर।

5.4.4. सामासिक शब्द

सामासिक शब्दावली प्रायः तद्भव वर्ग में विशेष रूप से मिलती है, किंतु तत्सम शब्दावली में भी ऐसे कुछ शब्द मिल जाते हैं; यथा—

कटितर, कविध्वज, चन्द्रकला, भूविलसति।

5.5. वैयाकरणिक वर्गीकरण

जब किसी व्यक्ति, वस्तु अथवा स्थान आदि के विषय में कुछ कहना चाहते हैं तो मन में उससे संबंधित अनेक भावों का उदय होता है। इन भावों को अभिव्यक्ति के लिए प्रयुक्त शब्दों के उतने ही वर्ग किए जा सकते हैं जिनसे प्रकार के भाव होते हैं। यदि इस रूप में शब्दों का वर्गीकरण करना चाहें तो प्रमुख रूप से निम्नलिखित वर्ग बनते हैं—

संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया, विशेषण तथा अव्यय। सभी भाषाओं में इन सभी वर्गों के शब्दों का आवश्यकतानुसार उपयोग कर भावाभिव्यक्ति की जाती है। भाषा में शब्दों का उतना महत्त्व नहीं होता जितना कि भावाभिव्यक्ति का। विभिन्न वर्गों में प्रयुक्त होने वाले तत्सम शब्दों में संज्ञा शब्दों की संख्या सर्वाधिक है। विशेषण तथा अव्यय शब्दों की संख्या सीमित है, तो क्रिया शब्दों की संख्या इनसे अधिक किंतु संज्ञा शब्दों से कम मिलती है। तत्सम रूप में प्रयुक्त होने वाले शब्द-वर्गों में सर्वनाम शब्द-वर्ग सबसे छोटा है। शब्द समूह के शब्दों को निम्नलिखित वर्गों में विभक्त कर सकते हैं—

5.5.1. संज्ञा

जिस शब्द से किसी जीव-जंतु, वस्तु स्थान आदि के नाम की सूचना मिले उसे

संज्ञा शब्द कहा जाता है; यथा—मृग, जलज, लेखनी, गज, विशाखापट्टनम् आदि। हिंदी शब्द-समूह में भक्ति काल के संज्ञा शब्दों का महत्वपूर्ण स्थान है। इस प्रकार के शब्दों की संख्या भी सर्वाधिक है। इन शब्दों को अकारान्त, आकारान्त, इकारान्त, ईकारान्त, उकारान्त, ऊकारान्त तथा ऋकारान्त आदि उपवर्गों में विभक्त किया जा सकता है।

1. अकारान्त

हिंदी शब्द-समूह के संज्ञा वर्ग में अकारान्त शब्दों की संख्या सर्वाधिक होती है। जिन शब्दों के अंत में 'अ' ह्रस्व अकार से निर्मित अक्षर हो उसे अकारान्त शब्द कहा जाता है। यहां पर कुछ शब्दों को उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत किया जा रहा है जिनके उद्धरण पीछे दिए जा चुके हैं—

अंक	अंकुर	अंग	अंगार
अंगीकार	अंजन	अंजनि कुमार	अंड
अंबर (वस्त्र)	अंबरीष	अंबुद	अंबुधर
अंबुनाथ	अंभोज	अंभोद	अंभोरुह
अक्षर	अखंडानन्द	जगजगनाथ	अजगर
अजामिल	अभितथ	अधर	अधीश
अध्यक्ष	अनंग	अनिल	अनुचर
अनु	अनुभव	अभिलेख	अभ्यंतर
अमानुष	अमृत	अम्ल	अरण्य
अर्क	अर्थ (धन)	अलंकार	अवधूत
अवधेश	असुर	अहम	अहंकार
आगार	आत्मन	आदेश	आधार
आनंदवन	आनन	आराम (वन)	आलस
आलोक	आवृत	आश्रम	आसन
आहार	इंदीवर	इंदुकर	इन्द्र
इन्द्रजाल	ईधन	इतिहास	उग्रसेन
उत्तर	उत्पल	उत्सव	उदर
उपदेश	उपद्रव	उपनिषद्	पवीत
उपहार	उपहास	उपाय	उपासक
उलूक	उष्णकाल	ऊषर	ऋतुनाथ
ऐश्वर्य	ओदन	कंज	कंठ
कंदर	कच	कज्जल	कटिपूत्र
कथन	कनक	कनक-पत्र	कपाल

कपिल	कपीश	कपोल	कपोल
कर करतल	करताल	कर्पूर	कर्म
कलधौत	कलहंस	कलह	कलाधर
कलिकाल	कलियुग	कवच	कवीश्वर
कांचन	कारागृह	कालकूट	कालनाथ
काव्य	किजल्क	किन्नर	किरण
किरात	किरीट	कोट	कीर
कुंकुम	कुंज	कुंजर	कुंड
कुंभ	कुंभज	कुक्कुट	कुच
कुटुंब	कुबेर	कुमार	कुमुद
कुरंग	कुसुम	कूप	कूबर
कृष्ण	केदार	कैलिंग	केसर
कोक	कोकिल	कोट (किला)	कोटर
कोदंड	कोय	कोल	कोविद
कोशल	क्रोड	क्रोध	क्लेश
क्षीरसागर	क्षुर	खंग	खंजन
खग	खगनाथ	खगराज	खद्योत
गंगाधर	गंध	गंधर्व	गगन
गज	गजराज	गरल	गर्त
गर्भ	गर्व	गति	गुच्छ
गृध्र	गृह	गृहपाल	गोकुल
गोधन	गोपाल	गोपीनाथ	गोमुख
गोरस	गोरोचन	ग्रंथ	ग्राम
ग्रास	ग्राह	घट (पिंड)	घट (घड़ा)
घन	घनश्याम	धृत	चंचरीक
चंडाल	चंदन	चंद्र	चंद्रिका
चंपक	चकोर	चक्र	चक्रधर
चक्रवाक	चतुरानन	चरण	चर्म
चातक	चाप	चिकुर	चित्र
चित्रकार	चित्रकूट	चित्रगुप्त	चिबुक
चीर	चेटक (जादूविद्या)	चेटक (दास)	चोर
चोल	छत्रक	छिद्र	जगदेव
जगन्नाथ	जगधर	जनक	जनपद
जनवास	जल	जलंधर	जल

जलकुक्कुट	जलचर	जलज	जलद
जलधर	जलरूह	जातक	जाच
जाल	जीव	जूट	ज्वर
टिट्ठिभ	ढोल	तट	तनय
तमाल	तमीचर	तरंग	तांबूल
तात	तामरस	तार	तिमिर
तीर	तीर्थाटन	तुरंग	सोय
त्रिलोक	दल	दान	दास
दिनेश	दिवस	दीप	दीपक
देव	दैत्य	द्रव्य	द्विज
धाम	धूप	ध्रुव	ध्वज
नंद	नकुल	नख	नायक
निकेत	नीरज	नूपुर	नृपाल
नैवेद्य	पंक	पट	पतंग
पाताल	पाप	पिंडरोग	पीठ
पीतांबर	पुत्र	पुरीष	पूत
पृष्ठ	पेट	प्राण	बधिर
बाल	बीज	ब्रह्म	भक्त
भाजन	भाल	भुवन	भोजन
मंदिर	मातुल	मित्र	मुकुट
मूल	मृग	मेघ	मैनाक
यज्ञ	रघुनाथ	रद	राजन
रुंधिर	रोग	लक्ष्मण	ललाट
लवंग	वदन	वन	वरुण
वसन	वस्त्र	वाचक	वामन
विज्ञान	विद्युत	विप्र	वृषभ
वेद	वेदांत	व्याल	शंख
शरासन	सर्वरीश	शशांक	शस्त्र
शाप	शिर	शीश	श्रीखंड
श्रीफल	षडानन	संग्राम	संपुट
संसार	संस्कृत	सचिव	सच्चिदानन्द
सदन	सन्निपात	सभासद	समाचार
समास	समीर	समुद्र	सरसिज
सरोरुह	सरोज	सरोवर	सर्प

सर्पराज	सलिल	सागर	साधक
सार (लोहा)	लाल (विशेष वृक्ष)	सिंदूर	सिंह
सिंहासन	सीकर	सुग्रीव	सुत
सुधाकर	सुमन	सुरंग	सुर
सेवक	सोपान	सोम	सोमवार
सौमित्र	स्रोत	स्वयंवर	स्वर्ग
स्वेद	हंस	हर (वध करने वाला)	हरिजन
हरिरस	हलधर	हलाहल	हस्त
हार (माला)	हिम	हिमकर	हिमाचल
हीरक	हृदय	हेम	होम

2. आकारान्त

हिंदी शब्द-समूह के ऐसे संज्ञा शब्द जो आकारान्त हैं, उन्हें इस वर्ग में स्थान दिया जा सकता है। प्रारंभ में दिए गए उद्धरणों के आधार ही शब्दों के आकारान्त वर्ग को प्रस्तुत किया जा रहा है—

अंब	अंबा	अंबिका	अणिमा
अभिप्रिया	अनुजा	अबला	अभिलाषा
अहल्या	आत्मजा	आत्मा	आपदा
इंदिरा	उपमा	उपासना	ऋचा
कथा	कन्या	कमला	कला
कलिदंजा	कल्पना	कविता	काकसुता
कालिका	कोकिला	कोशलसुता	गंगा
गणिका	गदा	गया	गाथा
गिरा	गुहा	गोपिका	ग्रीवा
चंद्रिका	चपला	चिता	छाया
जंघा	जाया	ज्वाला	तनया
तनुजा	तपस्या	तारा	तृष्णा
दीपिका	दुहिता	नौका	पिपासा
प्रतिभा	प्रियतमा	मज्जा	रमा
राका	रेखा	लंका	ललना
संध्या	सारिका	सिकता	सुता
सुदामा	सुधा	सुरसा	सुरा
सेना	स्रष्टा	होलिका	

3. इकारान्त

वे संज्ञा शब्द जिनके अंत में 'इ' की मात्रा का प्रयोग रहता है, इकारान्त कहलाते हैं। ऐसे शब्दों को इस वर्ग में रखा जा सकता है—

अंगुलि	अंजलि	अंबिकापति	अंबुधि
अंबुनिधि	अंबुपति	अतिथि	आर्यपति
अदिति	अरि	अलि	अलिपति
अवनि	अस्थि	अहिपति	आहुति
उडपति	उदयगिरि	उपाधि	ऋतुपति
ऋषि	कटि	कवि	कमलापति
कलानिधि	कवि	कालाग्नि	कृमि
क्षीराब्धि	खगपति	गजपति	गिरि
चिंतामणि	जन्मभूमि	जलाधि	जाबालि
दृष्टि	प्रकृति	भूमि	मसि
लिपि	वर्ति	वोचि	शशि
श्रीषति	संस्ति	समाधि	सुरपति
सुरसरि	सेनापति	स्वाति	हरि
हिमगिरि			

4. ईकारान्त

जिन शब्दों के अंतिम अक्षर में 'ई' की मात्रा का प्रयोग रहता है उसे ईकारान्त संज्ञा शब्द कहा जाता है; यथा—

अंजनी	अनुचरी	अवनिकुमारी	कदली
कल्लोलिनी	कामिनी	काशी	किन्नरी
कुटी	गायत्री	गोपी	गौरी
चेल्ली	चोली	जननी	डाकिनी
नटिनी	देवी	नृपनारी	भृकुटी
रजनी	लंकिनी	लेखनी	वंशी
वाणी	शर्वरी	संजीवनी	संन्यासी
सुंदरी	सुकुमारी	स्वामिनी	हस्तिनी।

5. उकारान्त

जिन शब्दों के अंतिम अक्षर में 'उ' की मात्रा का प्रयोग होता है उन्हें उकारान्त शब्द कहा जाता है। ऐसे शब्द निम्नलिखित हैं—

कामधेनु	आयु	इंदु	ऋतु
जंतु	कालकेतु	केतु	चंचु
	तरु	धेनु	बंधु

6. ऊकारान्त

हिंदी शब्द-भंडार के जिन शब्दों के अंतिम अक्षर में 'ऊ' की मात्रा लगी होती है उन्हें ऊकारान्त शब्द कहा जाता है। यहां कुछ शब्दों को उदाहरण-स्वरूप प्रस्तुत किया जा रहा है जिनके उद्धरण प्रारंभ में दिए गए हैं। इस प्रकार के संज्ञा शब्दों की संख्या अकारान्त, आकारान्त, इकारान्त आदि से कम है।

अनुजवधू	डमरू	भू
---------	------	----

7. ऋकारान्त

हिंदी शब्द समूह में कुछ शब्द ऋकारान्त भी मिलते हैं किंतु ऊपर वर्णित सभी वर्गों के शब्दों की अपेक्षा इनकी संख्या कम है। संख्या कम अवश्य है, किंतु इन शब्दों के महत्व की नकारा नहीं जा सकता है—

पितृ	मातृ	भातृ	आदि
------	------	------	-----

5.5.2. सर्वनाम

शब्द भंडार में सर्वनाम शब्दों का विशेष महत्व है। सर्वनाम शब्दों पर कार्य करने वाले उल्लेखनीय भाषाविदों के नाम निम्नलिखित हैं—डॉ. सुनीति कुमार चाटुर्ज्या, डॉ. उदय नारायण तिवारी, डॉ. हरदेव बाहरी, डॉ. भोलानाथ तिवारी आदि। तद्भव रूप में प्रयुक्त होने वाले सर्वनाम शब्दों पर विशद रूप से विचार होने के बाद भी तत्सम सर्वनाम शब्दों पर हुआ विचार न के बराबर है। डॉ. हरदेव बाहरी ने (हिंदी : उद्भव, विकास और रूप—1970, पृ. 137) सर्वनाम विषय का विचार व्यक्त किया है—

“हिंदी के प्रायः सभी सर्वनाम तद्भव हैं।”

डॉ. भोलानाथ तिवारी के (शब्दों का अध्ययन—1969, पृ. 16) विचार में भी थोड़ा ही अंतर है उनका कथन है, “हिंदी भाषा में प्रयुक्त होने वाले तत्सम सर्वनाम शब्दों की संख्या दी है।”

हिंदी भाषा में तत्सम शब्दों के प्रयोग की प्रवृत्ति ज्यों-ज्यों जोर पकड़ती जा रही है त्यों-त्यों सर्वनाम शब्दों का भी तत्सम रूप में होने वाला प्रयोग बढ़ता जा रहा है। भक्ति काल में तत्सम रूप में प्रयुक्त होने वाले सर्वनाम शब्दों की संख्या तीन हैं। ये शब्द निम्नलिखित हैं—

अयं	अहं	इदं
-----	-----	-----

5.5.3. विशेषण

जिन शब्दों से संज्ञा अथवा सर्वनाम की विशेषता का आभास होता है उन्हें विशेषण कहा जाता है। तत्सम रूप में प्रयुक्त होने वाले शब्दों में संज्ञा के बाद विशेषण का स्थान है। तत्सम विशेषण रूप में प्रयुक्त होने वाले शब्दों में गुणवाचक शब्दों की संख्या सर्वाधिक है। संख्या वाचक शब्दों की संख्या गुणवाचक शब्दों की संख्या की अपेक्षा कम है। इन शब्दों की कमी का मुख्य कारण यह है कि ये शब्द मुख्य रूप से तद्भव रूप में प्रयुक्त होते हैं। कुछ प्रमुख तत्सम विशेषण शब्दों का उल्लेख किया जा रहा है—

अंकित	अकथ	अकलंक	अकाल
अकिंचन	अक्षय	अखिल	अगणित
अगाध	अगेह	अगोचर	अग्र
अगण्य	अग्रज	अधो	अचंचल
चल	अचेत	अजित	अज्ञ
अटल	अतिकाय	अतुल	अत्यंत
अदंड	अद्वितीय	अधम	अधिक
अधीर	अनति	अनध	अनन्य
अनवरत	अनवसर	अनाथ	अनाम
अनामय	अनायास	अन्नदाता	अनुकूल
अनुगत	अनुचित	अनुपम	अनुमोदन
अनुरूप	अनूप	अनेक	अपगत
अचर	अपार	अपुनोत	अप्रिय
अकल	अनल	अभिजित	अभिमत
अभीष्ट	अभेद	अमंगल	अमर
अमित	अमृत	अमोघ	अम्ल
अरिमर्दन	अर्द्ध	अजित	अलभ्य
अलौकिक	अल्प	अविकल	अविरल
अव्यक्त	अशुभ	अशेष	अष्ट
असज्जन	असत्य	अशुभ	अशेष
अष्ट	असज्जन	असत्य	असम
असम्मत	असहाय	असाधु	अस्त
अहित	आकुल	अक्षिप्त	आद्य
आतुर	आदि	आमरण	अमित
आरूढ़	आवृत	आश्रित	असक्त

आसीन	इच्छित	इतर	इष्ट
उग्र	उचित	उच्च	उत्कट
उदार	उदास	उदित	उन्नत
उपासक	उभय	एक	एकांत
कटु	कठिन	कठोर	कराल
कलित	कलिल	कलुष	कुटिल
कुरूप	कुलीन	कृत	कृपालु
कैवल्य	कोमल	कोल	क्रुद्ध
क्रूर	क्षिप्र	खचित	ख्यात
गत	गहन	गाढ़	गुप्त
मुखी	ग्राम्य	घटित	घातक
घोर	चंचल	चंचला	चकित
चतुरंग	चतुर	चपल	चरम
चराचर	चंचित	चलित	चारु
चालक	चीर	जटिल	जटित
जठर	जनिता	जर्जर	क्षय
तज्ञ	तरुणि	तरुण	दक्ष
दरिद्र	दिव्य	दृढ़	धन्य
धवल	निरुत्तर	नीच	नूतन
पंगु	पिपासा	पृथुल	पोषक
प्रचंड	प्रौढ़	बाधक	भिन्न
भूषित	भौतिक	मंजल	मृदु
रंक	लघु	ललाम	ललित
लहरी	लोलुप	लोहित	वर्धन
वशवर्ति	वाम	विपुल	विशुद्ध
विषम	शुचि	शूल	श्याम
श्रामित	श्रुत	षडानन	संकट
सकाम	सधन	सजीव	सदय
सनाथ	सप्त	सकल	सबल
सम	समचर	समस्त	समान
समीचीन	समीप	सरल	सरस
सलज्ज	सहज	सहस्र	सहित
सहोदर	सादर	साध्य	सानन्द
सावधान	सित	सिद्ध	सुकंठा

सुकमार	सुकमारी	सुगम	सुदृढ़
शुचि	सुभग	सुलभ	सेव्य
स्थिति	स्वच्छंद	स्वतंत्र	स्वल्प
स्वाधीन	हत	हतभाग्य	हरित
हानिकर	हिसक	हिसा	हिम
हिमकर	हृष्ट		

5.5.4. क्रिया

जिन शब्दों के द्वारा किसी वस्तु के विषय में कुछ विधान की जानकारी प्राप्त करते हैं, उन्हें क्रिया शब्द कहा जाता है। हिंदी-भाषा में अधिकांश शब्द तद्भव रूप में प्रयुक्त होते हैं। तत्सम क्रिया शब्दों के प्रयोग की बढ़ती हुई प्रवृत्ति के कारण होना, करना आदि क्रिया के साथ संस्कृत का कृदंत रूप प्रयुक्त होता है; यथा—

अलंघन (करना), परिचित (होना), संतोष (करना), स्वीकार (करना) आदि।

इस प्रकार प्रयुक्त होने वाले शब्दों की संख्या, संज्ञा तथा विशेषण शब्दों की अपेक्षा नगण्य है।

5.5.5. अव्यय

अव्यय का शाब्दिक अर्थ है व्यय न होना। यहां पर 'व्यय' शब्द विशेष अर्थ में प्रयुक्त होता है जिसका अर्थ परिवर्तन न हो तथा रूप न बदले। अव्यय शब्द के अपरिवर्तित रूप को चर्चा करते हुए कहा गया है—

“सदृशं भिषु लिंगेषु सर्वासु च विभक्तिषु, वचनेषु च सर्वेषु यन् व्यति तदव्ययम्।”

अर्थात् जो शब्द लिंग, विभक्ति, वचन आदि के परिवर्तित होने पर भी परिवर्तित न हो उसे अव्यय कहा जाता है। यह परिभाषा अधिकांश शब्दों के विषय में सत्य सिद्ध होती है। हिंदी भाषा में प्रयुक्त होने वाले अव्यय शब्दों में तद्भव शब्दों की संख्या तत्सम शब्दों की अपेक्षा अधिक है। भक्ति काल में प्रयुक्त होने वाले प्रमुख तत्सम अव्यय शब्द निम्नलिखित हैं—

अति	अथवा	अध	अनुदिन
अन्यथा	अपि	अभि	अरे
अस्तु	अहह	अहो	आजन्म
इति	इव	एव	ओंकार
कत	अरिति	तथा	आदि
पुनः	विना (बिना)	स्वयं	वृथा
मिथ्या	प्रायः	वा एवम् धिक् हो तु (तो)	

वत् प्रत्यान्त, जैसे ब्राह्मणवत्, यत्र तत्र तथा अतः यदा कदा तः प्रतायन्त जैसे संभवतः, कर (कृत्वा), देख (देखकर) प्रति

5.6. तत्सम शब्दों के आगमन के कारण

पुरानी हिंदी में तद्भव शब्दों की बहुलता थी। यह संख्या वीरगाथा काल की भाषा में अपेक्षाकृत कुछ कम हुई, किंतु उस समय भी तद्भव शब्दों का पर्याप्त प्रयोग होता था। भक्ति काल में तत्सम शब्दों के प्रयोग की प्रवृत्ति बढ़ी है, जिससे तद्भव शब्दों का प्रयोग अपेक्षाकृत कम हो गया। इस काल की भाषा में तत्सम शब्दों के प्रयोग के निम्नलिखित कारण हैं—

5.6.1. पर्याय संपन्नता

हिंदी की सशक्त भावाभिव्यक्ति का एक मुख्य आधार है—पर्याय संपन्नता। हिंदी भाषा में एक-एक शब्द के लिए कई-कई समानार्थी शब्दों का प्रयोग मिलता है। ऐसे शब्दों के विषय में चिंतन करने पर ज्ञात होता है कि ये शब्द आपस में समानार्थी होते हैं, किंतु एकार्थी कम होते हैं। किसी शब्द के पर्यायी शब्दों के प्रयोग से भाषा में जहां नवीनता आती है वहीं भावाभिव्यक्ति में सशक्तता भी आती है। किसी भाषा की शब्दावली की श्रेष्ठता उसकी पर्याय संपन्नता है। हिंदी के पर्याय शब्द जग-प्रसिद्ध हैं। पानी के लिए हिंदी में जल, वारि, नीर, तोय, अम्बु आदि शब्दों का प्रचलन है। भक्ति काल की भाषा को समृद्ध अर्थात् पर्याय बनाने के लिए विभिन्न तत्सम शब्दों के प्रयोग किए गए हैं।

5.6.2. सांस्कृतिक अभिव्यक्ति

भारतीय संस्कृति की सच्ची संवाहिका संस्कृत भाषा है। संस्कृत के शब्दों के माध्यम से भारतीय संस्कृति की सशक्त और प्रभावोत्पादक अभिव्यक्ति होती है। भक्तिकाल के साहित्य में भारतीय संस्कृति की अनूठी धारा प्रवाहित करने के लिए भक्त कवियों ने संस्कृत की तत्सम शब्दावली का प्रयोग किया है। संस्कृति संवाहिक होने के आधार पर उक्त भाषा का नाम संस्कृत रखा गया है।

5.6.3. परराष्ट्रीय शब्दावली के बोझ से हिंदी को मुक्त करने का प्रयत्न

अधिकांश भाषाविदों का यह मतव्य है कि हिंदी-भाषा को परराष्ट्रीय शब्दों के बोझ से मुक्त करने के लिए भारतीय विद्वानों तथा साहित्यकारों ने तत्सम शब्दों का अधिकाधिक प्रयोग किया है। भक्तिकाल की भाषा पर विचार करने से यह मतव्य अत्यधिक सत्य प्रतीत होता है। परराष्ट्रीय शब्दों के स्थान पर तत्सम शब्दों के प्रयोग में उस समय के

साहित्यकार पूर्ण सजग तथा सर्तक दिखते हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि हिंदी में तत्सम शब्दों का प्रयोग उस समय जोर पकड़ा जब हिंदी भाषा में परराष्ट्रीय शब्दों की प्रचुरता हो गई थी।

5.6.4. शैलीय आवश्यकता

प्रत्येक व्यक्ति की विशेष शैली होती है, प्रत्येक भाषा की भी अपनी शैली होती है। समय और आवश्यकतानुसार व्यक्ति और भाषा दोनों की शैली में परिवर्तन होता रहता है। इस परिवर्तन के अव्यक्ति और भाषा के जीवन में नवीनता आ जाती है। वीरगाथा काल की भाषा परराष्ट्रीय और तद्भव शब्दावली बहुला भाषा थी। भक्ति काल को भाषा में नवीनता और आकर्षण लाने के लिए तत्सम शब्दावली बहुला नयी शैली का प्रयोग किया गया है। यह पूर्ण सत्य तथ्य है कि तत्सम शब्दावली आधारित हिंदी भाषा का विकसित रूप आधुनिक काल में मिलता है, किंतु भक्ति काल की भाषा इस दृष्टि से अपने विकासशील पथ पर दृष्टिगोचर होती है। भक्तिकाल के निर्गुण धारा के प्रमुख कवि कबीरदास की वाणी में तत्सम शब्दावली के बढ़ते प्रयोग को देख सकते हैं—

“झूठे सुख को सुख कहे मानत है मन मोद।”

प्रेमाश्रयी छवि जायसी की भाषा में भी उक्त शैली का रूप मिलता है—

“तन चितउर मन राजा कीन्हा।

हिय सिंहल बुधि पद्मिनी चीन्हा ॥

गुरु सुआ जेहि पंथ दिखावा ॥”

महाकवि तुलसीदास की भाषा में भी उक्त शैली रूप देख सकते हैं—

“शिव द्रोही मम दास कहावा।

सो नर सपनेहु मोहिन पावा ॥”

“काम क्रोध, लोभादि मद, प्रलय मोह के धारि।”

5.6.5. विशेष संकल्पना

भाषा में कुछ शब्द ऐसे होते हैं, जिनके स्थान पर किसी अन्य शब्द का प्रयोग संभव नहीं होता है। भाव-विशेष की अभिव्यक्ति के लिए ऐसे अपर्यायी शब्दों का प्रयोग अनिवार्य होता है। भक्ति काल में ऐसे अनेक तत्सम शब्दों का प्रयोग हुआ है। तुलसीदास ने नारी स्वतंत्रता के विषय में ‘महावृष्टि’ शब्द का विशेष अर्थ में प्रयोग किया है—

“महावृष्टि चलि फूटि कियारो। जिमि सुतन्त्र भए विगरहि नारी।”

इन प्रमुख कारणों के अतिरिक्त व्यक्तिगत अभिरुचि, स्वभाषा-प्रेम और नवीनता आदि भी तत्सम शब्दों के प्रयोग के कारण हैं। मानक हिंदी या विश्व हिंदी तत्सम शब्द प्रधान होती जा रही है।

हिंदी शब्द समूह में द्वितीय महत्वपूर्ण वर्ग तद्भव शब्दों का है। शब्द संख्या के आधार पर यह वर्ग सबसे बड़ा है। हिंदी साहित्य के प्राचीन काल में तद्भव शब्दों की संख्या आधुनिक काल में तद्भव शब्दों से कहीं अधिक थी। इस विषय में सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि हमारे देश में जहां पाणिनि जैसे भाषाचिंतक का जन्म हुआ और उनकी परंपरा का विकास हुआ उसी देश में इस महत्वपूर्ण शब्द समूह के विषय में विशेष कुछ कार्य नहीं हुआ। इस क्षेत्र की अब तक की उपेक्षा का कोई सुदृढ़ कारण नहीं दीखता है।

बीसवीं शताब्दी में हिंदी भाषा को संस्कृतनिष्ठ बनाने का लक्ष्य स्पष्ट दीखता है, जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, सुमित्रानंदन पंत तथा महादेवी आदि का साहित्य इस बात का पुष्ट प्रमाण है। आधुनिक युग के साहित्य में अन्य युगों के प्रयुक्त होने वाले तद्भव शब्दों की संख्या अपेक्षाकृत कम है। ये शब्द प्राचीन काल से उत्तरोत्तर कम होते चले आए हैं। वीरगाथाकाल में ऐसे शब्दों की संख्या सर्वाधिक होने का मुख्य कारण पालि तथा प्राकृत रूप में शब्दों का प्रयोग है। भक्तिकाल का साहित्य मुगल शासन काल में रचा गया है। देश में फारसी तथा अरबी भाषा के प्रचार-प्रसार से इनके शब्द हिंदी भाषा में आए हैं। भक्तिकाल के अधिकांश कवि रमते-राम थे। देश के कोने-कोने में विचरण करते हुए अनेक क्षेत्रीय भाषाओं के शब्दों को अपनाकर अपने भावाभिव्यक्ति करते रहे हैं। इस प्रकार तद्भव शब्दों को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हो गया है। क्षेत्रीय भाषाओं तथा बोलियों में तद्भव शब्दों की संख्या इतनी अधिक होती है कि यदि इनको तद्भव शब्दों के आधार पर निर्मित होने वाली बात कही जाए तो अत्युक्ति न होगी। क्षेत्रीय भाषा के आधार पर महाकवि तुलसीदास द्वारा रचित विश्व प्रसिद्ध पुस्तक रामचरितमानस के अयोध्या कांड के 319/4 चौपाई का उदाहरण द्रष्टव्य है—

हृदय रामु सिय लखन समेता।

चले जाहिं सब लोग अचेता ॥

बसह बाजि गज पसु हियें हारे।

चले जाहिं परबस मन मारे ॥

अवधी क्षेत्रीय भाषा होते हुए भी हिंदी साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किए हुए है। इसका विकसित रूप देखकर देशवासियों को इस पर गर्व होता है। हिंदी साहित्य में प्रयुक्त अवधी के दो रूप हैं। ऊपर उद्धृत पंक्तियों जो कि रामचरित मानस से संबंधित हैं को साहित्यिक-अवधी की श्रेणी में रखा जा सकता है। साहित्यिक अवधी होने पर भी तद्भव शब्दों की बहुलता है। तद्भव शब्दों के प्रयोग का सच्चा स्वरूप तो बोली में देखा जा सकता है। ऐसी भाषा को 'ठेठ' कहा जा सकता है। जायसी कृत पद्मावत इसी प्रकार की भाषा के आधार पर लिखा गया काव्य है। पद्मावत के सुवा खंड के पद में वर्णित एक भाव की भाषा उद्धृत है।

पदुमावति पेंह आइ भंडारी। कहेसि मंदिर मंह परी मंजारी।
सुआ जो उत्तर देत हा पूंछा। उड़ि गा पिंजर न बोलै छूँछा।

तद्भव शब्दों की संख्या और उनके महत्व को दृष्टि में रखकर कहा जा सकता है कि हिंदी शब्द-समूह का मुख्य वर्ग तद्भव है और इसके अध्ययन के प्रति विशेष रुचि होनी चाहिए।

6.1 परिभाषा

हिंदी शब्द-समूह के महत्वपूर्ण वर्ग तद्भव की परिभाषा के विषय में सभी विद्वानों तथा भाषा-वैज्ञानिकों में मतैक्य है। प्रत्येक भाषा-वैज्ञानिक ने भिन्न-भिन्न शब्दों के माध्यम से एक ही भाव को व्यक्त करने का प्रयत्न किया है। इस प्रकार सभी विद्वानों में मतैक्य होने के कारण परिभाषा के विषय में विशेष चिंतन की आवश्यकता नहीं है। यहां पर भाषा-वैज्ञानिकों के मतैक्य के भाव को सिद्ध करने के लिए कुछ प्रमुख परिभाषाओं को प्रस्तुत किया जा रहा है—

6.1.1. पं. कामताप्रसाद गुरु

हिंदी भाषा के महान् वैयाकरण पं. कामताप्रसाद गुरु ने शब्द-समूह पर विचार करते हुए तद्भव शब्द की परिभाषा का भी उल्लेख किया है। गुरु ने (हिंदी व्याकरण—पृ. 23) तद्भव शब्द की परिभाषा निम्न प्रकार दी है—

“तद्भव वे शब्द हैं जो या तो सीधे प्राकृत से हिंदी भाषा में आ गए हैं या प्राकृत के द्वारा संस्कृत से निकले हैं।”

6.1.2. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा

भाषा-विज्ञान के प्रसिद्ध विद्वान् डॉ. धीरेन्द्र वर्मा ने (हिंदी भाषा का इतिहास—सं. 1953, पृ. 69) तद्भव की परिभाषा निम्न प्रस्तुत की है—

“हिंदी शब्द-समूह (के वे शब्द) जो प्राचीन आर्यभाषाओं से मध्यकालीन भाषाओं में होते हुए चले आ रहे हैं।”

6.1.3. डॉ. भोलानाथ तिवारी

भाषाविज्ञान के अधिकारी विद्वान् डॉ. भोलानाथ तिवारी ने (हिंदी भाषा—1972, पृ. 650) तद्भव शब्दों का मूल स्रोत संस्कृत को बतलाते हुए उसकी परिभाषा निम्न प्रकार दी है—

“वे शब्द जो ‘तत्’ अर्थात् संस्कृत से ‘भव’ अर्थात् उत्पन्न या विकसित हों।”

ऊपर उद्धृत परिभाषाओं में पं. कामताप्रसाद गुरु तथा डॉ. धीरेन्द्र वर्मा की परिभाषाएं पूर्ण समान हैं। दोनों ही परिभाषाओं में कहा गया है कि जब संस्कृत के शब्द प्राकृत के माध्यम से हिंदी में आते हैं अथवा प्राकृत भाषा के शब्द सीधे हिंदी भाषा में आते हैं तो उन्हें तद्भव की संज्ञा दी जाती है। डॉ. भोलानाथ तिवारी ने संस्कृत भाषा से आने वाले शब्दों को ही तद्भव कहा है। प्राकृत भाषा से आने वाले शब्दों के विषय में उन्होंने कोई चर्चा नहीं की है।

हिंदी भाषा में आने वाले शब्दों का वे चाहे संस्कृत भाषा के हों अथवा विदेशी भाषा के सबका समान रूप से विश्लेषण करना चाहिए। यदि संस्कृत शब्दों को उनके परिवर्तित तथा अपरिवर्तित रूप को ध्यान में रखकर तद्भव तथा तत्सम वर्गों में विभक्त किया जा सकता है तो अन्य विदेशी शब्दों का विभाजन इसी प्रकार करना चाहिए। विदेशी भाषा के कुछ शब्द अपरिवर्तित रूप में प्रयुक्त होते हैं; यथा—अंगूर, कारगर, कुरती, बदनाम, रेशमी, रोशन आदि। कुछ शब्द कभी-कभी परिवर्तित रूप में प्रयुक्त होते हैं यथा—अन्दाजा (अन्दाजः), कमीना (कमीनः), पशमीना (पशमीनः), स्याह (सियाह) आदि।

6.2. शब्द प्रयोग

1. अंकवारि (अंकपालिका), उदा.—हरखि ब्रजनारि भरि लेत अंकवारि।
(सूर. 2367/3)
2. अंका (अंक), उदा.—तुम्ह सन मिटिहि कि विधि के अंका।
(तुलसी मा. 1/21/4)
3. अंकुरे (अंकुर), उदा.—महामत गजराज कहूँ बसकर अंकुर खर्व।
(तुलसी मा. 1/56/256)
4. अंकुस (अंकुर), उदा.—महामत गजराज कहूँ बसक अंकुस खर्व।
(तुलसी मा. 1/56/256)
5. अँकोर (अंकमाल), उदाह.—मीरां के प्रभु हरि अविनासी देख्युँ प्राण अँकोर।
(मीरा. 5)

6. अँखियाँ (अक्षि), उदा.—अँख्याँ तरशा दरसण प्याली ।
7. अँखियनु (अक्षि), उदा.—चितवनि बसति कनखियनु अँखियनु, बीच ।
(मारी. 45)
8. अँखियाँ (अक्षि), उदा.—मेरी अँखियाँ जान सुजान भई ।
(तुलसी. ब. 30)
9. अँगइ (अंग), उदा.—सिद्धि कुबलो साँसति सकल, अँगइ अनट अपमान ।
(कबीर प. 304/1)
10. अंगरयौ (अंगीकार), उदा.—जाको हरि दृढ करि अंगकरयो ।
(तुलसी, दो. 466)
11. अंगन (अंगणा), उदा. संग्राम अंगन सुभट सोवहि ।
(तुलसी दो. 232)
12. अंगना (अंगण), उदा. अर्द्ध अंग अंगना अनंग को महान् है ।
(तुलसी मा. 6/88 छंद)
13. अँगनाई (अंगण), उदा.—बरनि न जाइ रुचिर अँगनाई ।
(तुलसी क. 7/160)
14. अँगनि (अंगण), उदा.—बिनगुनबनी माल, सब अंगनि उलटी सकल नितानी ।
(तुलसी मा. 7/73/2)
15. अँगनैया (अंगण), उदा.—छबि छलकिहे भरि अँगनैया ।
(सूर. 2514/6)
16. अँगरी (अंगरक्ष), उदा.—अँगरी पहिरी कँड़ि सिर धवहीं ।
(तुलसी गी. 1/9)
17. अंगा (अंग), उदा.—चोवा चंदन चरचत अंगा ।
(तुलसी मा. 2/191/3)
18. अँगारू (अंगार), उदा.—पाके हटा जनु लाग अँगारू ।
(कबीर प. 93/5)
19. अंगीकारा (अंगीकार), उदा.—करहु तासु अब अंगीकारा ।
(तुलसी मा. 2/161/2)
20. अंगीठ (अग्नि + स्था), उदा.—जे सिर राखो आपणां तो पर सिरिज अंगीठ ।
(तुलसी मा. 1/89/2)
21. अंगीठी (अग्निष्ठिका), उदा.—मीरा री प्रभु गिरधर नागर, दुर्जन जलो जा अंगीठी ।
(कबीर. सा. 13/6/2)
22. अंगुरिन (अंगुलि), उदा.—अंगुरिन खंडि अकास ।
(मीरा. 33)
- (तुलसी ब. 28)

23. अंगुलित्रान (अंगुलित्राण), उदा.—अंगुलिमान कमान बान छबि ।
(तुलसी गी. 7/17)
24. अंगुली (अंगुलि), उदा.—सुभग अंगुष्ठ अंगुलि अंगुलि अबिरल ।
(तुलसी गी. 7/17)
25. अंगुष्ठ (अंगुष्ठ), उदा.—सुभग अंगुष्ठ अंगुली अबिरल ।
(तुलसी गी. 7/17)
26. अँचई (आचमन), उदा.—अँचइ यान सब काहूँ पाए ।
(तुलसी मा. 1/355/1)
27. अँचरा (अंचल), उदा.—म्हारों अँचरा पा छुवैं, बाँको घूँघट खोलों हो ।
(मीरा 181)
28. अंचलि (अंचल), उदा.—तब अंचलि किस कै जागेगा ।
(कबीर, प. 244-5)
29. अँचवति (आचमन), उदा.—अहरनिसि रस अधर अँचवति ।
(सूर. 1916/3)
30. अँचवाइ (आचमन), उदा.—अँचवाइ दीन्हें पान गवने बास जह जाको रह्यो ।
(तुलसी मा. 1/99) छंद)
31. अँचाय (आचमन) उदा. न्हाय धोय जब पीवणं लागी हो अमर अँचाय ।
(मीरा. 18)
32. अंजत (अंजन), उदा.—प्यारी नैनन को अंजन लै, अपने नैनन अंजत है ।
(सूर. 2136/15)
33. अंजन केस (अंजनकेश), उदा.—अंजनकेस सिखा जुवती तँह लोचन सलभ पठानौ ।
(तुलसी. वि. 142)
34. अंजि (अंजन), उदा.—जथा सुअंजन अंजि दृग ।
(तुलसी मा. 1/1)
35. अँजोर (उज्ज्वल), उदा.—भा अँजोर सब जाना बूझा ।
(जाय. 18-3)
36. अँजोरि (अंजलि), उदा.—पैठि उर बरबस दयानिधि दंभलेत अँजोरि ।
(तुलसी वि. 158)
37. अंजोरी (उज्ज्वल), उदा.—रवि सम्मुख द्योत अंजोरी ।
(तुलसी मा. 3/1/1)
38. अँटक (आँटकस), उदा.—मीराँ लागो रंग हरो, औरन अँटक परी ।
(मीरा. 25)

39. अंडकोस (अंडकोश), उदा.—अंडकोस समेत गिरि कानन ।
(तुलसी मा. 5/2/3)
40. अंणीं (अणि), उदा.—साध सती अरु सूर का, अणीं ऊपिला खेल ।
(कबीर सा. 34-8-2)
41. अंतअगार (अंतआगार), उदा.—दूसरा अंतअगार ।
(तुलसी स. 237)
42. अंतरगत (अन्तर्गत), उदा.—ज्यों गूगे मोठे फल को रस अंतरगत ही भावै ।
(सूर. 2/2)
43. अंतरगति (अन्तर्गति), उदा.—यह बिचारि अंतरगति हारति ।
(तुलसी मा. 5/19)
44. अंतरजामिहुँ (अंतर्जामी), उदा. अंतरजामिहुँ ते बड़ बाहरजामि है ।
(तुलसी क. 7/129)
45. अंतरधान (अर्द्धान), उदा. बहुबिधि मुनिहि प्रबोधि प्रभु तब भये अंतरधान ।
(तुलसी मा. 1/138)
46. अंतरधाना (अंतर्धान), उदा.—तूरत भयउ खल अंतरधाना ।
(तुलसी मा. 6/73/6)
47. अंतरबल (अंतर्बल), उदा.—गर्जा अति अंतरबल थाका ।
(तुलसी मा. 6/92/1)
48. अंतरसाखी (अंतर्साक्षी), उदा.—प्रगट कीन्हि यह अंतरसाखी ।
(तुलसी मा. 6/108/7)
49. अंतरहित (अंतर्हित), उदा.—कहि अस अंतरहित प्रभु भयऊ ।
(तुलसी मा. 1/133/1)
50. अंतरा (अंतर), उदा.—द्वादस गम के अंतरा तहाँ अमृत को प्रास ।
(कबीर प. 18/5)
51. अंतरि (अंतर), उदा.—अंतरि भीगी आत्मा, सरी भी बनराइ ।
(कबीर सा. 1/34/2)
52. अंतरिख (अंतरिक्ष), उदा.—परत अंतरिखहि लिहेसि उचाई ।
(मंझ. 332/3)
53. अंतरिच्छ (अंतरिक्ष), उदा.—सुंदर बदन विलोकनि पिय के अंतर भयो तय अंतरिच्छ ।
(नंद 2/26)
54. अंतरे (अंतर), उदा.—गंग जमुन उर अंतरे, सहज सुनि त्यों घाट ।
(कबीर सा. 10/3/1)
55. अंतरोटा (अंतर्पट), उदा.—अंतरोटा अवलोकि के, असुर महामद माते ।
(सूर 44/6)

56. अंतरजामि (अंतर्जामी), उदा.—तुलसी क्यों सुख पाइए अंतर्जामि दूति ?
(तुलसी दो. 411)
57. अंता (अंत), उदा.—सतसंगति संसृति कर अंता ।
(तुलसी मा. 7/45/3)
58. अंतावरि (अंत्र + अवली), उदा.—धरि गाल फारहि उर बिदारहि गल अंतावरि मेलहि ।
(तुलसी मा. 6/81)
59. अंतावरी (अंत्र + अवली), उदा. अंतावरी गहि उड़त गोध ।
(तुलसी मा. 3/20/602)
60. अंति (अंत), उदा.—आदि अंति सब सोधिया दूजा देखौ काल ।
(कबीर सा. 2/5/2)
61. अंतिकालि (अंतकाल), उदा. अंतिकालि सिर पोहली ले जात न देख्या कोई ।
(कबीर प. 296/12)
62. अंते (अंत), उदा.—आदै गगनां अंते गगनां भये गगनां माई ।
(कबीर प. 44/6)
63. अंथवै (अत्यम), उदा.—चलहिं सूर दिन अंथवै जहाँ ।
(जायसी 288/5)
64. अंदर (अंतर), उदा.—रेजा रेजा भयो करेजा, अंदर देखो धसिके ।
(मीरा 71)
65. अंदोरा (आंदोलन), उदा.—धरी एक सुठि भएउ अंदोरा ।
(जायसी. 133/7)
66. अंधाकर (अंधकार), उदा.—अंधाकर बरु रबिहि नसावै ।
(तुलसी मा. 7/122/9)
67. अंधला (अंध), उदा.—जाका गुंरु भी अंधला, चेला खरा निरंध ।
(कबीर सा. 1/15/1)
68. अंधिआरी (अंधकार), उदा.—मानहु कालराति अंधिआरी ।
(तुलसी मा. 2/83/3)
69. अंधियार (अंधकार), उदा.—असुरन कहँ लखि लागत जग अंधियार ।
(तुलसी ब. 39)
70. अंधियारा (अंधकार), उदा. सब अंधियारा मिटि गया जब दीपक देखा माहि ।
(कबीर सा. 5/35/2)
71. अंब (अंबु), उदा.—नैण नीरज में अंब बह रे, गंगा बहि जाती ।
(मीरा 185)
72. अंब (अम्बा), उदा.—कबहुक अंब अवसर पाइ ।
(तुलसी बी. 41)

73. अंबराई (आम्रराजी), उदा.—चलहिं जाहिं कौतुक अंबराई ।
(मंझन. 73-2)
74. अंबराउँ आम्रराजी उदा.—ताल तलाब सरोवर भरे । ओ अंबराउँ चहुँ
दिसि पाँती ।
(जायसी 554-2)
75. अंबरि (अंबर), उदा.—अंबरि दीतै केता तारा, कौन चतुर ऐसा चिरन हारा ।
(कबीर प. 141-3)
76. अंबली (अमली), उदा.—आब चढ़ी अंबली रे अंबली, बबूर चढ़ी नगवेली रे ।
(कबीर प. 76/3)
77. अंबुजगम (अंबुजगण), उदा.—बारौ मीन कोटि अंबुजगन ।
(सूर, 2136-4)
78. अंबराई (आम्रराजि), उदा.—संत सभा चहुँ दिसि अंबराई ।
(तुलसी. मा. 37/6)
79. अंत (अंश), उदा. उपजहि जासु अंस ते नाना ।
(तुलसी मा. 1/144/3)
80. अंसनि (अंश), उदा.—अंसनि पर भुजबर दीने सोभित सोभा अति ।
(नन्द, रा. प. 93)
81. अंसु (अंशु), उदा.—लेत अविनि रवि अंसु कहें देत अमिय अपसार ।
(तुलसी स. 453)
82. अंसुअन (अंशु), उदा.—अंसुवन पथिक निरास तें तट भुईं सजल रूप ।
(तुलसी सी. 624)
83. अंसुक (अंशुक), उदा.—किंसुक बरन सुअंसुक सुषमा सुखनि समेत ।
(तुलसी मी. 7/21)
84. अउर (अपर), उदा.—नहिं जानउं कछु अउर कबार ।
(तुलसी मा. 2/100/4)
85. अऊत (अपूत), उदा.—राम सुमिर निरमै हुवा, सब जग गया अऊत ।
(कबीर सा. 30/7/2)
86. अकथ (अकथ्य), उदा.—अकथ कहाणी प्रेम की कछां न को पत्याइ ।
(कबीर स. 40/10/2)
87. अकत (अंक), उदा.—काली मूंड को एक न छोड़्यौ, अजहूँ अकन
कुवारी ।
(कबीर प. 231/3)
88. अकनि (आकर्ण), उदा.—पुरजन आवत अखनि बराता ।
(तुलसी मा. 1/344/2)

89. अकरे (अक्रम्य), उदा.—नाम प्रताप महा महिमा, अकरे किये छोटैड बाढ़े ।
(तुलसी क. 7/127)
90. अकरून (अकरुण), उदा.—खर कुछार मैं अकरून को हो ।
(जायसी मा. 1/275/3)
91. अकरूर (अक्रूर), उदा.—लै कान्हि भा अकरूर अलोपी ।
(जायसी 341/7)
92. अकलंका (अकलंक), उदा.—सबहिं भांति सकर अकलंका ।
(तुलसी मा. 1/62/2)
93. अकलप (कल्पन), उदा.—मैं मंता अविगत रहा, अकलप आता जीति ।
(कबीर सा. 6/6/1)
94. अकसमाद (अकस्मात), उदा.—अकसमाद चिन्ता चित गही ।
(मंझन 336/1)
95. अकसर (एक + सर), अकेला, उदा.—कवन हेतु मन व्यग्र अति अकसर
आपहु तात ।
(तुलसी मा. 3/24)
96. अकाज (अकार्य), उदा.—उस संग्रथ का दास हौं, कदे होइ अकाज ।
(कबीर सा. 11/17/1)
97. अकाज (अकार्य) उदा. भौसागर मझधार अधारों थे बिण घणो अकाज ।
(मीरा 62)
98. अकाज (अकार्य), उदा.—जौं न कहउं बड़ होइ अकाजा ।
(तुलसी मा. 1/45/4)
99. अकाजू (अकार्य), उदा.—जौं न आउं तब होइ अकाजू ।
(तुलसी मा. 1/137/3)
100. अकाथ (अकार्यार्थ), उदा.—भयो सुगम तो को अमर-अगम तनु समुझि धौं
कत खोवत अकाथ ।
(तुलसी वि. 84)
101. अकाय (काय), उदा.—माँगत बामन रूप धरि परबत भयो अकाय ।
(नंद प्र. 38)
102. अकारथ (अकार्यार्थ), उदा.—कहे कबीर राम भजि बौरै, जनम अकारथ
जात ।
(कबीर सा. 80/5)
103. अकारन (अकारण), उदा.—काहि प्रनत कर प्रीति अकारन ?
(तुलसी वि. 84)
104. अकास (आकाश), उदा.—तृषावंत सुरसरि बिहाय सठ फिर-फिर बिकल
अकास निचोयो ।
(तुलसी वि. 245)
105. अकासबानी (आकाशवाणी), उदा.—भै आकासबानी तेहि काला ।
(तुलसी मा. 1/173/3)

106. अकासां (आकाश), उदा.—मन उनमन उस अंड ज्यूं अकासां जोड़ ।
(कबीर सा. 13/9/2)
107. अकासा (आकाश), उदा.—भै बहोरी बर गिरा अकासा ।
(तुलसी मा. 1/174/2)
108. अकासि (अकाश), उदा.—चन्दा बसे अकासि ।
(कबीर सा. 44/1/1)
109. अकुंठा (अकुंठ), उदा.—लाभकि रघुपति भगति अकुंठा ।
(तुलसी सा. 6/26/4)
110. अकुल (अकुलीन), उदा.—भरे रे पोष अकुल कुलवंता, गुणी निरगुणी धन नौधनवंता ।
(कबीर र. 3/5)
111. अकुलाइ (आकुल), उदा.—समाचार तेहि समय सुनि सीय उठी अकुलाइ ।
(तुलसी मा. 2/57)
112. अकुलाना (आकुलन) उदा. नहीं तहां रूप रेख गुन बानां, ऐसा साहिब है अकुलानां ।
(कबीर र. बी. 36)
113. अकुलाना (आकुलन), उदा.—कहि न सकत कछु अति अकुलाना ।
(तुलसी मा. 2/100/2)
114. अकुलाय (आकुल), उदा.—रूम रूम नखसिख लख्यो ललक ललक अकुलाय ।
(मीरा. 13)
115. अकोविद (अकाविद), उदा.—अग्य अकोविद अंध अभागी ।
(तुलसी मा. 1/115/1)
116. अकार्य (अकार्यार्थ), उदा.—नहिं तौ जन्म अकार्य जाई रे ।
(कबीर प. 4/3)
117. अखंडल (अखंड), उदा.—पुर खरभर उर हरषेउ अचलु अखंडल ।
(तुलसी पा. 114)
118. अखंडा (अखंड), उदा. सोहमस्सि इतिवृत्ति अखंडा ।
(तुलसी मा. 7/118/1)
119. अखय (अक्षय), उदा.—परसि अखय बटु हरषि गाता ।
(तुलसी मा. 1/44/3)
120. अखयवटु (अक्षयवट), उदा.—छनु अखयवटु मुनि मन मोहा ।
(तुलसी मा. 2/105/4)
121. अखाजु (अखाद्य), उदा.—मोहि अखाजु अंबित फल तोरा ।
(पंझन 331/5)

122. अखारा (अक्षवार), उदा.—अति विचित्र तह होइ अखारा ।
(तुलसी मा. 6/10/4)
123. अखारे (अक्षवार), उदा.—साहि अखारे हुति ओहि मांगी ।
(जासी 600/5)
124. आखिर (अक्षर), उदा.—राम मां दोई आखिर सारा ।
(कबीर प. 279/5)
125. अखेटक (आखेटक), उदा.—इस दिन राव अखेटक चढ़्यो ।
(नन्द. रूप. 458)
126. अगनि (अग्नि), उदा.—कबीर तन मन यो जल्यो विरह अगनि सूं लागि ।
(कबीर सा. 3/38/1)
127. अगनित (अगणित), उदा.—लावन्य वपुष अगनि-अनंग ।
(तुलसी वि. 64)
128. अगम (अगम्य), उदा. कहै कबीर सुनो रे सन्तो अगम ग्यांन पद-मांही ।
(कबीर प. 10/7)
129. अगमनो (अग्रवान), उदा.—रावन करि परिवार अगमनो जमपुर जात बहुत सकुचैहैं ।
(तुलसी गी. 5/51)
130. अगमु (अगम्य), उदा.—अगमु न कछु प्रतीति मन मोरे ।
(तुलसी मा. 1/342/2)
131. अगरज (अग्रज), उदा.—ताहिं ते अगरज भएउ सब विधि तेहि परचार ।
(तुलसी सा. 535)
132. अगवान (अग्रवान) उदा. सजि गज रथ पद चर तुरग लेन चले अगवान ।
(तुलसी मा. 1/304)
133. अगस्ति (अगस्त्य), उदा.—उदित अगस्ति पंथ जल सोषा ।
(तुलसी मा. 4/16/7)
134. अगह (अग्राह्य), उदा.—दास कबीर अगह रहे ल्यो लाई ।
(कबीर र. 1/24)
135. अगहु (अग्राह्य), उदा.—सब विधि अगहु अगाध कुराऊ ।
(तुलसी मा. 2/47/4)
136. अगाधा (अगाध), उदा.—बरनव सोई नर बारि अगाध ।
(तुलसी मा. 1/27/1)
137. अगाधू (अगाध), उदा.—बेद मध्य गुन बिदित अगाधू ।
(तुलसी वि. 22)
138. अगारों (अग्र), उदा.—का मोहि तैं अस सूर अगारों ।
(जायसी 489/7)

139. अगास (आकाश), उदा.—चदि अगास ससि अमृत गारौ ।
(मंज्ञ. 159/2)
140. अगाह (अगाध), उदा.—तेहि से अगाह बिधा तुम पूरी ।
(जायसी 256/6)
141. अगिहाइ (अग्निदाह), उदा.—जस तुम कया कीन्ह अगिहाहू ।
(जायसी 236/6)
142. अगिणत (अगणित), उदा.—प्रलै काल कहूँ कितेक भाष गये इन्द्र से अगिणत लाष ।
(कबीर प. 35/3)
143. अगिनि (अग्नि), उदा.—अगिनि थापि मिथिलेस कुसोदक लीन्हेउ ।
(तुलसी जा. 169)
144. अगिनबान (अग्निबाण), उदा.—अगिनबान उजियार अगासा ।
(मंज्ञ. 442/2)
145. अगुआ (अग्रपुः), उदा.—अगुआ केर होइ पछिलागू ।
(जायसी 136/7)
146. अगुआई (अग्र), उदा.—कियउ निषादनाथु अगुआई ।
(तुलसी मा. 2/203/9)
147. अगुन (अगुण), उदा.—अगुन अलायक आलसी जानि अधम अनेरी ।
(तुलसी बि. 262)
148. अगेहा (अगेह), उदा.—तुम्ह सम अधन भिखारी अगेहा ।
(तुलसी मानस 1/16/2)
149. अगिग (अग्नि), उदा.—मति वै राम दया करै, बरसि बुझावै अगिग ।
(कबीर सा. 3/11/2)
150. अग्य (अज्ञ), उदा.—कीन्ह कपटु मैं संभु सन नारि सहज जड़ अग्य ।
(तुलसी मा. 1/57/क)
151. अग्यता (अज्ञता), उदा.—तग्य कृतज्ञ अग्यता मंजन ।
(तुलसी मा. 7/34/3)
152. अग्यां (आज्ञा), उदा.—कहेहि देहु जौ अग्यां देस अपन कहं जाहिं ।
(मंज्ञ. 495/7)
153. अग्याता (आज्ञात), उदा.—अनुचित बहुत कहेउं अग्याता ।
(तुलसी मा. 1/285/3)
154. अघाइ (आघाण), उदा.—धेनु चरति तून अघाइ ।
(सूर 1237/27)

155. अघाई (आघ्राण), उदा. पीवत अजहूँ न अघाई ।
(कबीर प. 74/2)
156. अघाऊ (आघ्राण), उदा.—लोहैं दुहुँ दिसि भणउ अघाऊ ।
(जायसी प. 519/1)
157. अघात (आघात), उदा.—लात के अघात के सहै जो में कहै कूर है ।
(तुलसी क. 5/3)
158. अचंभव (स्कम्भ), उदा.—सुर मुनि सबहिं अचंभव माना ।
(तुलसी मा. 6/71/4)
159. अचंभौ (स्कम्भ), उदा.—एक अचंभौ देखिया बिटिया ब्याही बाप ।
(कबीर प. 110/4)
160. अचइ (आचमन), उदा.—पैठि बिबर मिलि तापसिहि अचइ पानि फलु खाइ ।
(तुलसी प्र. 3/7/3)
161. अचकि (चकित), उदा.—रहा अचकि दुहुँ का जिउ गाजा ।
(मंज्ञ. 497/2)
162. अचगरि (अत्याकार), उदा.—जो लरिका कछु अचगरि करहीं ।
(तुलसी मा. 1/266/2)
163. अचल धजा (अचल ध्वजा), उदा.—पाछे अचल धजा सो काढ़ी ।
(जायसी प. 515/3)
164. अचल सोहाग (अचल सौभाग्य), उदा.—सुपणा मों म्हारे बरण गया पाया अचल सोहाग ।
(मीरा 27)
165. अचलि (अचल), उदा.—स्वारथ सहित सनेह सब, रुचि अनुहरत अचार ।
(तुलसी दो. 548)
166. अचार (आचार), उदा.—स्वारथ सहित सनेह सब, रुचि अनुहरत अचार ।
(तुलसी दो. 548)
167. अचारवती (आचार + वती) उदा.—ऐसा कहा अचारवती रूप नहीं एक रती ।
(मीरा 186)
168. अचारा (आचार), उदा.—अस भ्रष्ट अचारा भा संसारा ।
(तुलसी मा. 1/183/31)
169. अचारु (आचार), उदा.—दुहुँ कुलगुर सब कीन्ह अचारु ।
(तुलसी मा. 1/323/4)
170. अचिजु (आश्चर्य), उदा.—अचिजु एक का बरनौ बरनत बरनी न जाई ।
(मंज्ञ. 83/6)
171. अचिरज (आश्चर्य), उदा.—ओ अगाध एका कहै भारी अचिरज होइ ।
(कबीर सा. 9/1/2)

172. अचेता (अचेत), उदा.—चले जाहिं सब लोग अचेता ।
(तुलसी मा. 2/320/4)
173. अच्छ (अक्ष), उदा.—अच्छा विमर्दन कानन आन दसानन आनन भान निहारौ ।
(तुलसी ह. 19)
174. अच्छ कुमारा (अक्षय कुमार), उदा.—पुनि पठेयउ तेहि अच्छकुमारा ।
(तुलसी मा. 5/18/4) ।
175. अच्छत (अक्षत), उदा.—अच्छत अंकुर सोचन लाजा ।
(तुलसी मा. 1/346/3)
176. अच्छम (अक्षम), उदा.—अच्छम प्रिय हितकारी ।
(तुलसी दो. 74)
177. अच्छर (अक्षर), उदा.—द्वादस अच्छर मम पुनि जपहिं सहित अनुराग ।
(तुलसी मा. 1/143)
178. अच्छे (अच्छ), उदा.—अच्छे मोठे चाख चाख बेर लाई भोलणी ।
(मीरा 186)
179. अच्यंत (अ + चित), उदा.—चिन्ता न करि अच्यंत रहु साई है सप्रम ।
(कबीर सा. 35/8/1)
180. अछता (अक्षत), उदा.—लोभ बड़ाई कारणे अछता मूल न खोई ।
(कबीर सा. 12/41/2)
181. अछै (अस), उदा.—अछै अभिअंतरि नियरै दूरी ।
(कबीर र. 4/87)
182. अछोप (अ + छुप), उदा.—मैं अछोप हीन मति मेरी ।
(दादू सोरठि 14/10)
183. अछोभा (अक्षोभ), उदा.—वीरवती तुम्ह धीर अछोभा ।
(तुलसी मा. 1/274/4)
184. अजंच्य (अ + याचक), उदा.—कबीर जाघन आइ था, आगे मिला, अजंच्य ।
(कबीर प. 180/4)
185. अजरा (अजर), उदा.—अजरा अमर कथै सब कोई, अलख न कथना जाई ।
(कबीर प. 180/4)
186. अजराइल (अजर), उदा.—ऐसैं जो अजराइल मारे, मस्तकि आवै भाग रे ।
(कबीर प. 350/4)
187. अजरावर (अजरामर), उदा.—रावन लिखा जो जरै कहैं किमि अजरावर होई ।
(जायसी प. 525/9)
188. अजस (अयश), उदा.—अजस पेठारी ताहि करि गई गिरा मति फेरि ।
(तुलसी मा. 2/12)

189. अजसी (अयशिन), उदा.—अति दरिद्र अजसी अति बूढ़ा ।
(तुलसी मा. 6/31/1)
190. अजसु (अयश), उदा.—मोर मरन राउर अजसु नृपसमुझिय मन माहीं ।
(तुलसी मानस 2/33)
191. अजहुँ (अप), उदा.—अजहुँ आपने राम के करतब समुझत हित होइ ।
(तुलसी वि. 193)
192. अजौघी (अयाचिन), उदा.—कपि, सवरी, सुग्रीव, विभीषन को नहिं कियो अजौघी ।
(तुलसी वि. 163)
193. अजान (अज्ञान), उदा.—जो वो एक न जाणियां तो सबहीं जाण अंजाण ।
(कबीर सा. 11/8/2)
194. अजानि (अज्ञान), उदा.—जानि अजानि जिन्हें विष खावा ।
(कबीर र. 3/73)
195. अजामेल (अजामिल), उदा.—अजामेल अध अधरे जम ग्रास नसानी जी ।
(मीरा 140)
196. अजाचक (अयाचक), उदा.—जाचक सकल अजाचक कीन्हें ।
(तुलसी मा. 7/12/4)
197. अजाति (अ + जाति), उदा.—अगुन अमान अजाति मातु-पितु हीनहिं ।
(तुलसी पा. 55)
198. अजान (अ + ज्ञान), उदा.—पूँछत जानि अजान जिमिब्यायेउ कोपु शरीर ।
(तुलसी मा. 1/169)
199. अजीता (अजित), उदा.—तब दरसी अनवद्य अजीता ।
(तुलसी मा. 7/72/3)
200. अजीरन (अजीर्ण), उदा.—अब यह विरह अजीरन है कै, अभिलाग्यौं दुख दैन ।
(सूर. 3239/5)
201. अजुगति/अजुगत (अयुक्त), उदा.—जनि अजुगत काढ़ै मुख भोरें ।
(जायसी प. 550/5)
202. अजुगुत (अयुक्त), उदा.—देखि समेहिय उरपीं मा अजुगुत यह काह ।
(मंझन 138/6)
203. अजे (अजय), उदा.—रघुवीर महा रनधीर अजे ।
(तुलसी मा. 7/14/9)
204. अजै (अजय), उदा.—हो हारयो करि जतन विविध विधि, अतिसय प्रबल अजै ।
(तुलसी वि. 89)
205. अजोध्या (अयोध्या), उदा.—दिन प्रति सकल अजोध्या आवहिं ।
(तुलसी मा. 7/27/1)

206. अजौ (अद्य), उदा.—यह जिव आया दूरियै, अजौ भी जासी दूर।
(कबीर सा. 46/23/1)
207. अज्या (अजा), उदा.—अज्या स्यंध ज्यू रहिये रे।
(दादू. भैरू. 8/5)
208. अट (अट), उदा.—अट पट लट नट नादि जहें, तुलसी रहित न जान।
(तुलसी स. 57/6)
209. अटक (आंटकन), उदा.—रोनां चंचल अटक णां भाष्या पर हथ गया विकाय।
(मीरा. 13)
210. अटनि (अट्ट), उदा.—निज निज अटनि मनोहर गान करहिं पिक बेनि।
(तुलसी गी. 7/21)
211. अटारी (अट्टाली), उदा.—निबुकि चढेउ कपि कनक अटारी।
(तुलसी मा. 5/25/5)
212. अटारी (अट्टालिका), उदा.—महल अटारी सब त्याग, त्यागो धारो बसने सहर।
(मीरा. 34)
213. अट्टनि (अट्ट), उदा.—हाट, बाट, कोट, ओट, अट्टनि अगार पौरि।
(तुलसी क. 5/14)
214. अठखँभा (अष्टखंभ), उदा.—बैठे पार जहाँ अठखँभा।
(जायसी प. 330/1)
215. अठसठि (अष्टषष्टि), उदा.—तूँबी अठसठि तीरधन्दाई, कड़वापन तरु न जाई।
(कबीर प. 266/3)
216. अठसिधि (अष्टसिद्धि), उदा.—अठसिधि नव निधि नांव मंझारी।
(कबीर प. 123/7)
217. अठारह (अष्टादश), उदा.—कोटी समुद्र जाकै पणिहारा, रोमवली अठारह भारा।
(कबीर प. 340/11)
218. अठारह (अष्टादश), उदा.—जाकै अठारह भार वनमाला।
(दादू. सी. धू. 5/4)
219. अठ्यासी (अष्टाशीति), उदा.—मुनिवर सहस्र अठयासी।
(कबीर प. 1/7)
220. अडिग (टिक्), उदा.—आसण माड़ अडिग होय बैठा।
(मीरा. 55)
221. अढ़ाई (अर्द्धद्वितीय), उदा.—अढ़ाई मैं जे पाव घटै तो।
(कबीर प. 193/5)
222. अणंत (अनंत), उदा.—कूदां जल अंतर णां डर्यौ येँ एक बाहु अणंत।
(मीरा. 168)

223. अणरता (अन् + रक्त), उदा.—अणरता सुख सोवणां।
(कबीर सा. 29/5/1)
224. अणरागी (अनरागिन), उदा.—कहै कबीर कुदर भजि करता, अमर भण अणरानी।
(कबीर प. 299/11)
225. अणी (अणि), उदा.—बेलड़िया दूँ अणीं कहूँती, गगन पहुँती सैली।
(कबीर प. 163/3)
226. अणियाले (अणि), उदा.—चढ़ती बैस नैन अणियाले, तू घरि मत डोल।
(मीरा. 40)
227. अणी (अणि), उदा.—अणी सुहेली सेल कीस पड़तां लेइ उसास।
(कबीर सा. 39/1/1)
228. अतिउकुति (अत्युत्कृति), उदा.—सुनि अतिउकुति पवन सुत केरी।
(तुलसी मा. 6/1/2)
229. अतिकिंचित (यत्किंचित), उदा.—जिउ अतिकिंचित लाज निवारौं।
(मंझन 292/3)
230. अतिकाया (अतिकाय), उदा.—अनिप अकंपन अरु अतिकाया।
(तुलसी मा. 6/46/5)
231. अतिबानी (अतिवर्णिन), उदा.—सावन बरिस मेह अतिबानी।
(जायसी प. 345/1)
232. अतिसय (अतिशय), उदा.—सुनहु मातु मोहि अतिसय भूखा।
(तुलसी मा. 5/17/4)
233. अतीति (अतीत), उदा.—राम अमल माता रहे, जीवत मुक्ति अतीति।
(कबीर सा. 6/6/2)
234. अतीवा (अतीव), उदा.—देखि भरत गति अकथ अतीवा।
(तुलसी मा. 2/238/3)
235. अत्र (अस्त्र), उदा.—अत्र नाहिं रिपु मारब काही।
(मंझन 260/4)
236. अधरबन (अधर्व), उदा.—रुगन जुग न स्याम अधरबन, बेद नहीं ब्याकरना।
(कबीर प. 219/9)
237. अधर्वणी (अथर्वणि), उदा.—बाल विलोकि अथर्वणी हँसि हरहि जनायो।
(तुलसी गी. 1/6)
238. अथाई (स्यायि), उदा.—हाटबाट घर गली अथाई।
(तुलसी मा. 2/11/2)
239. अथाह (अ + स्था), उदा.—अति अथाह जल गह गंभीर।
(कबीर प. 341/3)

240. अधिर (अस्थिर). उदा.—कांची काया मन अधिर थिर काम करंत ।
(कबीर सा. 46/30/1)
241. अदभूता (अद्भुत), उदा.—ताकी हत्या होइ अदभूता, षट दरसन मैं जैनबिगुता
(कबीर र. 5/55)
242. अदाया (अ + दया), उदा.—भय अविवेक असौघ अदाया ।
(तुलसी मा. 6/16/2)
243. अदित (आदित्य), उदा.—अदित सुक्र दुइ खुटिला धरे ।
(मंझन 91/2)
244. अदिनु (अ + दिन), उदा.—अदिनु मोर नहिं दूषन काहू ।
(तुलसी मा. 2/181/4)
245. अदूषन (अदूषण) उदा.—ससिद्धि चापसर मकर अदूषन ।
(तुलसी गी. 7/16)
246. अदृश्य (अदृश्य), उदा.—तब अदृश्य भए पावक सकल सभहि समुझाई ।
(तुलसी मा. 1/189)
247. आदेस (आदेश), उदा.—आवै काल तुम्हहिं तँह देखे बहुरै कै आदेश ।
(जायसी प. 258/9)
248. अद्रा (आर्द्रा), उदा.—तपनि मिरगिसरा जे सहहिं अद्रा ते पलुहंत ।
(जायसी प. 343/9)
249. अद्रिष्टि (अदृष्ट), उदा.—द्रिष्टि अद्रिष्टि दिव्यौ नहिं पेखा ।
(कबीर 203/42)
250. अधंग (अर्द्धांग), उदा.—सीस गंग गिरिजा अधग, भूषन भुजंगवस ।
(तुलसी क. 7/149)

अन्य महत्वपूर्ण तद्भव शब्दों के संदर्भ इस प्रकार हैं—

- | | |
|----------------------------------|------------------------------------|
| अध (अधः) तुलसी क. 5/17 | अधराधर (अधः + अधर) तुलसी क. 1/5 |
| अध (अर्द्ध) तुलसी दो. 253 | अधरम (अधर्म) कबीर प. 39/7 |
| अधारा (आधार) मंझन 179/1 | अधीना (आधीन) तुलसी म. 1/15/3 |
| आधीस (आधीश) तुलसी मा. 1/117/4 | अनंता (अनंत) कबीर प. 403/8 |
| अनंदा (आनंद) कबीर प. 21/27 | अन (अन्य) तुलसी दो. 311 |
| अनगन (अगणित) नन्द एस. 316 | अनत (अन्यत्र) तुलसी मा. 1/11/2 |
| अनभला (अभद्र) जायसी प. 69/3 | अनमोल (अन् + मूल्य) तुलसी मा. 2/13 |
| अनरथु (अनर्थ) तुलसी मा. 2/157/3 | अनाथा (अनाथ) तुलसी मा. 5/7/1 |
| अनामा (अनाम) तुलसी मा. 1/13/2 | अनुवाद (अनुवाद) तुलसी मा. 6/110/6 |
| अनुरोध (अनुरोध) तुलसी मा. 2/55/2 | अनूपम (अनुपम) कबीर सा. 35/16 |
| अनूमान (अनुमान) तुलसी सा. 506 | अनेग (अनेक) मंझन 20/2 |

- | | |
|--------------------------------------|----------------------------------|
| अनेरो (अनृत) तलसी वि. 272 | अन्ययाले (अ + न्यारा) कबीर 118/1 |
| अपणा (आत्मना) मीरा. 133 | अपराधी (अपराधिन) सूर. 186/7 |
| अपान (आत्मन) मंझन 3/5 | अपारु (अपार) तुलसी मा. 2/154/3 |
| अपूठी (अपुष्ट) मीरा 33 | अबास (आवास) कबीर प. 320/2 |
| अबिबिकी (अविवेकिन) तुलसी मा. 2/142/1 | अबोलणां (अ + बू) मीरा 66 |
| अभरन (आभरण) नन्द. सिद्धा. 33/1 | अभै (अभय) कबीर प. 134/8 |
| अभोलि (भद्र) मंझन 195/4 | अमी (अमृत) तुलसी मा. 135 |
| अयान (अज्ञान) कबीर र. 3/1 | अयांणा (अज्ञान) मंझन 33/4 |
| अरथहिं (अर्थ) कबीर प. 157/11 | अरहट (अरघट) कबीर सा. 24/6/2 |
| अरुन (अरुण) सूर सा. 1756/11 | अलगा (अलगन) कबीर सा. 57/1/2 |
| अलोने (अ + लवण) तुलसी वि. 175 | अवध (अवधि) मीरा 95 |
| अवधेस (अवधेश) तुलसी क. 1/1 | अवनी (अवनि) नन्द रा. 2/15/1 |
| अवलंबई (अवलंबन) नन्द भ्र. 71/5 | अवसेस (अवशेष) सूर सा. 16/7 |
| अपंडित (अखंडित) कबीर प. 203/6 | अष्ट कंवल (अष्ट कमल) कबीर प. 4/5 |
| अष्ट करम (अष्टकर्म) मीरा 135 | असपास (स्पर्श) मंझन 162/1 |
| असा (एष) मीरा 6 | असुपती (अश्वपति) जायसी प. 26/6 |
| असोका (अ + शोक) तुलसी मा. 5/12/5 | असुरु (असुर) तुलसी मा. 1/103/4 |
| अस्थान (स्थान) कबीर प. 153/2 | असनान (स्नान) कबीर प. 121/12 |
| अहारा (आहार) तुलसी मा. 5/2/2 | अहीर (आभीर) तुलसी मा. 7/117/6 |
| अहेरा (आखेट) कबीर प. 9/6 | आँच (अर्चि) नन्द. रुक्मि 53/1 |
| अँणिया (आनयन) कबीर सा. 4/1/1 | आक (अर्क) जायसी प. 346/6 |
| अखर (अक्षर) जायसी प. 195/3 | आगि (अग्नि) कबीर सा. 3/38/2 |
| आजु (अद्य) मीरा 121 | आत्मां (आत्मा) कबीर सा. 1/38/2 |
| आजु (अद्य) मीरा 121 | आत्मां (आत्मा) कबीर सा. 1/34/2 |
| आजु (अद्य) मीरा 121 | आत्मां (आत्मा) कबीर सा. 1/34/2 |
| आधी (अर्द्ध) कबीर सा. 36/6/1 | आमरष (आमर्ष) तुलसी मा. 7/38/1 |
| आयू (आयु) तुलसी मा. 5/42/1 | आलस (आलस्य) तुलसी दो. 327 |
| इक (एक) कबीर 4/31/6/ | इत (इतः) मीरा 142 |
| इहों (अह) तुलसी मा. 2/22/3 | ईस्वर (ईश्वर) तुलसी मा. 7/94/3 |
| उँचेरा (उच्च) कबीर प. 361/5 | उगो (उद्रमन) तुलसी वै. 33 |
| उचार (उच्चारण) कबीर प. 1/5 | उछाहा (उत्तर) तुलसी मा. 2/10/3 |
| उजियारा (अज्ज्वल) मंझन 4/4 | उज्जल (उद् + जल) कबीर सा. 7/1/1 |
| उत्पति (उत्पत्ति) तुलसी वै. 20 | उधारा (उद्धार) कबीर र. 1/15 |
| उनीदे (उन्निद्र) नन्द पदा. 12/1 | उपसम (उपशम) नन्द सुदा. 6 |

उपेक्षणीय (उपेक्षणीय) तुलसी वि. 124
 उमी (उम्र) तुलसी क. 7/71
 ऊंघ (अवांग) दादू. 32/2/1
 ऊधो (उद्धव) मीरा 183
 ऐसा (ईदृश) कबीर सा. 42/1/1
 ओठ (ओष्ठ) तुलसी मा. 6/41/3
 ओही (सः) तुलसी मा. 2/17/1
 औषधु (औषधि) तुलसी मा. 2/212/1
 कंध (स्कंध) तुलसी मा. 1/243
 कठिण (कठिन) मीरा 102
 कठौता (काष्ठ) तुलसी क. 2/10
 कनियाद (कर्णिकार) मधु. 271/1
 किसन (कृष्ण) मीरा 171
 कपाट (कपाट) तुलसी क. 7/157
 करा (कृ) मीरा 195
 कलिजुग (कलियुग) कबीर सा. 11/13/1
 कहाँ (कुत्र) कबीर सा. 14/1/1
 काऊ (कः) तुलसी मा. 2/218/2
 कासु (कस्य) तुलसी दो. 355
 कुम्हड़ (कुम्भाण्ड) तुलसी मा. 7/100/3
 कोने (कोण) तुलसी गी. 1/105
 कोह (क्रोध) तुलसी मा.
 कगरी (केदार) कबीर प. 214/7
 खार (क्षार) मीरा 19
 खीरा (क्षीरक) जायसी 436/4
 गनेसु (गणेश) तुलसी मा. 2/208
 गुपाल (गोपाल) मीरा 184
 गेह (गृह) मीरा 105
 गोहूँ (गोधूम) जायसी 380/4
 घड़ी (घटी) मीरा 86
 घेवर (घृतवर) जायसी 531/8
 चखु (चक्षु) कबीर क. 5/16
 चिन्ह (चिह्न) तुलसी सा. 7/101
 चोंच (चंचु) मीरा 84

उबारयौ (उद्धार) सूर सा. 14/1
 उसीस (उष्ण) नन्द. रूप. 519
 अतरे (अवतरण) तुलसी गी. 5/30
 एकौ (एक) कबीर प. 264/1
 ऐसी (ईदृश) मीरा 49
 ओढ़न (उपवेष्टन) तुलसी मा. 7/4
 ओगुन (अवगुण) मंझन 473/6
 ओसि (अवश्य) जायसी प. 505/6
 कछु (किंचित) मीरा 196
 कतरै (कर्तरी) कबीर प. 12/5
 कदे (कदा) मीरा 100
 कन्हैया (कृष्ण) मीरा 166
 कपड़ा (कर्पट) कबीर सा. 12/54/1
 कबै (कदा) मीरा 74
 कलप (कल्प) कबीर प. 6/2
 कबैल (कमल) तुलसी क. 2/27
 काँट (कंट) तुलसी वि. 189
 काछिआ (कक्ष) तुलसी मा. 2/127/4
 कीरा (कीट) तुलसी मा. 2/62/1
 कूकर (कुक्कुर) मीरा 158
 कोला (कोल) तुलसी मा. 7/260/2
 कौड़ी (कर्पदिका) सूर. 186/9
 खटोला (खट्वा) तुलसी वि. 189
 खिन (क्षण) 478/5
 गंग (गंगा) तुलसी वि. 19
 गोध (गुर्ध) तुलसी वि. 106
 गुसाई (गोस्वामी) कबीर र. बा. 8
 गोविन्द (गोपेन्द्र) कबीर सा. 1/36/1
 गौने (गमन) तुलसी गी. 7/31
 घी (घृत) तुलसी वि. 354
 चकवा (चक्रवाक) कबीर प. 12/8
 चाका (चक्र) तुलसी मा. 6/80/3
 चूमत (चुम्बन) तुलसी क. 5/3
 चोंच (चतुर्थी) तुलसी प्र. 4/7/7

छारा (क्षार) जायसी 1/87/3
 जज्ञ (यज्ञ) तुलसी प्र. 7/1/7
 जनमु (जन्म) तुलसी सा. 2/15/4
 जनन (यः) तुलसी गी. 3/5

छुरी (क्षुर) तुलसी मा. 2/22/1
 जतन (यत्न) कबीर सा. 13/10/5
 जलता (ज्वलन) कबीर सा. 12/16/2

भक्ति-काल में प्रयुक्त होने वाले अन्य कुछ शब्द निम्नलिखित हैं—

जसुमति (यशोदा), जसोमति (यशोमति), जहँ (यत्र), जहनाँ (यत्र), जहाँ (यत्र), जहि (जहन), जहि (यस), जहिआ (यद), जाँच (याचन), जाँचन (याचन), जाँच्या (याचन), जाँण (ज्ञान), जा (यः), जा (यान), जाए (जनन), जाखिनी (यक्षिणी), जाग (यज्ञ), जाग (जागरण), जागबलिक (याज्ञवल्क्य), जागरन (जागरण), जागाँ (जागरण), जागा (यज्ञ), जागु (यज्ञ), जाचक (याचक), जाचकता (याचकता), जाजरी (जर्जर), जाजरो (जर्जर), जाड़ (जाड़य), जाड़न (जड़), जात (जाति), जातकरम (जातकर्म), जातना (यातना), जाति (जाति), जाती (यात्री), जादौ (यादव), जान (ज्ञान), जानकि (जानकी), जायकी (जायक), जापू (जाप), जापू (जाप), जाबाली (जाबालि), जाम (याम), जामन (यमन), जामाता (जामातु), जामिनी (यामिनी), जामु (याम), जार (ज्वालन), जारा (जार), जाला (जाल), जावन (यान), जावनु (यमन), जासु (यस्य), जाहि (यः), जिअ (जीव), जिअउ (जीवन), जिउ (जीव), जित (यत्र), जिते (यः), जितइ (यत्र), जितो (यः), जिन्ह (यानाँ), जिभ्या (जिह्वा), जिय (जीव), जियन (जीवन), जियरा (जीव), जियरे (जीव), जियों (जीव), जिव (जीव), जिवन (जीवन), जिस (यस्य), जिसु (यस्य), जो (जीव), जीउ (जीव), जीन (जीर्ण), जीभ (जिह्वा), जीभण (जीवन), जीय (जीव), जीवण (जीवन), जीवणां (जीवन), जीवत (जीवित), जीवनि (जीवन), जीवनु (जीवन), जीह (जिह्वा), जीहा (जिह्वा), जुआ (धूत), जुक्ति (युक्ति), जुगंत (युगांतर), जुगति (युक्ति), जुगम (युग्म), जुगिया (योगी), जुझहि (युद्ध), जुड़ाई (युक्ति), जुत्प (यूथ), जुद्ध (युद्ध), जुबराजा (युवराज), जुर (ज्वर), जुवन (यौवन), जुवा (युवा), जुआ (धूत), जूझ (युद्ध), जूठनि (जुष्ट), जुड़ो (जूट), जूथम (यूथम), जून (जीर्ण), जूरा (युक्त), जूह (यूथ), जेठ (जेष्ठ), जेत (यावत), जेनकेन (येनकेन), जेवनार (जेवन), जेह (यथा), जे (जय), जैदेव (जयदेव), जैमारा (जयमाल), जैसा (यादृश), जो (यः), जोगतंत्र (योगतंत्र), जोगी (योगी), जोगी (योग्य), जोगू (योग्य), जोगेस्वर (योगेश्वर), जोजन (योजन), जोत (ज्योति), जोति (ज्योति), ज्योतिग (ज्योतिष), जोध (योद्धा), जोनि (योनि), जोबन (यौवन), जोय (जाया), जोरा (युक्त), जोवत (जुषण), जोषे (जुष), जोसी (ज्योतिषन), जोहन (योजन), जोहार (जुषण), जो (यदि), जो (यव), जौग (योग), जौन (यः), जौन (यमुना), जौबन (यौवन), ज्यो (यस्य), जौन (यः), ज्याँ (यस्य), ज्ञानी (ज्ञानिन), ज्योतिषु (ज्योतिष), ज्यौं (यः), ज्वै (यः), झाई (क्षर), कँहि (क्षर), झाख (झष), झाखराज (झषराज), झट (झटिति), झड़ (क्षरण), झनकार (झंकार), झरझर (क्षरण), झरत (क्षरण), झरै (क्षरण), झल (ज्वाल), झलक (झल्लिका), झषकेतु (झषकेतन), झाँई (छाया), झाँझ (झल्लक), झाँझि (झल्लक), झांपेउ

(उत्थापन), झार (सर्व), झार (ज्वाला), झार (बाट), झारि (क्षरण), झारी (झाट), झिल्लि (चैल), झीवर (धीवर), झीन (क्षीण), झीनी (क्षीण), झुंडनि (यूथ), झुकत (युज), झुठाई (अयुक्त) झुठा (जुष्ट), झुझ (युद्ध), झूमकर (झंप), झूर (धूलि), झूर (अयुक्त), झूर (ज्वल), झूरो (धूली), झूलन (दोलन), झेलसी (ज्वलन), झोंटा (जूट), झोपरी (क्षेप), झोरी (चोल), झोलै (ज्वलन)।

टंकोर (टंकार), टकसाल (टंकशाला), टका (टंक), टरां (टलन), टाँक (टङ्क), टाँकी (टङ्क), टाट (तंतु), टाटी (स्थात्री), टाप (स्थापन), टिरी (टलन), टीका (तिलक), टीडी (टिडिभ), टुक (स्तोक), टूट (त्रुट), टूटी (त्रुट), टूठनि (तुष्ट), ठेका (स्थित + कृ), टेढ़ (तिरस), टेढ़्यां (तिरस), टेर (तार), टेरे (तार), टेसू (किंशुक), टोटक (भोटक), टोटै (तुंड), टोना (तंत्र), टोल (तोलिका), टोलू (तोलिका)।

ठंड (स्तब्ध), ठई (अनुष्ठान), ठंडवाँ (स्थान), ठग (स्थग), ठगौरी (स्थग), ठड (स्थाता), ठठ (स्थाता), ठठई (अट्टहास), ठनि (अनुष्ठान), ठमक (स्तम्भ), ठयउं (स्थल), ठवनि (स्थापन), ठहर (स्थल), ठहर (स्थैर्य), ठहरात (स्थैर्य), ठाँ (स्थान), ठांड (स्थान), ठाऊं (स्थान), ठाकुर (ठक्कुर), ठाटिए (स्थातृ), ठाढ़ (स्थातृ), ठाढ़ी (स्थातृ), ठाण (अनुष्ठान), ठानी (अनुष्ठान), ठाय (स्थान), ठाव (स्थान), ठाहर (स्थल), ठिठकी (स्थित), ठोरी (स्थान), ठोसु (स्थान), ठोर (स्थान), ठौरी (स्थान)।

डंडा (दंडक), डंड (दंड), डंडा (दंडक), डग (तक), डगमग (तक + मग), डगर (तक), डगरा (तक), डहैया (दांति), डमरुआ (डमरु), डरियां (दारु), डस (दंशन), ईसाई (दर्भ + आसन), डहकाए (दस्यु), डहरुआ (डमरु), डौंडणि (डाकिनी), डोंग (टंग), डौंड (दण्ड), डौंडी (दण्डिका), डौंडो (दण्ड), डौंवरे (डिंब), डौंवाडोल (दोल), डाइनि (डाकिनी), डाढ़ (दम्भ), डावर (दम्भ), डाभ (दर्भ), डार (दारु), डावरे (डिम्ब), डाह (दाह), डिंभ (दम्भ), डिगंतर (दिगंतर), डिठि (दृष्टि), डीगरि (डिंबक), डीठ (दृष्टि), डीठे (दृष्टि), डुलावों (दोल), डूंगरि (तुंग), डूधै (द्रौण), डूगर (तुंग), डेरा (स्थैर्य), डेल (दल), डेवड़ (द्वयर्द्ध), डोंगर (तुंग), डोरि (डोर), डोरी (डोर), डोल (दोल), डोल (दोल), डोलत (दोल), डोलन (दोलन), डोली (दोल), डूयम (डिंभ), डूयमक (दम्भ)।

डंग (तंग), डंडोरी (डुडन), डेरी (धरण), डेलन (दल), डोट (दुहितृ), डोटा (दुहितृ), डोर (धार), डोर (डोल), डोला (दोल), डोल्या (दोलन)।

णंद (नन्द), णाभ (नभ), णावों (नव), जासु (नश), णाच् (नृत्य), णित (नित), णिभ (निर्वाह), णिरख (निरीक्षण), णोद (निद्रा), णीर (नीर), णोण (नयन), णेह (स्नेह), णैण (नयन)।

तंत (तंत), तंत (तंत्र), तंत (तत्व), तंती (तंत्री), तंदुल (तंडुल), तंबोर (ताम्बूल), तइ (तापन), तउ (तत), तकइ (तर्क), तजा (त्वचा), तजंत (त्यज), तजि (त्यज), तडाग (तडाग), तडि (तडित), तण (तन), तणां (तन), ततकाल (तत्काल), ततखन (तत्क्षण), ततवेता (तत्ववेता), ततव (तत्व), ततसीम (तत्सम), ततु (तत्व), तत (तत्व), तदि (तदा),

तन (तनु), तनक (तनु), तनही (तनु), तनी (तान), तनै (तनय), तनोरुह (तनूरुह), तप (तपस), तपइ (तपन), तपनि (ताप), तपसिन्ह (तपस्वी), तपसी (तपस्वी), तपी (तपस्वी), तब (तदा), तम (तमस), तमगुन (तमोगुण), तमाला (तमाल), तरंगा (तरंग), तरंगिनी (तरंगिणी), तर (तल), तर (तद), तरउवा (तरु), तरक (तर्क), तरज (तर्जन), तरजनी (तर्जनी), तरन (तरणि), तरनिसुता (तरणिसुता), तरपन (तर्पण), तरवर (तरुवर), तरवा (तल), तरशा (तर्षण), तरस (त्रास), तरसि (त्रास), तरसी (तर्षण), तराई (तरण), तराहि (त्राहि), तरि (तरी), तरि (तरण), तरि (तले), तरिअ (तरण), तरिवन (तालपर्ण), तरीवन (ताड़), तरुन (तरुण), तरुनाई (तरुणत्व), तरुनि (तरुणी), तेरे (तले), तेरे (तरण), तर्पन (तर्पण), तर्वर (तरुवर), तलाई (तल), तलु (तल), तव (तप), तवा (ताप), तस (तादृश), तसकर (तसकर), तहों (तत् + स्थान), ताई (तावत्), तांति (तंतु), ताँबा (ताम्र), तामसु (तामस), ताइ (ताप), ताई (ताप), ताऊ (तावत्), ताक (तर्क), ताकी (तत्), ताग (ताकिव), ताड़का (ताडका), ताड़ुका (ताडका), ताड़ी (तालक), ताणि (तन), तात (तत्), ताता (तावत्), ताति (तत्), तातो (तत्), ताना (तान), तापसु (तापस), ताम (ताम्र), तार (ताल), तार (तारक), तारति (तरण), तारन (तारण), तारि (तारण), तारु (तुला), तारुणी (तरुणी), ताल (तल्ल), ताला (तालक), तालु (ताल), तावर (ताप), तामु (तद), तिकाल (त्रिकाल), तिकख (तीक्ष्ण), तिण (तृण), तिणका (तृण), तित (तत्र), तिथि (स्थिति), तिन (तृण), तिभुवन (त्रिभुवन), तिलों (तिल), तिलांजुली (तिलांजलि), तिलोक (त्रिलोक), तिलोचन (त्रिलोचन), तिल्क (तिलक), तिस (तृषा), तिसा (तृष्णा), तिहाई (त्रि + भाग), तिहि (ते), ती (स्त्री), तीखा (तीक्ष्ण), तीछी (तीक्ष्ण), तीज (तृतीया), तीजै (तृतीया), तीत (तिक्त), तीतर (तित्तिर), तीन (त्रीणि), तीब्र (तीव्र), तीय (स्त्री), तीरथ (तीर्थ), तीरा (तीर), तीषा (तीक्ष्ण), तीस (त्रिंशति), तुबरी (तुबी), तुज्ज (त्वम्), तुरंगा (तुरंग), तुरसी (तुलसी), तुरा (त्वरा), तुरावति (त्वरा), तुरिय (तुरग), तुरीय (त्वरा), तुरिय (त्वरा), तुल (तुल्य), तुलसीदासु (तुलसीदास), तुषारु (तुषार), तुसारु (तुषार), तूबरी (तुम्बक), तूटनि (तुटि), तून (तूण), तूर (तूर्य), तूरि (तुल्य), तूल (तुल्य), तूजग (तिर्यक), तून (तृण), तूपित (तृप्ति), तूया (स्त्री), तूस्ना (तृष्णा), ते (तद), देत (तेजस), तेजु (तेजस), तेतखन (तत्क्षण), तेरसि (त्रयोदशी), तेरा (तव), तेल (तैल), तै (त्वम्), तैसा (तादृश), तोख (तोष), तोम (स्तोम), तोया (तोय), तोख (भुट), तोरन (तोरण), तोरा (त्वरा), तौकी (ताप), तौलि (तौल), त्यां (तंत्र), त्यों (तत् + एव), त्रसे (त्रस्त), त्रान (त्राण), त्रासकारी (त्रासक), त्रासा (त्रास), त्रिखा (तृषा), त्रिखि (तृषित), त्रिगुन (त्रिगुण), त्रिजुग (तिर्यक), त्रिन (तृण), त्रिवेनिह (त्रिवेणी), त्रिया (स्त्री), त्रिसंकू (त्रिशंकु), त्रिसूल (त्रिशूल), त्रैलोक (त्रैलोक्य), त्रोन (त्रोण)।

थंभ (स्तम्भ), धन (स्तन), थपन (स्थापन), थर (स्तर), धर (स्थल), थरु (स्थल), थल (स्थल), थलियांह (स्थाली), थान (स्थान), थांभ (स्तंभ), थाकु (स्था), थाणे (स्थान), थाती (स्थातृ), थापन (स्थापन), थूनी (स्थूण), थैली (स्थल), थोड़ा (स्तोक)।

दंडपानि (दंडपाणि), दंडा (दंड), दंतुरिया (दंत), दंभा (दंभ), दइअ (दैव), दई (दान), दखिन (दक्षिण), दच्छ (दक्ष), दच्छसुता (दक्षसुता), दच्छिना (दक्षिणा), दध (दधि), दधीच (दधीचि), दमोदर (दामोदर), दयाला (दयालु), दरन (दलन), दरप (दर्प), दरपन (दर्पण), दरब (द्रव्य), दरवै (द्रवण), दरशन (दर्शन), दरसु (दर्शन), दरिबे (दरण), दरीबल (दाडिम), देरा (दरण), दर्पा (दर्प), दर्पी (दर्पिन), दलकत (दोल), दलिद्र (दारिद्र्य), दवन (दमन), दवनू (दमन), दवागि (दवाग्नि), दवारी (दवाग्नि), दशरत्न (दशरत्न), दस्या (दशा), दसन (दशन), दसमी (दशमी), दसा (दशा), दसानन (दशानन), देहै (दशा), दह (दहन), दहनु (दहन), दही (दधि), दांत (दंत), दौहिणे (दक्षिणे), दाइज (दाय), दाई (दायिन), दाख (द्राक्ष), दाइन (दहन), दातारु (दातार), दा (दद), दादुर (ददुर), दाना (दान), दामण (दामिनी), दाया (दाया), दारन (दारुण), दारिदी (दरिद्र), दालि (दलन), दासा (दास), दासु (दास), दाहिने (दक्षिण), दाहू (दाह), दिआ (दीपक), दिखाय (दृश), दिगंचल (द्विगंचल), दिछित (दीक्षित), दिठि (दृष्टि), दिण (दिन), दिनअर (दिनकर), दिनु (दिन), दिया (दीपक), दिवसु (दिवस), दिसा (दिशा), दिसि (दिशा), दिस्ति (दिष्टि), दीठ (दृश), दीठी (दृष्टि), दीपसिखा (दीपशिखा), दीरघ (दीर्घ), दीसा (दृश), दुआर (द्वार), दुइजि (द्वितीया), दुकालु (दुष्काल), दुखु दुःख, दुग्गम (दुर्गम), दुति (धुति), दुभापी (द्विभापी), दुरगंध (दुर्गन्ध), दुरदसा (दुर्दशा), दुरदिन (दुर्दिन), दुहाई (दोहन), दूदर (द्वन्द्व), दूइज (द्वितीया), दूजा (द्वितीय), दूध (दुग्ध), दूबर (दुर्बल), दूभर (दुर्भर), दूलह (दुर्लभ), दूषनु (दूषण), दूखत (दूषत), दूयमान (दृश्यमान), देबी (देवी), देवमनि (देवमणि), देवहरा (दिवस), देवारी (दीपावली), देहरी (देहली), दैत (दैत्य), दोख (दोष), दोना (द्रोण), दोषु (दोष), दोसू (दोश), दोहाग (दुर्भाग्य), दौन (दावाग्नि), पोस (दिवस), द्रपण (दर्पण), द्रोनाचल (द्रोणाचल), द्रोहि (द्रोह), द्वादसि (द्वादश), द्वौर (द्वार), द्वै (द्वय)।

धंध (धनधान्य), धँसि (दंशन), धज (ध्वज), धणीं (धनिन), धतूरा (धुतूरा), धन (धन्य), धनक (धनु), धनवान (धनवान), धनि (धन्य), धनेसा (धनेश), धरम (धर्म), धर (धइ), धरणि (धरणी), धरन (धरण), धरनि (धरणी), धरमसील (धर्मशील), धरमि (धार्मिक), धरहरि (धरण), धरोहर (धरण), धंचलसिरी (धवलश्री), धाइ (धात्री), धामू (धाम), धार (धारा), धरिनि (धारिणी), धिअ (दुहित), धियानां (ध्यान), धीम (मध्यम), धीय (दुहिता), धीरजु (धैर्य), धुओं (धूम्र), धुजा (ध्वजा), धुन (ध्वनि), धुनि (ध्वनि), धुवाँ (धूम्र), धूर्त (धूर्त), धूमधूज (धूमध्वज), धूरि (धूलि), धेण (धेनु), धेनू (धेनु), धोवी (धावन), धोरहर (धवल), धोराहर (धवलगृह), धौल (धवल), ध्याग (ध्यान), धुम्र (धर्म), धू (ध्रुव), ध्वजा (ध्वज), ध्वैहो (धवन)।

नंचहि (नृत्य), नइ (नव), नइ (नय), नउनियो (नापित), नक (नासिका), नकखत (नक्षत्र), नखसिख (नखशिख), नखेध (निपेध), नग (नग्न), नगरिया (नगर), नग्र (नगर), नचत (नृत्य), नछत (नक्षत्र), नटनि (नर्तन), नटसरी (नाट्यशाला), नणद (नन्द),

नधुनियो (नाथ), नदियाँ (नद्य), नदीस (नदीश), नबीना (नवीन), नयना (नयन), नरकु (नरक), नरपालू (नरपाल), नरसिध (नृसिंह), नरियर (नारिकेल), नरेसु (नरेश), नर्क (नरक), नलु (नल), नवनीता (नवनीत), नवाऊ (नमन), नखसिखा (नखशिख), नसाना (नाश), नहछू (नख + छोर), नहाइ (स्नान), नहियर (मातृगृह), नांड (नाम), नांगा (नग्न), नांचत (नृत्य), नांव (नाम), नाइकु (नायक), नाए (नमन), नागमनि (नागमणि), नाचत (नर्तन), नाटिका (नाडी), नाथू (नाथ), नादहि (नाद), नायकु (नायक), नाराइणां (नारायण), नारायन (नारायण), नासक (नाशक), नाइ (नाथ), नाहर (नहरि), निंदउ (निन्दा), निअर (निकट), निआउ (न्याय), निकलंक (निष्कलंक), निकारहि (निष्कासन), निखंग (निषंग), निखेध (निषेध), निचोरि (नि + च्यवन), निठुर (निष्ठुर), निति (नित्य), निति (निमित्त), निदरा (निद्रा), निदेस (निदेश), निधानू (निधान), निफल (निष्फल), निबाह (निर्वाह), निबेही (निवृत्त), नियर (निकट), निरकार (निराकार), निरखण (निरिक्षण), निरजीउ (निर्जीव), निरनय (निर्णय), निरवांण (निर्वाण), निरभै (निर्भय), निरमान (निर्माण), निरमोख (निर्मोक्ष), निरवांना (निर्माण), निलज (निर्लज्ज), निवारी (निवारण), निवासा (निवास), निपादु (निपाद), निसंगा निःशंक, निसा (निशा), निसंकर (निशाकर), निसि (निशा), निसोचु (निःशोच), निस्तरइ (निस्तारण), निहकर्म (निष्कर्म), निहचल (निश्चल) निहचै (निश्चय), निहारू (नीहार), निहोरा (मनोहर), नींद (निद्रा), नींदरी (निद्रा), नीको (निकत), नीझर (निर्झर), नीपुन (निपुण), नीम (निंब), नीरु (नीर), नुपूर (नूपुर), नृपती (नृपति), नृपु (नृप), नेग (नैयमिक), नेगचार (नेग + चाल), नेडा (निकट), नेमा (नियम), नेरो (निकट), नेवत (निमंत्रण), नेवता (निमंत्रण), नेह (स्नेह), नेहु (स्नेह), नैन (नयन), नैहर (मातृ + गृह), नौमी (नवमी), न्याव (न्याय), न्यौति (निमंत्रण), न्याय (स्नान), न्याल (निभाल)।

पंख (पक्ष) पंखि (पक्षिण), पंगति (पंक्ति), पंगुला (पंगु), पंचवटी (पंचवटी), पंचाननि (पंचानन), पंछी (पक्षी), पंडा (पण्डित), पंथु (पंथ), पंन (पर्ण), पेंवारे (प्रवारण), पइसार (प्रवेश), पऊवा (पाद), पखंवारा (पक्ष), पाखान (पाषाण), पखार (प्रक्षालन), पखावज (पक्ष + वाद्य), पमार (प्रकार), पचास (पंचाशत), पचीसा (पंचविंशति), पच्छिम (पश्चिम), पछाड़ा (पश्च), पछतावा (पश्चाताप), पछोरि (प्रक्षालन), पटकी (पतन), पटन (पटन), पटु (पट), पठए (प्रस्थान), पढ़ (पठ), पढनसाल (पाठशाला), पतंगा (पतंग), पतणी (पत्नी), पतला (पाभट), पताल (पाताल), पतिबरता (पतिव्रता), पतियाना (प्रत्यय), पतोहू (पुत्रवधू), पत्यर (प्रस्तर), पदमान (पदमाण), पदारथ (पदार्थ), पदु (पद), पदुम (पद्म), पन (प्रण), पनहीं (उपानह), पनारे (प्रनाली), पब्वह (पर्वत), पयाना (प्रयाण), पयाल (पाताल), परकास (प्रकाश), परख (परीक्षा), परगास (प्रकाश), परचा (परिचय), परजंक (पर्यंक), परजा (प्रजा), परत (पत्र), परतग्य (प्रतिज्ञा), परतच्छ (प्रत्यक्ष), परतीति (प्रतीति), परदेस (परदेश), परधान (परिधान), परन (प्रण), परनसाल (पर्णशाला), परपंच (प्रपंच), परबत (पर्वत), परब्वत (पर्वत), परमारथ (परमार्थ), परला

(प्रलय), परवान (प्रमाण), परधिये (परीक्षण), परत (स्पर्श), परसहु (स्पर्श), परसोत्तम (पुरुषोत्तम), पराण (प्राण), परागा (पराग), परापति (प्राप्ति), परावनो (पलावन), परिचरजा (परिचर्या), परिछाही (प्रतिच्छाया), परितोषू (परितोष), परिवारु (परिवार), परी (पतन), परीति (प्रीति), परेवा (पारावात), परौ (परख), पर्नसाल (पर्णशाला), पलंग (पर्यंक), पलट्या (प्रलोठन), पलास (पलाश), पलुहड़ (पल्ल), पवण (पवन), पवनि (पावन), पषवारा (पक्ष), पषारन (प्रक्षालन), पसरयौ (प्रसारण), पसार (प्रसार), पसुवा (पशु), पतेऊ (प्रस्वेद), पहर (प्रहर), पहरी (प्रहरी), पहली (प्रथम), पहार (पाषाण), पहुँचौ (प्रभूत), पहुप (पुष्प), पहेली (प्रेहलिका), पाउं (पाद), पांच (पंच), पाण (प्रण), पाति (पंक्ति), पान (पणी), पाँवर (पामर), पाँवों (पाद), पाउ (पाद), पाऊ (पादुक), पाख (पक्ष), पाछिलौ (पश्च), पाटी (पट्टिका), पात (पत्र), पातर (पत्र), पाती पत्र, पाथर (प्रस्तर), पानि (पाणि), पाय (पाद), पारथ (पार्थ), पारन (पारण), पारतु (स्पर्श), पारिखो (परीक्षा), पारिषू (परीक्षा), पारु (पार), पालउ (पल्लव), पालना (पल्यंक), पाला (प्रालेय), पालांगों (पाद + लग्न), पाव (पाद), पावनो (पावन), पारवाना (पाषाण), पास (पार्श्व), पासा (पार्श्व), पासार (प्रसार), पाहण (पाषाण), पाहरु (प्रहर), पिंजर (पंजर), पिअर (पीत), पिआरी (प्रिय), पिआस (पिपासा), पिऊं (प्रिय), पिटारा (पिटक), पितर (पितृ), पिनाकु (पिनाक), पिया (प्रिय), पियारा (प्रिय), पियूखन (पीयूष), पिरेम (प्रेम), पिहानी (पिधान), पिउ (प्रिय), पीठि (पृष्ठ), पीपल (पिप्पल), पीर (पीड़ा), पीरौ (पीड़न), पुंजा (पुंज), पुंनि (पुण्य), पुडिया (पुटिका), पुतरि (पुत्तलिका), पुनिम (पूर्णमा), पुनि (पुण्य), पुब्ब (पूर्व), पुरुख (पुरुष), पुरुखोत्तम (पुरुषोत्तम), पुरब (पूर्व), पुराना (पुराण), पुराइ (पूर्ण), पुरानी (पुरातन), पुरावों (पूर्ण), पुरिखा (पुरुष), पुरुब (पूर्व), पुहुकर (पुष्कर), पुहुप (पुष्प), पूछ (पुच्छ), पूत (पुत्र), पून (पूर्ण), पूनों (पूर्णमा), पूरबी (पूर्वीय), पेखक (प्रेक्षक), पेड़ा (पिंड), पेपणां (प्रेक्षण), पेज (प्रतिज्ञा), पैसार (प्रवेश), पोती (पौत्रिक), पोथी (पुस्तक), पौठावा (प्रलोठन), पौन (पवन), प्यासा (पिपासा), प्रकासा (प्रकाश), प्रकासू (प्रकाश), प्रगासा (प्रकाश), प्रतच्छ (प्रत्यक्ष), प्रतिछाह (प्रतिछाया), प्रतिमूरति (प्रतिमूर्ति), प्रदेस (प्रदेश), प्रनत (प्रणत), प्रनामु (प्रणाम), प्रपंच (प्रपंच), प्रवाह (प्रवाह), प्रवेसु (प्रवेश), प्रभाउ (प्रभाव), प्रभू (प्रभु), प्रमान (प्रमाण), प्रयासा (प्रयास), प्रलै (प्रलय), प्रवेसु (प्रवेश), प्रसंगू (प्रसंग), प्रसन्नु (प्रसन्न), प्रसादि (प्रसाद), प्रसेद (प्रस्वेद), प्रातू (प्रातः), प्रापति (प्राप्ति), प्रीतडी (प्रीति), प्रेमु (प्रेम)।

फाँसु (पाश), फटक (स्फटिक), फटा (स्फटन), फन (फण), फर (फल), फरसा (परशु), फसे पाशा, फहराइ (प्रसरण), फांस (पाश), फाँसी (पाश), फाग (फाल्गुन), फाटी (स्फाटन), फिरि (प्रेरणा), फीका (अपक्व), फुंकार (फूल्कार), फुर (स्फुर), फुरि (स्फुरण), फूल (फुल्ल), फूस (तुष), फेनू (फेन), फोरइ (स्फोटन)।

बंका (पङ्क), बंझा (बंध्य), बंदनीय (वंदनीय), बंधावण (बंधन), बंस (वंश), बक (वक), बकता (वक्ता), बकला (वल्कल), बखान (व्याख्यान), बग (वक), बचन (वचन),

बचना (वंचन), बच्चा (वत्स), बच्छ (वत्स), बजनिआ (वाद्य), बजाग्नि (बज्जाग्नि), बटोही (वाट), बड़ (वट), बड़ा (वट्ठ), बड़ा (वटक), बणजा (वाणिज्य), बतावे (वार्ता), बदरी (वारिद), बनफती (वनस्पति), बनासपती (वनस्पति), बनिज (वाणिज्य), बपु (वपु), बभेक (विवेक), बयदेही (वैदेही), बयारि (वायु), बरखत (वर्षा), बरत (व्रत), बरतिका (वर्तिका), बरदा (बलीवर्द), बरन (वर्ण), बरषइ (वर्षा), बरात (वर्तिका), बरदा (बलीवर्द), बरन (वर्ण), बरषइ (वर्षा), बरात (वरयात्रा), बराती (वरयात्री), बरिआई (बलात), वर्ग (वर्ग), बसंग (वर्षा), बलिहारी (बलि), बसंत (वसंत), बसन (वसन), बसाया (वास), बसीठ (वसिष्ठ), बसुधा (वसुधा), बसेरा (वसेरा), बस्तु (वस्तु), बहरा (बधिर), बहिनी (भगिनी), बहिर (बधिर), बहू (वधू), बोंक (वक्र), बोंची (वाचन), बांझ (बंध्या), बांटे (वितरण), बाणिआ (वर्षिक), बांबी (वाल्मीकि), बांह (बाहु), बाइ (वायु), बाएं (वाम), बाग (वल्गा), बाधिनी (व्याघ्र), बाचा (वाक्), बाचाल (वाचाल), बाजणां (वाद्य), बाट (वाट), बात (वार्ता), बाती (वर्तिका), बादरी (वारिद), बान (वाण), बानर (वानर), बाना (वर्ण), बाप (वाच), बावू (वाच), बार (वार), बार (द्वार), बार (बाल), बार (ज्वल), बारा (द्वादश), बारी (बाला), बारी (वाटिका), बालकु (बालक), बालू (बालुका), बाव (वायु), बावलियां (बातुल), बासन (वासन), बासना (वासना), बासर (वासर), बाटन (वाटन), बाहिनी (वाहिनी), बिन्दावन (वृन्दावन), बिआध (व्याध), बिआस (विकास), बिकल (विकल), बिकाया (विक्रय), बिख (विष), बिखरे (विकीर्ण), बिखु (विष), बिगड़ी (विकृत), बिगरी (विकृत), बिगसत (विकसित), बिगारा (विकार), बिछुरा (विच्छेद), बिछोहू (विच्छेद), बिजुरी (विद्युत), बिता (व्यतीत), बिथा (व्यथा), बिदेसां (विदेश), बिदेहू (विदेह), बिधु (विधु), बिनटे (विनष्ट), बिनसे (विनाश), बिपति (विपत्ति), बिपिन (विपिन), बिबस (विषय), बिबाह (विवाह), बिबेकु (विवेक), बिषव (विभव), बिभीषनु (विभीषण), बिमान (विमान), बिया (बीज), बियापी (व्याप्त), बियोगू (वियोग), बिरख (वृक्ष), बिरछ (वृक्ष), बिरला (विरल), बिरहा (विरह), बिरहिनी (विरहिणी), बिरिख (वृक्ष), विरोधा (विरोध), बिलंबा (विलम्ब), बिलभाई (विलम्ब), बिलाई (विडाल), बिलासू (विलास), बिलोई (विलोडन), बिवांन (विमान), बिष (विष), बिषद (विशद), बिषादु (विषाद), बिसतार (विस्तार), बिसनू (विष्णु), बिसरि (विस्मरण), बिसाला (विशाल), बिसेखी (विशेष), बिस्तु (विष्णु) बिस्वास (विश्वास), बिहंगा (विहंग), बिहवल (विह्वल), बिहाना (विभागत), बिहीना (विहीन), बीछी (वृश्चिक), बीजु (विद्युत), बीता (व्यतीत), बिहाग (विभात), बिहीना (विहीन), बीरा (वीटक), बीसा (विशति), बुंद (विन्दु), बुड़ापा (वृद्ध), बूझ (बुद्धि), बूक (वृक), बूष (वृष), बूषभ (वृषभ), बैत (वेत), बैगि (वेग), बैटा (वटु), बेद (वेद), बेधत (वेधन), बेनी (वेणी), बेर (वार), बैल (विल्व), बैल (वल्लरी), बेसाह (विश्वास), बैठ (वेशन), वैण (वाणी), बेद (वैद्य), बैन (वचन), बैरागा (वैराग्य), बैल (वलद), बैस (वयस), बैस (वैश्य), बेई (वपन), बोलणां (ब्रूयते), बौर (मुकुल), बौरा (बातुल), ब्यंद (बिन्दु), ब्याई (विजनन), ब्याध (व्याध), ब्याला (व्याल), ब्याह (विवाह),

व्योम (व्योम), व्यौहार (व्यवहार), व्रतु (व्रत), ब्रह्मचर्ज (ब्रह्मचर्य), ब्राह्मण (ब्राह्मण), ब्रिधा (व्यथा), ब्रिष (वृक्ष), ब्रिष्टि (वृष्टि)।

भंगी (भक्ति), भंडार (भंडागार), भँवर (भ्रमर), भइया (भ्राता), भक्खन (भक्षण), भखत (भक्षण), भगति (भक्ति), भच्छ (भक्ष्य), भच्छन (भक्षण), भटका (भ्रम), भहुँवा (भंड), भदेस (भद्र), भभर (भय), भभीछन (विभीषण), भभूति (विभूति), भरंति (भ्रांति), भर (भरण), भरतार (भर्ता), भरथरी (भर्तृहरि), भरम (भ्रम), भरमु (भ्रम), भला (भद्र), भलो (भद्र), भवन (भुवन), भवरा (भ्रमर), भांग (भुंगा), भाँड (भंड), भाँवरि (भ्रमण), भाई (भ्राता), भाग (भाग्य), भागू (भाग), भाटी (भाट्ट), भात (भक्त), भाभा (भामिनी), भालू (भालुक), भाषन (भाषण), भिसार (विनिर्वास), भीख (भिक्षा), भीतर (अभ्यंतर), भीति (भित्ति), भील (भिल्ल), भुअंगू (भुजंग), भुअपति (भूपति), भुआलू (भूपाल), भुनगा (भृंग), भुवंगा (भुजंग), भूख (बुभुक्ष), भूषण आभूषण, भूप (भूप), भूंगा (भृंग), भेड (भेद), भेक (भंडूक), भेडी (भेष), भैया (भ्राता), भोभीत (भयभीत), भोरू (भोर), भोला (भद्र), भौरा (भ्रमर), भौह (भू), भ्रमु (भ्रम), भ्रिग (भृंग), भ्वै (भूमि)।

मंगलु (मंगल), मंछ (मत्स्य), मंजू (मयूर), मंझारी (मध्य), मंत (मंत्र), मंदर (मंदिर), मझके (मातृगृह), मकड़ी (मर्कटक), मगर (मकर), मगु (मार्ग), मच्छ (मत्स्य), मच्छर (मशक), मछरी (मत्स्य), मझार (मध्य), मटिया (मिट्टी), मढ (मठ), मढे (मंडन), मथ्यो (मथन), मदन (मदन), मद्धिम (मध्यम), मधरिया (मधुर), मधूकरी (मधुकरी), मनई (मानव), मनमथ (मन्मथ), मानय (मानक), मनि (मणि), मनिखा (मानुष), मनिका (माणिक्य), मनुआ (मनस), मनोरथु (मनोरथ), मनोर्थ (मनोरथ), मिमिता (ममता), मरइ (मरण), मरकट (मर्कट), मरजादा (मर्यादा), मलान (म्लान), मलेछ (म्लेच्छ), मसतिक (मस्तक), पसान (श्मशान), महंगा (महार्घ), महतारि (माता), महों (मध्य), महिपालु (महिपाल), महुआ (मधूक), महूरत्य (महूर्त), महेसा (महेश), मांखी (मक्षिका), माँग (मार्ग), मांजहि (मज्जन), माँथ (मस्तक), माई (मातृ), माटी (मृत्तिका), मातु (मातृ), मानिक (माणिक्य), माय (मातृ), मारग (मार्ग), मारिग (मार्ग), मालवान (माल्यवान), माह (मध्य), माहुर (मधुर), मिताई (मित्र), मिरतक (मृतक), मिरिग (मृग), मिसिर (मिश्र), मींचु (मृत्तु), मीटी (मिट्ट), मजित (मर्दन), मीत (मित्र), मुंदरी (मुद्रिका), मुए (मृत), मुकुति (मुक्ति), मुखड़ा (मुख), मुखिया (मुख्या), मुझे (महाम), मुठि (मुष्टि), मुड़ाए (मुंडन), मुनियर (मुनिवर), मुनीसु (मुनीश), मुरछा (मूर्च्छा), मुरलिया (मुरली), युवा (मृत), मुसुकाइ (मुस्कान), मूँछ (मृश्र), मूका (मुष्टि), मूरख (मूर्ख), मूरी (मूल), मूस (मूषक), मृगराऊ (मृगराज), मेढक (मंडूक), मेर (मिला), मेर (मेरु), मेह (मेघ), मेहरी (महिला), मेन (मदन), मैया (मातृ), मोइ (मम), मोटा (मुष्ट), मोती (मौक्तिक), मोर (मयूर), मोल (मूल्य), मोहिं (मम), मोहू (मोहन), मौनी (मौन), मौसी (मातृश्रवसा), भ्रिधा (मृग), म्हौरा (महाम), म्हेल (मेल)।

यथारथ (यथार्थ), यदपि (यद्यपि), यह (एषः), यहै (इह), युगम (युग्म), युवती

(युवति), यूथा (यूथ), योवन (यौवन)।

रंका (रंक), रंगि (रंग), रइनि (रजनी), रकत (रक्त), रख (रक्षण), रखवाले (रक्षक), रगरि (घर्षण), रघुनाथु (रघुनाथ), रघुरैया (रघुराज), रचइ (रचना), रच्छा (रक्षा), रजनिचर (रजनीचर), रजपूत (राजपूत), रजु (रज्जु), रतन (रत्न), रतनाकर (रत्नाकर), रती (रत्तिका), रती (रति), रदपुट (रदपट), रनिबास (राज्ञी + वास), रम (रमण), रमनीय (रमणीय), रम्यो (रम्य), रमैया (रमण), रविनि (रमणी), रसग्य (रज्ञ), रसमि (रश्मि), रसाइण (रसायन), रसाला (रसाल), रहँट (अरधट्ट), रहँसेठ (हर्ष), रहसहि (हर्ष), रॉक (रंक), रॉड (रंडा), रॉमु (राम), राइ (राजा), राडर (राज-पुत्र), राकस (राक्षस), राधौ (राधव), रॉचा (रंजन), राच्छस (राक्षस), राजदुवारै (राजद्वार), राजपूत (राजपुत्र), राजरिषि (राजर्षि), राजिव (राजीव), राजू (राज्य), राज्यां (राज्य), रात (रात्रि), राति (रात्रि), राधो (आराधना), रामचन्दु (रामचन्द्र), रामू (राम), राय (राजा), रार (राद), राव (राजा), रावन (रावण), रावर (राजपुत्र), रासि (राशि), राहू (राहु), रिखि (रक्षि), रिझाई (रंजन), रितुराज (ऋतुराज), रिन (ऋण), रिषि (ऋषि), रीछ (ऋक्ष), रीझ (रंजन), रीता (रिक्त), रुकमनि (रुक्मिणी), रुत (ऋतु), रुदन (रुदन), रुहिर (रुधिर), रुई (रोम), रुख (वृक्ष), रुख (रुक्ष), रूठा (रुष्ट), रूपु (रूप), रूसा (रुष्ट), रेखु (रेखा), रेनु (रेणु), रैन (रजनी), रोइ (रुदन), रोगू (रोग), रोड़ा (लोष्ठ), रोर (रवण), रोस (रोष), रोहू (रोहित), रौताई (राजपुत्र), रौरा (राजपुत्र)।

लंकेस (लंकेश), लंगूर (लांगूल), लकड़ी (लगुड), लक्खन (लक्ष्मण), लक्ष (लक्ष्य), लखन (लक्षण), लखन (लक्ष्मण), लगाव (लगन), लच्छ (लक्ष्य), लच्छि (लक्ष्मी), लछिमनु (लक्ष्मण), लछिमी (लक्ष्मी), लजाई (लज्जा), लड़ाई (रण), लड़ी (यष्टि), लत (रत), लपटाइ (लिप्त), लपसी (लप्सि), लबार (लपन), ललचानी (लालसा), लवणि (लवण), लह (लब्ध), लहसुन (लशुन), लहु (लघु), लहुरिया (लघु), लाख (लक्षण), लायौ (लाघव), लाज (लज्जा), लाभु (लाभ), लालच (लालसा), लाला (लाल), लाह (लाक्षा), लाहु (लाघ), लिलार (लिलाट), लुकाइ (लोप), लुहार (लौहकर लूँड (लवण), लूक (उल्का), लेखणी (लेखनी), लरुआ (लेह), लोथि (लोष्ठ), लोह (लौह), लोह (लोभ)।

वंक (वक्र), विंगी (व्यंग्य), वैदा (वैद्य), व्यौहार (व्यवहार)।

षमा (क्षेम)।

संजम (संयम), सत्व (सत्य), सत (शत), सब (सर्व), सारी (शाटिका), सुपारी (शूर्पारिका), सैसवा (शैशव), सोणा (स्वर्ण), सोन (स्वर्ण), सोलह (षोडश), सौति (सपत्नी)।

हत्य (हस्त), हरदी (हरिद्रा), हांड (अस्थ), हात (हस्त), हिमाला (हिमालय), हुलास (उल्लास), हेवंत (हेमंत), होरी (होलिका)।

6.3. विषयानुसार वर्गीकरण

हिन्दी शब्द-समूह में तद्भव शब्द संख्या के अनुसार सर्वाधिक है। सर्वाधिक

संख्या होने के कारण इनका विस्तार जन-जीवन के प्रत्येक कोने तक है। जीवन के किसी भी भाग का कोई भी अंश ऐसा न होगा जिसके सम्बोधन अथवा संकेत के लिए तदभव शब्दों का सहारा न लेना पड़ता हो। यदि तदभव शब्द का एक वर्ग खान-पान से सम्बन्धित है तो दूसरा धर्म से। इस प्रकार इस विस्तृत वर्ग को खान-पान, धर्म, वनस्पति, जन्तु, व्यवसाय, चिकित्सा, आवास, शरीरांग आदि से सम्बन्धित विभिन्न उपवर्गों में विभक्त किया जा सकता है। इस प्रकार इस वर्ग के विभाजन से शब्दों का अध्ययन आसान हो जाता है तो साथ ही उनके विभिन्न क्षेत्रों के महत्व का भी ज्ञान हो जाता है। तदभव शब्दों की संख्या अन्य वर्गों के शब्दों की अपेक्षा कहीं अधिक है इस कारण भक्ति-काल में प्रयुक्त होने वाले सभी शब्दों की पूरी सूची प्रस्तुत करना सम्भव नहीं है। यहाँ पर विभिन्न वर्गों के कुछ प्रमुख शब्दों को प्रस्तुत किया जाएगा जिनके प्रयोग-उद्धरण पूर्व के पृष्ठों की शब्दानुक्रमणिका में दिए गए हैं।

6.3.1. खान-पान संबंधी

मनुष्य ही नहीं संसार के सभी जीवों की मूल आवश्यकताओं में खान-पान का महत्वपूर्ण स्थान है। भारतवर्ष का प्राचीनकाल जिसे स्वर्ण-युग कहा जा सकता है, में भी इन शब्दों को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। उस समय के शब्दों में कुछ ज्यों के त्यों अर्थात् तत्सम रूप में, हिन्दी में आ गए हैं तो कुछ परिवर्तित होकर आए हैं। खान-पान के महत्व के अनुसार इस वर्ग के शब्दों की संख्या भी एक लम्बी लाइन में दीखती है। भक्ति-काल में प्रयुक्त होने वाले कुछ प्रमुख शब्दों को प्रस्तुत किया जाता है—

अँचवति (आचमन), आधाव (अधव), अन (अन्न), अन्नप्रासन (अन्नप्राशन), अपना (अपर्णा), अलूणो (अ + लवण), अलोने (अ + लवण), अहार (आहार), आधमनु (आधमन), आटा (अन्न), उदिक (उदक), कुम्हड़ (कूप्मांड), खीर (क्षीर), खीरा (क्षीरक), गंगोदिक (गंगोदक), गूली (उदुंबर), घवि (घृत), धृत (धृत), चबेना (चर्वण), चाउर (तंदुल), छीर (क्षीर), धीर (क्षीर), जूठनि (जुष्ट), नीर (नीर), तंदुल (तंडुल), तंबौर (ताम्बूल), दूध (दुग्ध), पिआस (पिपास), प्यासा (पिपासा), भखत (भक्षण), भच्छन (भक्षण), भात (भक्त), लपसी (लपिश), लवणि (लवण), लहसुन (लशुन), लूंड (लवण), सुपारी (शूर्पारिका), हरदी (हरिद्रा)।

6.3.2. शरीरांग संबंधी

सभी जीवों के प्रत्येक अंग का अपना अलग-अलग महत्व है। सभी जीवों में मनुष्य सबसे अधिक चैतन्य प्राणी है इस कारण उसके अंगों का अधिक चित्रण होना स्वाभाविक ही है। अंगों के महत्व के अनुसार कवि उनके नामों की ओर

संकेत करता है भक्ति-काल में प्रयुक्त होने वाले प्रमुख शरीरांग संबंधी शब्द निम्नलिखित हैं—

अखियाँ (अक्षि), अंगुरि (अंगुलि), अंब (अंबु), अंसुअन (अश्रु), अधंग (अर्द्धांग), अस्त (अस्थि), अस्थन (स्तन), अंखिर (अक्षि), अखि (इक्षु), अरु (उरु), ओठ (ओष्ठ), कंगाल (कंकाल), कंदु (कंठ), कंध (स्कंध), कट (कटि), कना (कर्ण), कपार (कपाल), कपाला (कपाल), कपोला (कपोल), कया (काया), करि (कटि), करेजा (कालेय), काँख (कक्ष), कांध (स्कंध), काननि (कर्ण), कान (कर्ण), केस (केश), कोपर (कपाल), खाखर (कंकाल), खाल (क्षाल), गरै (गल), गाता (गात), गातु (गात), गाला (गल्ल), गिय (ग्रीवा), गिर (गिरा), गिब (ग्रीवा), गोवों (ग्रीवा), ग्रीवों (ग्रीवा), चख (चक्षु), चखु (चक्षु), चरणां (चरण), चरणनि (चरण), चरम (चर्म), चष (चक्षु), चाम (चर्म), जंघ (जंघा), जिभ्या (जिह्वा), जीभ (जिह्वा), जीह (जिह्वा), डिठि (दृष्टि), डीठि (दृष्टि), पोण (नयन), गैण (नयन), तचा (त्वचा), तण (तन), तरजनी (तर्जनी), थन (स्तन), दंतुरिया (दंत), दांत (दंत), नक (नासिका), नयना (नयन), नारिका (नाड़ी), नैन (नयन), पाई (पाद), पानि (पाणि), पाय (पाद), पूँछ (पुच्छ), भौह (भ्रू), मस्तिकि (मस्तक), माथ (मस्तक), मुखड़ा (मुख), मुटि (मुष्टि), मूँछ (श्मश्रु), मूका (मुष्टि), रदपुट (रदपट), लिलार (ललाट), हस्थ (हस्त), हांड (अस्थि), हात (हस्त)।

6.3.3. पशु-पक्षी-संबंधी

हिंदी साहित्य के कवि संस्कृत साहित्य के कवियों की भांति प्रकृति चित्रण में अत्यंत निपुण रहे हैं। उनका मन सबसे अधिक प्रकृति प्रांगण में रमता रहा है। प्रकृति प्रांगण में विचरण करने वाले पशु-पक्षी प्रकृति के प्राण-स्वरूप हैं। इनके द्वारा प्रकृति का कोना-कोना अनेक प्रकार की प्रसन्नतादायक ध्वनियों से गुंजता रहता है। भक्ति-कालीन कवियों ने इनसे संबंधित अनेक तदभव शब्दों का प्रयोग किया है; यथा—

असु (अश्व), अस्व (अश्व), इन्दऊँ (इन्दूर = चूल्हा), उलू (उलूक), ऊँट (उष्ट्र), कंचुकि (कंचुल), कडवा (काक), कच्छ (कच्छप), करह (करभ = ऊँट), करि (करिन्), काग (काक), कोरा (कीट), कुकड़ी (कुक्कुट), कुरकुट (कुक्कुट), कूज (क्रौंच), कोइल (काकिल), कोका (कोक), कोली (कोल), खगेस (खगेइ), खगेसा (खगेरा), खग (खग), गड (गो), गडवन (गो), गय (गज), गाय (गो), गीध (गृध्र), गै (गो), गैया (गो), धुंण (धुंण), धुन (धुण), घोड़ा (घोटक), चंच (चंचु), चकई (चक्रवाक), चकवा (चक्रवाक), चकोरा (चकोर), चकोर (चकोर), चातकि (चातक), चात्रिक (चातक), चिड़िये (घटक), चीता (चित्रक), चेटुवा (चटक), चोंच (चंचु), छेरी (छेलिका), छोना (शावक), जंत (जंतु), टीड़ी (टिट्टिभ), तुरंगा (तुरंग), धेण (धेनु), पंछी (पक्षी), पतंगा (पतंग), पशुक (पशु), फन (फण), बग (बक), बानर (वानर), बिलाइ (बिलाड), हिंगा (विहंग), बीछी (वृश्चिक), बूषभ (वृषभ), बैल (वलद), ब्याल (व्याल), भंवरा (भ्रमर), भालू (भालुक), भुजंग (भुजंग), मेक

(मंडूक), वेड़ी (मेष), भौरा (ध्रमर), ध्रिंग (धृंगा), मंछर (मशक), मंजू (मयूर), मकड़ी (मर्कट), मगर (मकर), मच्छर (मत्स्य), मच्छर (मशक), मछरी (मत्स्य), मरकट (मर्कट), मांखी (मक्षिका), मिरिंग (मृग), मूस (मृषक), मेढक (मंडूक), मोर (मयूर), मिथ्या (मृग), रोछ (ऋक्ष), लंगूर (लांगूल)।

6.3.6. वनस्पति संबंधी

प्रकृति को सुरम्य बनाने में सबसे बड़ा योगदान वनस्पति का होता है। जिस प्रकार हरे-भरे पेड़े-पौधों तथा खिले हुए फूलों से प्रकृति का आकर्षक रूप सजीव हो उठता है उसी प्रकार साहित्य में वनस्पति के समुचित चित्र से साहित्य भी सरस, आकर्षक तथा सजीव हो उठता है। भक्ति काल के साहित्य में प्रयुक्त होने वाले ऐसे शब्द निम्नलिखित हैं—

अंकुरे (अंकुर), आंव (आम्र), कंजु (कंज), कदरी (कदली), कनियार (कर्णिकार), कपासू (कपास), कमोदनी (कुमुदिनी), करि (कलिका), करी (कलिका), कैवल (कमल), कवल (कमल), कास (काश), किसलय (किसलय), कुमुदनी (कुमुदिनी), कुम्हड़ (कूम्पाण्ड), कुसम (कुसुम), कूपल (कोपल), केतकि (केतकि), केरा (कदली), कोई (कुमुदिनी), खजूरि (खजूर), गुंज (गुंजा), गोहूँ (गोधूम), चंपा (चंपक), चमेली (चम्पक), जंभीर (जम्बीर), जव (यव), जौव (यव), तमाला (तमाल), तारिवन (तालवर्ण), तर्वर (तरुवर), धतूरा (धुस्तूर), नरियर (नारिकेल), नीम (निंब), पन (पर्ण), पलास (पलाश), पलुह (पल्लव), पटुप (पुष्प), पान (पर्ण), पात (पत्र), पलास (पलाश), पलुह (पल्लव), पटुप (पुष्प), पान (पर्ण), पात (पत्र), पालठ (पल्लव), पीपल (पिप्पल), पुहकर (पुष्कर), पुहुप (पुष्प), फर (फल), फूल (फुल्ल), फूस (तुष), बकला (वल्कल), बनफती (वनस्पति), बनासपती (वनस्पति), बिरख (वृक्ष), बिरछ (वृक्ष), बेल (वल्लरी), बौर (मुकुल), रूख (वृक्ष), रूख (वृक्ष), रूख (रूक्ष)।

6.3.6. स्वास्थ्य एवं चिकित्सा संबंधी

प्राचीनकाल में आयुर्वेद चिकित्सा का विशेष प्रचार-प्रसार था। आयुर्वेद विज्ञान की अधिकांश पुस्तकें अब भी संस्कृत भाषा में लिखी मिलती हैं। इस प्रकार हिंदी में आने वाले ऐसे शब्दों में तत्सम शब्दों की संख्या अधिक है किंतु तद्भव में आने वाले सीमित शब्दों का अपना विशेष महत्व है। 19वीं शताब्दी में अंग्रेजी चिकित्सा प्रणाली का विकास हुआ इस कारण भक्ति-काल में इसके अभाव का प्रश्न ही नहीं उठता है। इस वर्ग के कुछ प्रमुख शब्द निम्नलिखित हैं—

आक (अर्क), ओखद (ओषधि), ओषदि (ओषधि), औषधी (औषध), खीना (क्षीण), खीण (क्षीण), खीन (क्षीण), खेदा (खेद), खेम (क्षेम), गलसुई (गलसूचिका), छाल (छाला), छीन (क्षीण), छीना (क्षीण), छुधा (क्षुधा), छुद्रित (क्षुधित), छोभु (क्षोभु), छोह (क्षोभ),

जठरागी (जठराग्नि), जड़ी (जड़), जमुहाई (जम्भा), जर (ज्वर), जरड़ (ज्वलन), जरजर (जर्जर), जरता (ज्वलन), जर (ज्वर), जुवन (यौवन), जोवन (यौवन), झोलै (ज्वलन), दूबर (दुर्बल), पीर (पीड़ा), विथा (व्यथा), वैद (वैद्य), मूरछा (मूर्छा), रोगू (रोग), वैदा (वैद्य), क्षेमा (क्षेम), हुलास (उल्लास)।

6.3.6. वस्त्र-संबंधी

जीवन की मूल आवश्यकताओं में वस्त्र का मुख्य स्थान है। वस्त्र एक ओर हमारे शरीर की ढंक्कर लज्जा से बचाता है जो कि हमारी संस्कृति और सभ्यता का सबसे बड़ा आदर्श है, तो दूसरी ओर श्रृंगार का साधन भी है। आज के युग में वस्त्र को शरीर ढंक्ने का सामान्य माध्यम तथा श्रृंगार के रूप में प्रयुक्त करने की होड़-सी लगा हुई है। हिंदी साहित्य के मध्य युग में श्रृंगार को, विशेषकर वस्त्र को विशेष महत्व नहीं दिया जाता रहा है। कहने का तात्पर्य यह है कि उस समय के जनसामान्य में यह विचारधारा थी कि वस्त्र के माध्यम से अपनी लज्जा को बचाते हुए शरीर को ढंके रखें। यही कारण है इस काल की शब्दावली में वस्त्र-संबंधित तद्भव शब्दों को अन्य वर्गों की अपेक्षा कहीं कम स्थान मिला है। कुछ प्रमुख शब्द निम्नलिखित हैं—

कछोट्टी (कक्ष), कपड़ा (कर्पट), कपड़ा (कर्पट), काछनी (कक्षा), कामरि (कंबल), कामलडी (कंबल), गूदड़ी (ग्रंथ), जमनिका (यवनिका), पटु (पट), परधान (परिधान), बसन (वस्त्र)।

6.3.7. श्रृंगार-संबंधी

बीसवीं शताब्दी में श्रृंगार-साधनों के उत्पादन तथा उनके प्रयोग की होड़-सी लगी हुई है। दिन-प्रतिदिन इसका प्रयोग बढ़ता जा रहा है। प्राचीन युग में जबकि वस्त्रों का भी सजने-धजने के रूप में कोई आकर्षण नहीं था तो अन्य प्रसाधनों की तो कोई बात ही नहीं। जनसामान्य में श्रृंगार के प्रति कोई आकर्षण नहीं रहा होगा। यही कारण है कि भक्त कवियों के काव्य में ऐसे बहुत थोड़े शब्द आए हैं—

अंजि (अंजन), आँचर (अंचल), आँजति (अंजन), कंचुकि (कंचुकी), कस्तूरि (कस्तूरी), काजर (कज्जल), किंकिनी (किंकिणी), चूड़ाकरन (चूड़ाकरण), चूड़ामनि (चूड़ामणि), जरित (जटित), टीका (तिलक), तिल्क (तिलक), तेल (तैल)।

6.3.8. प्रकृति संबंधी

कवि, चंद्रमा की शीतल तथा मुस्कराती चांदनी, प्रातःकाल स्वर्णिम चादर फैलाने वाले बालसूर्य, कलकल करके गीत गाती हुई अग्रसर होती नदी को देखकर विवश हो जाता है, उन भावों को अपने काव्य में उतार देने के लिए। इस प्रकार का चित्रण चाहे कवि द्वारा सीधे लक्ष्य करके किया गया हो अथवा प्रसंगतः आ गया हो काव्य का रूप निखर

जाता है। भक्ति-काल में प्रकृति के विभिन्न अंगों का चित्रण किया गया है। इस प्रकार प्रकृति चित्रण करते हुए अनेक तद्भव शब्दों का प्रयोग किया गया है—

अंतरिक्ष (अंतरिक्ष), अंबर (अंबर), अकाशां (आकाश), आदित (आदित्य), उदिष (उदधि), उक (उल्का), एव (आदित्य), ओरे (उपल), कदरों (कंदर), कंवल (कमल), कदम (कंदब), किरन (किरण), क्यारी (केदार), खोह (गुहा), खोहा (गुहा), गंग (गंगा), गगना (गगन), गांग (गंगा), गांगी (गंगा), गिर (गिरि), गोदावरि (गोदावरी), गोमत (गोमती), गोमती (गोमती), धड़ (धन), धण (धन), चंदा (चन्द्र), छपा (क्षपा), छिति (क्षिपि), छीरनिषि (क्षीरनिधि), जंगलि (जंल), जउन (यमुना), जमणां (यमुना), जमुन (यमुना), जमुना (यमुना), जलद्ध (जलद), जलहर (जलधर), जलासय (जलाशय), जलु (जल), जौन (यमुना), झूरि (धूलि), तड़ि (तड़ित), तरंगा (तरंग), तरंगिनी (तरंगिणी), दामण (दामिनी), धरणि (धरणी), नखत (नक्षत्र), नछत (नक्षत्र), निसि (निशा), पब्वत (पर्वत), परब्वत (पर्वत), परागा (पराग), परिहारी (परिहारी) (प्रति + छाया), पहारु (प्रहर), पौन (पवन), प्रातु (प्रातः), बदरी (वारिद), बयारी (वायु), बरखत (वर्षा), बसंत (वसंत), बादरी (वारिद), वात (वायु), बिजुरी (विद्युत), बिधु (विधु), बिपिन (विपिन), ब्योम (व्योम), ब्रिस्टि (वृष्टि), भूँ (भूमि), मेह (मेघ), रइन (रजनी), रतनाकर (रत्नाकर), रसमि (रश्मि), रात (रात्रि), रितुराज (ऋतुराज), रत (ऋतु), रैन (रैन), लूक (उल्का), हिमाला (हिमालय), हेवंत (हेमंत)।

6.3.9. मानव संबंधसूचक

मानव सामाजिक प्राणी है। सामाजिक संबंधों से जहां दुःख के भार को हल्का करने तथा सुख और प्रसन्नता को विस्तृत करने में सहायता मिलती है वहीं उन्नति पथ पर आगे बढ़ने की प्रेरणा तथा शक्ति मिलती है। इस कारण समाज के अनेक संबंध अतीतकाल से चले आ रहे हैं। भारतीय संस्कृति और सभ्यता में सामाजिक संबंधों का विशेष महत्व है। हिंदी साहित्य में आए संबंधसूचक शब्दों के एक वर्ग को तत्सम श्रेणी में रख सकते हैं तो दूसरे तद्भव में। तद्भव वर्ग में आने वाले प्रमुख शब्द निम्नलिखित हैं—

अगरज (अग्रज), अनुजबधू (अनुजवधू), कंता (कांत), गरवार (गुरु), गरु (गुरु), गुरदेव (गुरुदेव), गुरि (गुरु), गुरू (गुरु), चेरा (चेटक), जननि (जननी), जननिउ (जननी), जवाई (जामात), जामाता (जामात), तनै (तनय), तया (स्त्री), धिआ (दुहिता), धीय (दुहिता), नणद (ननंद), पतणी (पत्नी), पतोहू (पुत्रवधू), पितर (पितृ), पिउ (प्रिय), पुरिखा (पुरुष), पूत (पुत्र), पोती (पौत्रिक), बच्चा (वत्स), बहिनी (भगिनी), बहू (वधू), बेटा (वत्स), भइया (भ्राता), भरतार (भर्ता), भाई (भ्राता), भामा (भामिनी), भैया (भ्राता), महतारि (मातृ), माई (मातृ), माय (मातृ), मितारि (मित्र), मैया (मातृ), मौसा (मातृश्वसा), सौति (सपत्नी)।

6.3.10. आवास संबंधी

मनुष्य की मूल आवश्यकताओं में भोजन-वस्त्र के पश्चात् आवास का स्थान है। आवास की समुचित व्यवस्था सभ्यता का प्रतीक है। भक्तिकाल के साहित्य में आवास संबंधी कुछ तद्भव शब्दों का प्रयोग किया गया है।

अटारी (अट्टालिका), अबास् (आवास), अवासों (आवास), खंभ (स्कम्भ), खंभवा (स्कम्भ), गिरिह (गृह), गेउ (गृह), गेहू (गृह), गेहा (गृह), गेहु (गृह), घर (गृह), घरवा (गृह), घरि (गृह), घरु (गृह), छप्पर (छप + पट), जनवासा (जनवास), देहरी (देहली), धाम (धाम), धौराहर (धवल + गृह), परनशाला (पर्णशाला), पर्नशाल (पर्णशाला), रनिवास (राज्ञा + बास)।

6.3.11. समय और संख्या सूचक

जीवन में समय का सर्वाधिक महत्व है। समय पर ध्यान रखना ही जीवन की सच्ची सफलता का प्रतीक है। भारत प्राचीन काल से ज्योतिष तथा गणित विद्या के लिए विश्वविख्यात है। हिंदी साहित्य में दिन, माह, वर्ष, ऋतु के नामों के साथ संख्या सूचक शब्दों का भी पर्याप्त प्रयोग किया गया है। इस प्रकार के प्रमुख शब्द निम्नलिखित हैं—

अंतिकलि (अंतकाल), अठ (अष्ट), अठारह (अष्टादश), अट्यासी (अष्टाशीति), अद्रा (आद्रा), अष्टदश (अष्टादश), असाढ (आषाढ़), अहनिति (अहर्निश), आसाढ़ (आषाढ़), इकीस (एकविंशति), उन्नीस (एकोनविंशति), उनचास (एकोनपचाशत), ऋतुन्ह (ऋतु), एकइ (एक), एकादसी (एकादशी), कलियुग (कलियुग), कोरी (कोटी), गोषम (ग्रीष्म), चतुरदस (चतुर्दश), चौबिस (चतुर्विंशति), चौगुणे (चतुर्गुण), चौगुने (चतुर्गुण), चौथ (चतुर्थी), चौथे (चतुर्थ), चौदसि (चतुर्दश), चौदह (चतुर्दश), चौबिसा (चतुर्विंशति), चौरासी (चतुरशीति), चौसठ (चतुरषष्टि), छठ (षष्ठी), छठा (षष्ठ), छठी (षष्ठी), छटपद, छपद (षटपद) छमाही (षट + मास), छव (षट), छह (षट), छिनी (क्षण), छिनु (क्षण), जेठ (ज्येष्ठ), जोजन (योजन), तिलोक (त्रिलोक), तीज (तृतिथी), तीजै (तृतिथी), तेरसि (त्रयोदशी), दसमी (दशमी), दहें (दश), दुइजि (द्वितीया), देवहरा (दिवस), द्वादसि (द्वादस), द्वै (द्वय), नौमी (नवमी), पखवारा (पक्ष), पचास (पंचाशत), पचीसा (पंचविंशति), परौ (परश्वः), पांचू (पंच), पाख (पक्ष), पूनम (पूर्णिमा), पूनों (पूर्णिमा), फाग (फाल्गुन), बारा (द्विदश), बीसा (विंशति), सत (शत), सोलह (षोडश)।

6.3.12. साहित्य-शिक्षा संबंधी

भक्तिकाल के अधिकांश कवि अनपढ़ थे। वे किसी विद्यालय में शिक्षा न प्राप्त कर साधु संगत में शिक्षित एवं दीक्षित हुए थे। 'मसि कागद छूयौ नहि कलम गह्यौ नहि

हाथ' भक्त कवि का यह कथन उक्त तथ्य का एक अच्छा प्रमाण है। इतना होते हुए भी कुछ शब्द साहित्य एवं शिक्षा के विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त होते रहे हैं।

अच्छर (अक्षर), अविधा (अविद्या), आपिर (अक्षर), ओझा (उपाध्याय), कवि (कवि), कवि (कविता), कवी (कवि), जजुर वेद (यजुर्वेद), जोतिग (ज्योतिष), ज्योतिषु (ज्योतिष), पढ़ (पठ), पढ़नशाला (पाठशाला), पोथी (पुस्तक), वेद (वेद), लेखा (लेखनी)।

6.3.13. सेना एवं शासन संबंधी

भक्तिकाल के अधिकांश कवि सज्जनों की टोली में अथवा अकेले सामान्यजन में विचरण करते हुए उन्हें समुचित पथ पर चलकर भक्ति के अमृत रस-पान की प्रेरणा देते रहे हैं। भक्तिकालीन कवि वीरगाथा काल के कवियों की भांति राजा के साथ रहकर युद्ध क्षेत्र में भी लेखनी का प्रयोग करने के लिए विवश न होकर स्वच्छन्द कहने वाले एवं विचरण करने वाले थे। यही कारण है कि सेना तथा शासन-संबंधी शब्दों की संख्या अन्य कुछ वर्गों के शब्दों की संख्या से कहीं कम है। इस वर्ग के कुछ प्रमुख शब्द निम्नलिखित हैं—

कटकई (सैन्य), गद (गदा), छात (छत्र), जुझहि (युद्ध), जुत्थ (यूथ), जुद्ध (युद्ध), जुझ (युद्ध), जुह (यूथ), जोध (योद्धा), झुझ (युद्ध), टंकोर (टंकार), तूर (तूर्य), धज (ध्वज), धुजा (ध्वजा), नूपती (नृपति), नूपु (नृप), बाहिनी (बाहिनी), भुरूपति (भूपति), भूपु (भूप), राई (राजा), राउर (राजपुत्र), राजु (राज्य), राज्यां (राज्य), राय (राजा), राव (राजा), रौताई (राजपुत्र), रौरा (राजपुत्र)।

6.3.14. वाणिज्य संबंधी

भक्तिकाल में वाणिज्य से संबंधित शब्दों की संख्या से बहुत कम है। इस वर्ग के मुख्य शब्द हैं—

बणजा (वाणिज्य), बनिज (वाणिज्य), बाणियां (वणिक), बिकाया (विक्रय), बैस (वैश्य), लाहु (लाभ)।

6.3.15. स्थान-सूचक

हिंदी साहित्य के इतिहास के भक्तिकाल में प्रयुक्त होने वाले अधिकांश स्थान सूचक शब्द धर्म-क्षेत्र के हैं। इस प्रकार के शब्द-प्रयोग का मुख्य कारण भक्तों द्वारा तीर्थ स्थलों पर निवास करना अथवा विचरण करते हुए सज्जन समागम रहा होगा। एक ओर भक्त कवियों का एक वर्ग जिनका प्रतिनिधि कबीरदास करते हैं, उन्होंने धार्मिक स्थानों का संकेत कर, उनसे संबंधित बाह्य आढम्बरों की ओर उंगली उठाई है तो दूसरी ओर तुलसी तथा सूर ऐसे सगुणोपासक कवियों ने

अयोध्या तथा काशी का नाम लेकर उसे पुण्य स्थली बताया है। इनके प्रयोग के अन्य भी कारण हो सकते हैं। इस प्रकार प्रयुक्त होने वाले शब्दों में निम्नलिखित को प्रमुख स्थान मिला है—

अजोध्या (अयोध्या), अवध (आयोध्या), उजोनी (उज्जयिनी), औध (अयोध्या), काती (काशी), कुरुखेत (कुरुक्षेत्र), कैलामू (कैलाश), कोसलपुर (कौशलपुर), कोसला (कोशला), खिखिद (किष्किंध), गवालियर (गवालियर), गोकुला (गोकुल), चिततुर (चित्तौड़), जमपुर (यमपुर), जमपुरि (यमपुर), विद्रवन (वृन्दावन)।

6.3.18. वस्तु सूचक

अतीतकाल से मानव ज्यों-ज्यों सभ्यता एवं उन्नति की ओर अग्रसर हुआ है त्यों-त्यों जगत् की विभिन्न वस्तुओं से संबंध होता गया है। समय-समय नयी वस्तुओं के परिचय के साथ कुछ प्राचीन वस्तुओं से संबंध-विच्छेद भी होता रहा होगा क्योंकि संसार परिवर्तनशील है। संसृति का यह अटूट नियम है। भक्तिकालीन साहित्य के अध्ययन से मानव से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में संबंधित निम्नलिखित वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त होता है—

अंगारु (अंगार), अंगीठ (अग्नि + स्या), अगनि (अग्नि), अगिनि (अग्नि), आख (अख), अरगजा (अगर), आगि (अग्नि), कटारी (कटार), कटि (कंटक), कठ (काष्ठ), कठौता (काष्ठ), कड़वी (कर + रक्षा), कणक (कनक), कतरे (कर्तरी), कपूर (कर्पूर), कर्मंडलु (कर्मंडलु), कलस (कलश), कसौटी (कषपट्टी), काँच (कच्य), कुठार (कुठार), कुदारी (कुदाल), कूची (कुंचिका), कृपाना (कृपाण), कंदुवा (कंदुक), कौड़ी (कपर्दिका), खटोला (खट्वा), खौंड (खड्ग), गजमोती (गजमौक्तिक), गौंद (कंदुक), गेंदु (कंदुक), छुद्रघण्टिका, क्षुद्रघण्टिका (छुरी) (क्षुर), जलजान (जलयान), छंड (टंड), डमरुआ (डमरु), डोरां (डोर), डोली (डोल), ताँबा (ताम्र), ताम (ताम्र), त्रिमूल (त्रिशूल), दरपन (दर्पण), दिआ (दीपक), दिया (दीपक), दोना (द्रोण), द्रपण (दर्पण), नुपुर (नूपुर), पनहीं (उपानह), परंजक (पर्यंक), पलंग (पर्यंक), पलना (पल्यंक), पाहण (पाषाण), पिंजर (पंजर), पिटारा (पिटक), पिनाकु (पिनाक), बालू (बालुका), बासन (वासन), बिमान (विमान), मुंदरी (मुद्रिका), रजु (रज्जु), रहेंट (अरघट), सोणा (स्वर्ण), सोना (स्वर्ण)।

6.3.17. नाम सूचक

मनुष्य सामाजिक प्राणी-है। समाज में रहकर लेन-देन, आहार-व्यवहार, सुख-दुःख तथा सफलता-असफलता में अन्य मनुष्यों से संबंध रखना पड़ता है। प्रत्येक मनुष्य में अपनी मौलिकता तथा विशेषता होती है जिसके कारण उसका नाम जनसामान्य में प्रसिद्ध हो जाता है। अर्जुन यदि महान् धनुर्धारी है तो गोपाल दूसरों की आर्त

ध्वनि पर संकट को दूर करने वाले हैं। दशरथ यदि आदर्श पिता हैं तो लक्ष्मण आदर्श भ्राता। जितने भी व्यक्ति अथवा देव विशेष-सूचक नाम साहित्य में स्थान पा गए हैं उनके मुख्य कारण, उनकी विशेषताएं रही हैं। उक्त वर्ग के प्रमुख शब्द निम्नलिखित हैं—

अगस्ति (अगस्त्य), अच्छकुमारा (अक्षयकुमार), अनंगु (अनंग), आरजुन (अर्जुन), अवधनाधु (अयोध्यानाथ), अवधपति (अयोध्यापति), अस्विनीकुमार (अश्विनीकुमार), अहिनाहू (अहिनाथ), अहिबरन (अभिमन्यु), उधव (उद्धव), उधौ (उद्धव), कंसा (कंस), कनकसिपु (कनकशिपु), कन्हैया (कृष्ण), काणहड़ो (कृष्ण), कनूडो (कृष्ण), कान्ह (कृष्ण), कान्हा (कृष्ण), किसन (कृष्ण), कृश्न (कृष्ण), काना (कृष्ण), कृसन (कृष्ण), कृन् (कृष्ण), केकई (कैकेयी), कैकेई (कैकेयी), कौसिक (कौशिक), खगनाहा (खगराज), खगसाई (खगस्वामी), गिरधारा (गिरिधारा), गिरिधर, गुपाल (गोपाल), गोपाला (गोपाल), गोपीचन्दा (गोपीचन्द), गोबिन्द (गोपेन्द्र), गोब्यंद (गोपेन्द्र), धनु (शत्रुघ्न), जटायू (जटायु), जटुपति (यटुपति), यदुराई (यदुराज), जनकु (जनक), जसरथ (दशरथ), जसवै (यशोदा), जसुमति (यशोदा), जसोमति (यशोदा), जाबालिक (याज्ञवल्क्य), जनकि (जानकी), जाबाली (जाबालि), ताडुका (ताडका), तुरसी (तुलसी), दशरथ्य (दशरथ), दसानन (दशानन), दयदेही (वैदेही), बसीठ (वसिष्ठ), बाँबी (वाल्मीकि), बिभषनु (विभीषण), बिसनू (विष्णु), बिल्लु (विष्णु), भभीखन (विभीषण), भरथरी (भर्तृहरि), महेसा (महेश), राधौ (राघव), रामचन्द्र (रामचन्द्र), रावन (रावण), रुकमनि (रुक्मिणी), लंकेस (लंकेश), लक्खन (लक्ष्मण), लखन (लक्ष्मण), लछिमनु (लक्ष्मण)।

6.3.18. धर्म संबंधी

भारत धर्म प्रधान देश है। यहां पर हिंदू, मुस्लिम, सिक्ख ईसाई आदि सभी धर्मों के अनुयायियों को अपने-अपने देव की आराधना करने की पूरी छूट रहती है। प्रत्येक व्यक्ति अपने आराध्य देव की अपने ढंग से अर्चना करके अपने जीवन-पथ पर आगे बढ़ता है। इस प्रकार साहित्य में धर्म-संबंधी अनेक शब्द स्वतः ही आ जाते हैं। तद्भव रूप में प्रयुक्त होने वाले धर्म-संबंधी प्रमुख शब्द निम्नलिखित हैं—

अरचा (अर्चा), अराधा (आराधन), अवधू (अवधूत), अवराधक (आराधक), अवराधन (आराधन), असुमेध (अश्वमेध), आखत (अक्षत), आश्रमु (आश्रम), उपदेसा (उपदेश), कीरतन (कीर्तन), जग्मि (यज्ञ), जग्गुपनीत (यज्ञोपवीत), जज्ञ (यज्ञ), जटनि (जटा), जनेठ (यज्ञ), जपाँ (जप), जयमाला (जयमाल), जापु (यज्ञ), तपसिन्ह (तपस्वी), तपसी (तपस्वी), तपी (तपस्वी), दई (दान), दच्छिना (दक्षिणा), धुम (धर्म), पुन्नि (पुण्य), ब्रत (व्रत), भंगी (भक्ति)।

6.3.19. अलौकिक, परमात्मा एवं देव संबंधी

मनुष्य स्वनिर्मित यंत्रों तथा कल-पुर्जों को अपनी इच्छानुसार चलाता है। संसार को चलाने वाला एक अलौकिक शक्ति-संपन्न परमात्मा है। परमेश्वर संस्कृति रचना करता है, पालन-पोषण करता है तथा वही उसका संहार करता है। संसार के विभिन्न वर्ग के व्यक्ति विभिन्न देवी-देवताओं की आराधना करके जीवन-पथ पर आगे बढ़ने की शक्ति प्राप्त करते हैं। साहित्य में प्रयुक्त होने वाले ऐसे प्रमुख शब्द निम्नलिखित हैं—

अखयबठ (अक्षयवट), अविनासी (अविनश्वर), अमिअ (अमृत), अमी (अमृत), अरविंद (अरविंद), इस्वर (ईश्वर), ईस (ईश), ईसु (ईश), उकार (ओंकार), ऊंकार (ओंकार), ऊंवरौ (उद्धरण, ऋद्धि, ऋद्धि), कंवला (कमला), करतारा (कर्तार), कलपतरु (कल्पतरु), कलपलता (कल्पलता), कामधेन (कामधेनु), केसव (केशव), कैसे (केशव), गंधर्वा (गंधर्व), गननायक (गणनायक), गनराठ (गणराज), गनराजा (गणराज), गनेसु (गणेश), गनेसू (गणेश), गाइत्री (गायत्री), गिरधरा (गिरधर), गुपाल (गोपाल), गोविन्द (गोपेन्द्र), गोविन्दा (गोपेन्द्र), गौरीस (गौरीश), गौरीसा (गौरीश), जगदीस (जगदीश), जगननाथ (जगन्नाथ), जटुपति (यटुपति), जदुराई (यदुराज), जमराज (यमराज), दइअ (दैव), निरकार (निराकार), निमोख (निर्मोक्ष), पिपूखन (पीयूष), मनमथ (मन्मथ), महेसा (महेश)।

इस प्रकार का वर्गीकरण तद्भव शब्दों का प्रमुख वर्गीकरण है। इन वर्गों की संख्या को बढ़ाया भी जा सकती है, यथा—वनस्पति वर्ग को फूल, फल, जड़, तना, पौध, लता, वृक्ष, तथा पत्ते आदि विभिन्न वर्गों में विभक्त कर सकते हैं। इस प्रकार के उपविभाजन अथवा सूक्ष्म विभाजन से वर्गों की संख्या बहुत अधिक हो जाएगी और ये अध्ययन में बाधक ही सिद्ध होंगे। वर्गों का न बहुत कम और न बहुत अधिक होना ही वर्गीकरण की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता होती है।

6.4. संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया तथा अव्यय रूप में वर्गीकरण

‘तद्भव का’ विषयानुसार वर्गीकरण ही प्रमुख वर्गीकरण है। वैसे इसे संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया तथा अव्यय आदि वर्गों के रूप में भी वर्गीकृत किया जा सकता है।

6.4.1. संज्ञा

तद्भव शब्दों में संज्ञा शब्दों का अपना महत्वपूर्ण स्थान है। ये शब्द अकारान्त, आकारान्त, इकारान्त, ईकारान्त, उकारान्त, ऊकारान्त आदि रूपों में पाए जाते हैं। इस काल में प्रयुक्त होने वाले कुछ एक प्रमुख शब्द—घर, नाच, रात, हाथ, चन्द्रमा, पौदा,

भैया, रुपया, बेलि, सुधि, बाँसुरी, मोती, लड़की, लाठी, बिटुबेनु, मातृ, गेहूँ, बालू, रेत, लोहू आदि।

6.4.2. सर्वनाम

हिंदी में प्रयुक्त होने वाले सर्वनाम शब्दों में दो-तीन को छोड़कर शेष सभी सर्वनाम प्रमुख रूप से तद्भव में प्रयुक्त हुए हैं। इस प्रकार के शब्दों में कुछ प्रमुख शब्द निम्नलिखित हैं—

मैं, मुझे, मेरा, मेरी, मेरे, मोर, मोरे, हम, हमारा, हमारे, तू, तुझे, तेरा, तेरी, तेरे, तोर, तुम, तुम्हारे, यह, इस, इसे, इन्हें, इन्होंने, वह, उस, उन्हें, उन्होंने, कोई, कुछ, क्या, किस, किसे, जो, जिस, जिसे, आप, अपना एवं अपनी आदि।

6.4.2. विशेषण

हिंदी में ऐसे शब्दों की बहुलता है जो संज्ञा अथवा सर्वनाम की विशेषता बताते हैं तथा उनका रूप तद्भव होता है। इस श्रेणी के कुछ शब्द द्रष्टव्य हैं—कड़वा, टेढ़ी, दालन, पुराना, भोला, मीठी, रूखी, लम्बी, सच्ची, सूँछम, सूना, आठ, आधा, एकड़, ग्यारह, चार, चारि, चालिस, चौथा, चौदह, चौरासी, तीन, तेरह, दस, दूसरा, दोहरा, नव, पचास, पचासा, पचासी, पहला, पाँच, बीसा, सात, सैंकड़ा एवं सौ आदि।

विशेषण तद्भव वर्ग में संख्यावाचक शब्दों की संख्या अन्य शब्दों की अपेक्षा कहीं अधिक है।

6.4.4. क्रिया

हिंदी में प्रयुक्त होने वाले लगभग सभी क्रिया शब्द तद्भव रूप में हैं। कुछ प्रमुख तद्भव क्रिया शब्द निम्नलिखित हैं—आना, उगलना, कांपना, झगड़ना, खोलना, गाना, चलना, चलाना, चूमना, छिपाना, जाना, देना, धमकाना, धोना, नाचना, पढ़ना, पढ़ाना, पसारना, पीना, फेंकना, बिसरना, बुलाना, बैठना, भेजना, मिलना, रोना, लगना, लिखना, सुनना, सुनाना, हंसना एवं हँसाना आदि।

6.4.5. अव्यय

हिंदी भाषा में तद्भव रूप में कुछ अव्यय शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं। ऐसे शब्दों की संख्या संज्ञा, विशेषण के शब्द संख्या से कहीं कम है, किंतु इनका अपना विशेष महत्व है। इस प्रकार के कुछ बहुप्रयुक्त शब्द निम्नलिखित हैं—अजी, एर, अहा, आह, आहा, ओह, कहीं-कहीं, भला, हाय आदि।

इस प्रकार तद्भव शब्दों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि इनका प्रयोग अन्य वर्ग के शब्दों के विस्तार से कहीं अधिक विस्तृत है। जीवन से संबंधित कोई भी

भाग या कोना ऐसा नहीं है जिसके भावों को व्यक्त करने के लिए तद्भव शब्दों का सहारा न किया जाए। परमेश्वर से लेकर जीव तक कलकल निनादिनी गंगा आदि नदियां जहां पहुंचकर अपने को विलीन कर देती हैं ऐसे जलधि से लेकर देश के गीत गाने वाली उतुंग शृंग तक, फूल तथा पतियों के रूप में मुस्काने वाले वृक्ष लता आदि से लेकर चैतन्य-तम प्राणी मनुष्य तक इन शब्दों का विस्तार इस वर्ग की व्यापकता का सबसे बड़ा प्रमाण है। आधुनिक युग में एक ओर भावाभिप्रेक्षित के लिए भावों को प्रबल से प्रबलतम बनाने के लिए संस्कृतनिष्ठ भाषा का प्रयोग किया जा रहा है तो दूसरी ओर वास्तविकता तथा सरलता लाने के लिए क्षेत्रीय भाषा का प्रयोग किया जा रहा है। संस्कृतनिष्ठ भाषा के प्रयोग से जहां तत्सम शब्दों को समुचित स्थान प्राप्त हो रहा है वहीं क्षेत्रीय भाषाओं के लखन का आकर्षण तद्भव शब्दों के प्रयोग का सुंदर अवसर प्रदान कर रहा है। तत्समबहुलता वाली भाषा विद्वानों की भाषा मानी जा सकती है क्योंकि उसे समझने के लिए उन शब्दों का ज्ञान होना आवश्यक होता है। जन-सामान्य को अप्रचलित तत्सम शब्दों का अर्थभास नहीं हो पाता है। जनसामान्य द्वारा शब्द का परिवर्तित रूप जो ग्रहण किया जाता है यदि उन शब्दों के आधार पर भाषा की रचना की जाए तो उसे समझने में सामान्य व्यक्ति को कोई कठिनाई नहीं होती है। इस प्रकार कह सकते हैं कि अभी तक संस्कृतनिष्ठ भाषा विद्वानों की ही भाषा कही जा सकती है तो तद्भव के आधार पर बनी भाषा जन-सामान्य की भाषा है।

विशद चिंतन के बाद यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि तद्भव शब्द वर्ग ही हिन्दी-शब्द-समूह का प्रमुख शब्दवर्ग है। इसे ही हिंदी शब्द-समूह के प्राण स्वरूप स्वीकारना चाहिए।

...

